हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज़

पनघट

लेखक

श्री सुदर्शन

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

पनघटकी कहानी

नया लेखक कहानी लिखने बैठा, तो क़लमने कहा—बोल, क्या लिखूँ?

लेखक सोचमें पड़ गया कि क्या कोई ऐसा बाग़ नहीं जहाँ कहानियाँ वृक्षोंकी तरह उगती हों? आदमी जाए, दो-चार मन-माफ़िक कहानियाँ तोड़ लाए, और उन्हें बनाकर, सजाकर, शीशेकी तरह चमकाकर शहरके मन्दिरमें रख दे।

और लोग उन शीशा-फूलोंमें अपना आत्मा देखें। और कभी सुखी हों, कभी दुखी हों, कभी उन्हें झूठा कहकर उनकी तरफ़से मुँह मोड़ लें।

पाससे एक बूढ़ा गुज़र रहा था। उसने नए लेखककी हैरानीको देखा और कहा—मैं एक ऐसी जगह जानता हूँ जहाँ कहानियाँ वृक्षोंकी तरह उगती हैं और बड़ी होती हैं, और फलती-फूलती हैं। और वहाँ इतनी कहानियाँ हैं कि अगर तू हर रोज़ एक कहानी तोड़े, और सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी उनमें कमी न आए, और वह सदा-बहार बाग़ उसी तरह लहलहाता रहे।

नया लेखक बूढ़ेके साथ साथ चलने लगा।

पहले शहरकी तंग गलियाँ मिलीं। वहाँ सादगी खेलती थी और प्यार मुस्कराता था और चिन्ता देखती थी। लेखक वहीं रुक गया और बोला—यहाँ भी कहानियाँ हैं।

मगर बूढ़ेने कहा—अभी आगे।

इसके बाद वे दोनों खुले बाज़ारमें आए। वहाँ बेशरमी नाचती थी और मुस्कराती थी और गाती थी और उसके गलेकी तानें सुननेके लिए सैकड़ों लोग अपने घरोंसे दौड़े आते थे। नया लेखक वहीं ठिठक गया और बोला—कहानियाँ यहाँ भी हैं।

मगर बूढ़ेने जवाब दिया—अभी और आगे।

इसके बाद हवेलियाँ और कोठियाँ आईं। वहाँ अमीरीके चोचले थे, और दिलोंकी निर्दयता थी, और शान और शौक़त थी। नौजवान लेखक वहीं ठहर गया और बोला—कहानियाँ यहाँ भी तो हैं।

मगर बूढ़ेने जवाब दिया—अभी और आगे आओ।

इसके बाद खेत मिले। वहाँ मेहनत और मज़दूरी और ग़रीबी ज़मीनपर काम करती थी, आसमानपर आशा ढूँढ़ती थी, और अपने अँधेरेमें बैठकर रो लेती थी। नए लेखकने आग्रहसे कहा—कहानियाँ यहाँ भी हैं।

मगर बूढ़ा बोला—अभी और आगे आओ।

अब दोनों पनघटके पास पहुँच गए। वहाँ अबोध बचपन था, और कुँवारी जवानियाँ थीं, और ब्याहे हुए रूप थे।

वहाँ खिले हुए दिल थे, और लहलहाती हुई आशाएँ थीं, और झूमती हुई उमंगें थीं।

वहाँ उजड़ी हुई शरम थी, और ठुकराया हुआ प्यार था, और मुरझाई हुई मेहनत थी।

बूढ़ेने पनघटपर बसे हुए इस संसारकी तरफ़ इशारा किया और कहा—यही वह जगह है, जहाँ कहानियाँ उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती-फूलती हैं। यहींसे कहानियाँ गलियोंमें जाती हैं, यहींसे बाज़ारोंमें जाती हैं, यहींसे कोठियोंमें जाती हैं, यहींसे खेतोंमें जाती हैं।

यही कहानियोंका बाग़ है, और यहाँ इतनी कहानियाँ उगती हैं कि अगर तू यहाँसे हर रोज़ एक कहानी तोड़े और अपनी सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी इनमें कमी न आएगी, और कहानियोंका यह सदा-बहार बाग़ इसी तरह लहलहाता रहेगा।

लेखक खुश हो रहा था और उसकी निगाहें अपने कहानीका चुनाव करनेके लिए कहानियोंके बाग़में इधर उधर दौड़ती फिरती थीं जैसे फूलोंमें तितलियाँ।

माहीम–बम्बई }
९ सितम्बर १९३९ }

सुदर्शन

सूची

सुदर्शनकी किताबें

पनघट

काव्य-कल्पना

१

महाराज श्रीहर्षकी गिनती संस्कृतके उन जगद्विख्यात कवियोंमें होती है, जिनका नाम अजर और अमर है। भारतवर्षमें सूर्य और चन्द्रमाके साथ हर्ष भी सदा जीता रहेगा। उनकी काव्य-कल्पना देखकर लोग आज भी हैरान रह जाते हैं। उनका अधिक समय काव्य-रचनाकी भेंट होता था। उनको अपने राज्यकी इतनी परवा न थी, जितनी कविताकी। श्रीहर्ष प्रायः कहा करते थे,—मेरा असली राज्य वह है, जिसपर मेरे विचारोंका शासन है। यह राज्य छीना जा सकता है, बदल सकता है, नाश हो सकता है। मगर कविताका राज्य वह राज्य है, जिसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता, यहाँ तक कि उसे मौतकी ठंडी उँगलियाँ भी हानि नहीं पहुँचा सकतीं। महाराज अपने ख़यालमें तन्मय रहते, और सूर्य्य और चन्द्रमा, जीवन और

ज्योति, प्रेम और यौवनकी कभी नष्ट न होनेवाली दुनियाके स्वर्गीय सुपने देखा करते।

एक दिन महाराज बागमें बैठे थे। सन्ध्याका समय था। डूबते हुए सूर्यकी पीली किरणें गुलाबके खूबसूरत फूलोंसे बिदा हो रही थीं, और प्रकृति-माताके इन मनोहर बच्चोंको अपनी उदासीनता दे रही थीं, जैसे हर स्त्री अपनी सखीके घरसे चलते समय उसके बच्चोंको कुछ न कुछ देना अपना कर्तव्य समझती है। उद्यान-माता अपनी सहेलियोंके वियोगका ख़याल कर करके दुखी हो रही थी, और उसके सुन्दर स्नेह-पूर्ण मुँहपर विषादकी काली लकीरें बढ़ती जाती थीं। महाराज हर्ष प्रकृतिका यह भावोत्पादक नाटक देखते थे, और उसे लिखते जाते थे।

सहसा महाराजकी कुँवारी चन्द्रमुखी बेटी उषा उनके सामने आकर खड़ी हो गई। सायङ्कालके अन्धकारमें प्रभातका सूर्य उदय हुआ। महाराज इस समय दूसरी दुनियामें थे। कोई अमीर, कोई वज़ीर, राज्यकी कोई महान्‌से महान् घटना भी उनके इस आनन्द-काननमें पाँव नहीं रख सकती थी। यह उनकी राजसी आज्ञा थी। परन्तु प्रेमके लिए राज्यके द्वार भी बन्द नहीं। यह हर जगह पहुँच जाता है। महाराजने क्रोधसे सिर उठाया, मगर राजकुमारीको देखते ही उनके क्रोधने मुस्कराहटका रूप धारण कर लिया।

उषाने अपने कवि और महाराज पिताको पुत्रीकी प्यारभरी दृष्टिसे देखा और फिर पवित्रताकी सादगीसे मुस्कराकर कहा "तो आख़िर मैंने आपको आ ही पकड़ा। मैंने महलका एक एक कोना ढूँढ़ा, सङ्गीत-मंडपमें गई, चित्र-भवनमें देखा। परन्तु आप..."

एकाएक उसने भोज-पत्र देखा, और रुक गई और उसने सङ्कोचसे सिर झुका लिया। उसको ख़याल आया, कि मुझसे भूल हो गई है। उसने विनय-भावसे महाराजकी ओर देखा, और कहा, "पिताजी! मुझे पता न था..."

महाराजने उसके इन शब्दोंको न सुना, न उसे अपनी बात पूरी करनेका अवसर दिया। वे उठकर उसके निकट आए, पितृ-वात्सल्यका काँपता हुआ हाथ उसके सिरपर फेरा, और प्यारके इस बसमें करनेवाले अमलको जारी रखते हुए बोले, "बेटी उषा, ज़रा सूर्यकी तरफ़ देख। वह अपनी किरणें समेट कर काली चादरमें मुँह छिपा रहा है। उसकी किरणें फूलोंके सिरपर हाथ फेर रही हैं, जिस तरह मैं तेरे सिरपर हाथ फेर रहा हूँ। मेरे दरबारके कवि भी मेरे भाव नहीं समझ सकते, न उनके पास वह आँख है, जो शब्दोंकी सुन्दरताको देख सके। मगर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी बात तू ज़रूर समझेगी। तू मेरी बेटी है। तेरा मन मेरे मनके साँचेमें ढला है।"

महाराजने कविता सुनाई। राजकुमारीने कविता सुनी, और उसकी आँखोंकी चमक और होठोंकी मुस्कराहटने महाराजको विश्वास दिला दिया कि बेटीने बापकी कविताका भाव पूर्ण-रूपसे समझ लिया है।

इसके बाद बाप-बेटी, दोनों शामके अँधेरेमें महलको रवाना हुए, और उषाने बापके पीछे भाग कर उसके साथ मिलनेका प्रयत्न करते हुए बालेपनकी सादगीसे कहा "मैं भी कविता सीखूँगी।"

और महाराज, जिन्होंने इससे पहले अपनी प्यारी बेटीकी छोटीसे छोटी बातको भी नामंजूर न किया था, दिलमें सोचते थे, इसे कविता कौन सिखाएगा? यह जवान है, और कुँवारी है और सुन्दरी है। इधर

कवितामें पवित्रता और संयमकी नदियाँ बहा देनेवाले कवि भी कितने साधारण, विषय-वासनाके कैसे उपासक, होते हैं, यह सचाई महाराज हर्ष जैसे बुद्धिमान् और पण्डित कवि-सम्राट्से छिपी न थी।

२

वर्षाके दिन थे। आसमानपर काली घटायें लहराती थीं। जैसे दुखी हृदयोंपर आशा छाई रहती है। आशाके यह बादल कभी बरसते हैं और कभी हवाके झोंकोंसे इधर-उधर उड़ जाते हैं। महाराज हर्षके दरबारमें एक सुन्दर नवयुवक दंडी संन्यासी आया, और बोला, "राजन्, हम संन्यासी हैं, तीन दिनसे अधिक कहीं नहीं ठहरते। परन्तु अब शुरू वर्षा-ऋतु हो गई है, अब हमारे लिए यात्रा करनेकी आज्ञा नहीं। हम बादलों और बिजलियोंके यह चार महीने कहीं ठहरना चाहते हैं। क्या तू हमारा प्रबन्ध कर सकता है?"

महाराजने नवयुवक संन्यासीके चरण छूकर प्रणाम किया, और कहा, "स्वामीजी, मैं और मेरा सारा राज्य आपकी सेवाके लिए उपस्थित है। मानसरोवरके आज़ाद राजहंसोंको पिंजरेमें ख़ुश रखना आसान नहीं, परन्तु मैं अपनी राज-सत्ताकी सम्पूर्ण शक्तियाँ खरच कर दूँगा और आपको कष्ट न होने दूँगा।"

संन्यासीने हाथ उठाकर महाराजको आशीर्वाद दिया, और कहा, "भगवान् तेरा कल्याण करेंगे।"

संन्यासीको राज-महलमें स्थान मिल गया, और वह वहाँ वर्षा-ऋतुका चौमासा काटने लगा। महाराज हर्ष संन्यासीके पास प्रायः आते-जाते रहते थे। धीरे धीरे उनको संन्यासीके सद्गुणोंका ज्ञान हुआ—वह केवल साधु ही न था, बड़ा भारी चित्रकार और कवि

भी था। और इतना ही नहीं, उसे हर विद्याका पूरा पूरा ज्ञान था। जिस विषयपर बोलता, महाराज हर्ष मुँह देखते रह जाते। इस छोटी उम्रमें यह पाण्डित्य एक ऐसी बात थी, जो महाराजने कभी न देखी थी। और फिर नवयुवक संन्यासीका प्रफुल्लित चेहरा, और फूले फूले जंगलमें मीठे जलसे भरे हुए दो नीले तालाबोंके समान दो शान्त आँखें। दुनियाने ऐसी मोहिनी किसी आदमीके मुँहपर कम देखी होगी। महाराज हर्ष संन्यासीसे जितना अधिक मिलते थे, उनके हृदयमें उसका सम्मान बढ़ता जाता था। उन्होंने उस छोटी उम्रके साधुकी हर तरहसे परीक्षा की, और वह हर तरहसे खरा सोना निकला। आदमियोंमें कई दोष होते हैं, संन्यासीमें एक भी न था। महाराज एक दिन बड़ी नम्रतासे बोले, "स्वामीजी, राजकुमारी कविता सीखना चाहती है। मैंने बहुत ढूँढ़ा, परन्तु ऐसा आदमी कोई न मिला, जिसपर विश्वास किया जाए।"

संन्यासीने आधी बातसे पूरा भाव समझ लिया, और बिना सङ्कोचके उत्तर दिया, "जब तक हम यहाँ हैं, पढ़ा दिया करेंगे।"

महाराजके मनकी मुराद पूरी हो गई। राजकुमारी कविता सीखने लगी।

३

चार महीनेके बाद महाराजने संन्यासीसे पूछा, "राजकुमारी उषाने क्या सीखा?"

संन्यासीने मनको मोह लेनेवाली बड़ी बड़ी और सतेज आँखोंसे महाराजकी ओर देखा, और मुस्कराकर उत्तर दिया, "कवि पिताकी बेटी है, बहुत कुछ सीख चुकी। इतने थोड़े समयमें कोई दूसरा

आदमी कुछ भी न सीख सकता। मगर राजकुमारीकी कविता देखकर ख़ुद हम भी दङ्ग रह जाते हैं।"

महाराजको आश्चर्य्य हुआ, "मगर केवल चार महीनोंमें?"

संन्यासीने उत्तर दिया, राजन्, कवि बनते नहीं, पैदा होते हैं। आगकी चिनगारियाँ राख तले सोई रहती हैं; कविताकी कला सीनेमें छिपी रहती है। गुरुका काम केवल यह है कि राख हटाकर कविताकी उन चिनगारियोंको सचेत कर दे, आग अपने आप सुलगने लगेगी। इसके लिए यत्न करनेकी भी ज़रूरत नहीं। हवाके झोंके ही उसके लिए घीके छींटे बन जाते हैं। राजकुमारीमें यह शक्तियाँ पहले ही मौजूद थीं, हमने उन्हें केवल जगा दिया है, और अब वह सुन्दर शब्दों और सुन्दर भावोंकी विद्यामें प्रवीण हो चुकी है।"

महाराजने उल्लास, अभिमान और आश्चर्य्यसे अपनी बेटीकी तरफ़ देखा। वह ज़मीनकी तरफ़ देख रही थी।

"उषा!"

उषाने सिर उठाकर बापकी तरफ़ देखा, और लजाकर सिर झुका लिया।

"अपनी कोई कविता सुनाओ। सुनाओगी ना?"

राजकुमारीने उसी तरह भूमिकी ओर देखते हुए सिरके इशारेसे कहा, "नहीं।"

"क्यों?"

राजकुमारीने उत्तर न दिया।

"सुनाओ बेटी, कोई अच्छी-सी कविता सुनाओ।"

उषाने सिरकी साड़ी माथेपर खींचते हुए धीरेसे कहा, "आपको पसन्द न आएगी।"

अब संन्यासी चुप न रह सका, बोला, "उषादेवी, यह तुम्हारी ही परीक्षा नहीं, मेरी भी परीक्षा है। गुरुके पढ़ाएकी लाज रख लेना!"

उषाने अपनी कापीके पन्ने उलट-पुलट कर देखा, कि क्या करे, पर निश्चय न कर सकी। बेबसीसे बोली, "क्या सुनाऊँ!"

"कुछ सुना दो। मिसरी हर तरफ़से मीठी होती है।"

राजकुमारीने साहस करके कहा, "कवितापर कुछ लिखा है, वही सुनाए देती हूँ।"

उसने बोलना चाहा, पर जीभ न खुली। महाराजने संन्यासीसे कहा, "आप ही पढ़ दें।"

संन्यासीने कापी पकड़ ली और पढ़ना शुरू किया।

"कविताका कविसे वही सम्बन्ध है, जो नव-विवाहित रमणीका अपने पतिसे है। पति स्त्रीको छूना, पकड़ना, उससे आलिङ्गन करना चाहता है। परन्तु नव-वधू लजाती है, अपने आपको बचाती है, और एक तरफ़ भाग जाती है। कविताकी भी यही दशा है। वह कभी कविके सामने आज्ञाकारी नौकरके समान सिर झुकाकर खड़ी हो जाती है, कभी उसकी तरफ़ देखकर बे-अदब लड़केकी तरह हँसती है। कभी लज्जासे मुँह छिपा लेती है, और कभी, जब कवि उसके बहुत निकट पहुँच जाता है, तो चञ्चल हरिणीकी तरह कुलाँचें भर कर दूर चली जाती है। कभी ज़रा-सी बातमें सिर झुका लेती है, कभी निर्लज्ज-भावसे अपनी दोनों भुजाएँ उसके गलेमें डाल देती है।"

राजकुमारीकी यह कविता कैसी मनोहर थी, कैसी भावमयी ! और इसके साथ ही कितनी सादी ! इसमें पेचीदगी न थी, न कोई ऐसा गोरखधन्धा था, जिसे समझनेके लिए घंटों हैरान होना पड़े। ख़याल नया भी था, ऊँचा भी था। मगर अस्वाभाविक न था। यही कविता किसी दूसरेकी होती, तो महाराज उसे मालामाल कर देते। मगर बेटीकी लिखी हुई प्रेम और यौवनकी यह अमर कहानी सुनकर उनकी आँखोंमें खून उतर आया। सोचने लगे—यह कुँवारी लड़की स्त्री-पुरुषके प्यार-मुहब्बतकी बातें क्या जाने ? इसने यह दृश्य कब देखा ? उनके दिलमें एक सन्देह पैदा हुआ; उन्होंने नवयुवक संन्यासीको चुभती हुई दृष्टिसे देखा, और स्थितिको समझनेका यत्न करने लगे। क्या सोना भी आगमें पड़कर खोटा हो गया ? परन्तु संन्यासी हँस रहा था। उसके मुँहपर ज़रा भी भय, उसकी आँखोंमें ज़रा भी सङ्कोच न था। महाराज असमंजसमें पड़ गए। यह चेहरा पापका चेहरा न था। पाप टेढ़ी आँखोंके सामने सिर नहीं उठा सकता, न उसमें हँसनेका साहस होता है। मगर उषाने प्यारकी कविता कैसे लिखी ?

महाराज कुछ देर चुप-चाप बैठे सोचते रहे, फिर उठकर धीरे धीरे चले गए। संन्यासी महाराजके मनकी बात समझ गया।

४

दूसरे दिन महाराजने संन्यासीको विदा करनेके लिए दरबारमें बुलाया, मुहरोंका थाल उसकी भेंट किया, और कहा, "यह आपकी दक्षिणा है।"

संन्यासीने मुहरोंके थालको अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा, और कहा "राजन्, तू कवियोंमें राजा, और राजाओंमें कवि है। यह

दक्षिणा तेरे योग्य नहीं है।"

महाराजने आश्चर्य्यसे संन्यासीकी तरफ़ देखा। मगर संन्यासी मुस्करा रहा था, "हम मुँहमाँगी दक्षिणा चाहते हैं।"

महाराजने अधीनतासे सिर झुकाकर कहा, "आज्ञा कीजिए। मैं पालन करूँगा।"

सारे दरबारी हैरान थे, कि देखें संन्यासी क्या माँगता है?

संन्यासी बोला, "राजन्, कोई अपनी कविता सुना, हमारी यही दक्षिणा होगी।"

दरबारियोंकी आँखें खुली रह गईं। वे दिलमें सोचते थे, संन्यासीने सुनहरा अवसर खो दिया।

महाराजने पूछा, "किस विषयपर?"

"किसी ग़रीबके घरका दृश्य दिखा दे।"

महाराजने भोज-पत्र लिया और एक तरफ़ बैठ गए। आध घंटेके बाद कविता तैयार थी।

"पढ़ो।"

महाराजने कविता पढ़नी शुरू की—

"वर्षा-ऋतु है, आसमानपर काले बादल उमड़े हुए हैं। मगर इनसे भी काले बादल ग़रीब हतभागिनी बुढ़ियाके दिलमें छाए हुए है। आसमानके बादलोंमें कभी कभी बिजली भी चमक जाती है। मगर उसके दिलमें सदा अँधेरा है।

"छतसे पानी टपक रहा है, और इस समाप्त न होनेवाले टपकेसे बुढ़ियाके कच्चे फ़र्शमें जगह जगहपर गढ़े बन गए हैं। पानीकी बूँदें उन गढ़ोंमें गिरती हैं तो गढ़ोंका पानी चारों तरफ़ उड़ता है, और

आसपासके फ़र्शको भी गीला कर देता है। मगर इनसे भी गहरे गढ़े बुढ़ियाके दिलमें बने हुए हैं।

"सायङ्कालके अँधेरेमें लोग अपने अपने घरोंके दीपक जला रहे हैं, मगर बुढ़ियाके दिएका तेल, कई दिन हुए, समाप्त हो चुका है, और बत्ती उसके रूखे बालोंकी तरह सूखी है।

उसके चूल्हेमें कई दिनसे आग नहीं जली। वहाँ मकड़ीने जाला बुन दिया है। उसके घरके चूहे भाग गए हैं, और चमगादड़ इधर-उधर उड़ते फिरते हैं।"

यह कविता नहीं थी, किसी हत-भागेके घरका चित्र था, मगर कितना सजीव, कैसा हृदय-बेधक! दरबारियोंने 'वाह-वा' की ध्वनिसे दरबार सिर पर उठा लिया, मगर नवयुवक संन्यासी चुप था।

महाराजने उसकी ओर देखा। संन्यासीने कहा, "राजन्, तेरी कविता सचमुच बहुत सुन्दर और भावमयी है। मगर...."

दरबारी, वज़ीर, राजा, सब संन्यासीकी तरफ़ देखने लगे। संन्यासीने कहा, "मगर मालूम होता है, तू किसी राजेका नहीं ग़रीब कङ्गालका बेटा है।"

दरबारी सन्नाटेमें आ गए। महाराजकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने तलवारकी म्यानपर हाथ रख कर कहा, "संन्यासी! मैं यह अपमान कभी नहीं सह सकता। तू मुझे गालियाँ दे रहा है।"

"पर अगर तू राजेका बेटा है, तो तूने यह कविता कैसे तैयार की? तू राजा है, तू किसी ग़रीबके घरका हाल क्या जाने?"

महाराजने उसी तरह क्रोध-भरे स्वरमें कहा, "काव्य-कल्पनासे

कवि वह कुछ देख सकता है, जो दूसरे खुली आँखोंसे भी नहीं देख सकते ।"

संन्यासीने मुस्कराकर उत्तर दिया, "कविराज, तूने ठीक कहा। लेकिन अगर तू राजेका बेटा होकर काव्य-कल्पनाकी सहायतासे ग़रीबके घरकी हृदय-द्रावक दशा देख सकता है, तो तेरी कुँवारी बेटी स्त्री-पुरुषकी प्रेम-लीलाका हाल क्यों नहीं जान सकती ? तूने मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखा था। तेरी आँखें लाल हो गई थीं। तूने समझा था, संन्यासीकी इन्द्रियाँ उसके बसमें नहीं। मगर तेरा सन्देह निर्मूल था। मैं संन्यासी हूँ, दुनियाकी हर एक लड़की मेरी बेटी है।"

यह कहते कहते संन्यासी दरबारसे बाहर निकल गया।

महाराजकी आँखें खुल गईं। मगर उनके मुँहसे एक भी शब्द न निकला।

चित्रकार

१

खट, खट, खट !

किसीने नीचे द्वार खटखटाया । ठाकुरसिंह चित्र बनानेमें लगे थे । उन्होंने आवाज़ नहीं सुनी । उनकी स्त्री गुजरीने धीरेसे कहा, " कोई आया है । "

ठाकुरसिंहने चित्रपर ब्रश फेरते-फेरते मुस्कराकर उत्तर दिया, " तो चलो, उड़कर अपने घोंसलेमें छिप जाओ । नहीं कोई देख लेगा, तो कहेगा, जिसकी स्त्रीके कपड़े भी साफ़ नहीं, वह चित्र क्या बनाता होगा ? "

गुजरीने रंगके प्यालेमें उँगली डुबोकर अपने चित्रकार पतिकी कमीज़पर दाग लगा दिया, और शोख़ीसे कहा, " सिंहजी ! पहले अपने कपड़े तो देख लो, फिर मुझे भी कुछ कहनेकी हिम्मत करना । "

ठाकुरसिंह चौंककर परे सरक गए, और बोले, " अरे मेरी कमीज़ ख़राब कर दी । कैसी पगली है ! बाहर मिलनेवाले खड़े हैं, यह अन्दर फाग खेलती है ! "

गुजरीने रंगसे भरी हुई उँगली ठाकुरसिंहके मुँहसे पास ले जाकर कहा, " खबरदार ! तुम बोले, और मैंने तुम्हारा सारा मुँह रंग दिया । "

ठाकुरसिंह—मेरा ही मुँह रंगना जानती हो, या कुछ और भी सीखा है? अगर किसी चित्रका मुँह रंग सको, तो चार पैसे न कमा लो।

गुजरी—तुम फिर बोले!

ठाकुरसिंह (दबकर)—बहुत अच्छा जमादार साहब! अब माफ़ कर दें। क्या मजाल जो एक भी शब्द बोल जाऊँ। वाह वा! भई स्त्री तो हमें मिली है। स्त्री भी है, जमादार भी है।

गुजरी (बनावटी क्रोधसे)—टुम फिर बोलने मांगटा। चूप रहो। कोई लोग आया है।

ठाकुरसिंह गुजरीकी इस प्रेमपूर्ण सादगीपर लोट-पोट हो गए। वे उसे उठाकर कलेजेमें बिठा लेना चाहते थे, जहाँ उसे दुनियाकी गर्म हवा भी न लगे। इतनेमें द्वारपर फिर खटका हुआ।

गुजरीने दबे पाँव जाकर ज़ीनेकी ज़ंजीर खोल दी, और भागकर अपने कमरेमें चली गई। ठाकुरसिंहने ऊँची आवाज़से कहा, "चले आइए, दर्वाजा खुला है।"

आनेवाला कीमती वस्त्र पहने था। शक्ल-सूरतसे रोआव टपकता था। उसने ठाकुरसिंहको सिरसे पाँव तक देखते हुए कहा, "मैं सरदार ठाकुरसिंह साहब आर्टिस्टसे मिलना चाहता हूँ।"

ठाकुरसिंहकी आँखें झुक गईं। खयाल आया, मेरे कपड़े इतने साफ़ नहीं, जितने होने चाहिए। उन्हें ऐसा संदेह हुआ, जैसे मुँहपर मिट्टी लगी है, जैसे बाज़ारमें जाते-जाते कपड़ा फट गया है। मगर क्या हो सकता था? धीरेसे बोले, "फ़रमाइए, मैं हाज़िर हूँ।"

यह कहकर उन्होंने आगन्तुकके बैठनेको कुरसी सामने रख दी।

आगन्तुक कुरसीपर बैठकर बोला, "खूब! मैं समझता था,

आप बुड्ढे होंगे। मगर मेरा अनुमान ठीक न निकला। आपकी आयु तो बहुत छोटी मालूम होती है। पचीस-छब्बीस सालसे अधिक न होगी।"

ठाकुरसिंह—जी नहीं, मेरी उम्र तीस सालके लगभग है।

आगन्तुक—इस उम्रमें ऐसे चित्र बना लेना आपहीका काम है। मैंने आपके कई चित्र देखे हैं। देखकर जी खुश हो जाता है। ऐसा मालूम होता है, जैसे वह चित्र नहीं, जीते-जागते प्राणी हैं। कभी-कभी सन्देह होता है कि वह अभी मुँह खोलकर बोलने लगेंगे, अभी चलने लगेंगे। मुझे आपसे मिलनेकी बड़ी इच्छा थी। आज चला आया।

ठाकुरसिंह—यह आपकी मेहरबानी है, मैं तो चित्रकार कहानेके भी योग्य नहीं। यह बड़ी भारी विद्या है। इसका पार किसने पाया है?

आगन्तुक (सुना अनसुना करके)—आपके चित्र ख़ूब बिकते होंगे। ऐसी अच्छी चीज़ें न बिकेंगी, तो और क्या बिकेगा? मगर (कमरा देखकर) आपने मकान अच्छा नहीं लिया। यह आप जैसे चित्रकारके योग्य नहीं। जो देखेगा, यही कहेगा कि नाम बड़े, और दर्शन थोड़े।

ठाकुरसिंह—देखिए, कोई अच्छी-सी जगह मिल जाय, तो बदल लूँगा।

आगन्तुक—मालपर चलिए, मालपर। वहाँ आपका कारबार और भी चमक जायगा। यहाँ जो चित्र पचासको बिकता है, वहाँ सौ रुपयेमें बिकेगा। मोतीको मखमलके टुकड़ेपर रख दिया जाय, तो उसकी चमक नहीं बढ़ती, मगर मोल बढ़ जाता है। मेरा खयाल है, मालपर चलकर आप थोड़े ही समयमें कहींसे कहीं पहुँच जायँगे।

ठाकुरसिंह—आप जैसे सज्जनोंकी शुभ-कामना फल जाय, तो एक महीनेमें सोनेके महल खड़े कर लूँ। मगर अन्धा संसार रुपयेकी क़दर करता है, कलाकी नहीं। यहाँ कला पग पगपर ठोकरें खाती है।

आगन्तुकने आश्चर्यकी दृष्टिसे नवयुवक चित्रकारकी तरफ़ देखा, और कहा, "जब तक किसी सहृदयकी नज़र न चढ़ जाय।"

ठाकुरसिंहने ब्रश हाथमें लिया, और चित्रकी तरफ़ देखकर कहा, "मगर सहृदय सज्जन दुनियामें हैं कहाँ? अमृतके समान इस वस्तुका भी नाम सुना है, इसे देखा नहीं है।"

यह शब्द नहीं थे, चित्रकारके दिलके घाव थे। आगन्तुककी आँखोंके सामनेसे परदा हट गया। ज़रूर यह आदमी निर्दयी संसारका शिकार है; ज़रूर इसका दिल दुखा हुआ है। वर्ना इसके मुँहसे यह शब्द कभी न निकलते।

थोड़ी देर बाद आगन्तुकने कहा, "मैं रियासत सकंधीरका दीवान हूँ। मेरा नाम हरजस राय है। महाराजा साहब शौक़ीन आदमी हैं और चित्रोंका तो उन्हें ख़ब्त है। उन्हें प्रसन्न करना हो, तो कोई बढ़िया चित्र भेंट कर दो, फिर जो चाहो, कर लो। ज़रा इन्कार न करेंगे। दो महीने बाद उनका जन्म-दिन है। मैं इस अवसरपर उन्हें एक बहुत ही बढ़िया चित्र भेंट करना चाहता हूँ। क़ीमतकी परवा नहीं, मैं मुँह-माँगा दाम दूँगा। मगर चित्र ऐसा हो कि एक बार तो महाराज फड़क जायँ। कहें, यह तसवीर तुझे कैसे मिल गई? बस, मैं महाराजके इन चार शब्दोंका भूखा हूँ।"

ठाकुरसिंहके मनमें आशाकी गुदगुदी होने लगी। दीवान साहबकी तरफ़ देखकर बोले, "अपनी उमरमें मुझे पहली बार ऐसे सज्जनके

दर्शन हुए हैं, जिसके पास कला देखनेवाली आँख, और क़दर करनेवाला दिल है।"

दीवान साहब—बस, ऐसी चीज़ बनाओ कि महाराज उछल पड़ें।

ठाकुरसिंह—अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करना अच्छा नहीं लगता। मगर मैं आपको ऐसी चीज़ दूँगा कि आप खुश हो जाएँ।

दीवान साहब—आपके जो चित्र इस समय तक देख चुका हूँ, उनसे बढ़िया होगा न?

ठाकुरसिंह—इसकी चिन्ता न करें। रागीको जब पता लग जाय कि उसके सामने राग-विद्याके जानकार बैठे हैं, उस समय वह साधारण चीज़ नहीं गाता।

दीवान साहब खड़े हो गए और बोले, "तो आप कब तक मुझे चित्र दे देंगे?"

ठाकुरसिंह भी बिदा करनेको खड़े हो गए और दिलमें हिसाब करके बोले, "एक महीनेसे कम समयमें तो तैयार न हो सकेगा।"

दीवारपर मोटे अक्षरोंमें लिखा था, "आधे दाम पेशगी।" दीवान साहबने यह नियम आते ही पढ़ लिया था। ठाकुरसिंह मनमें सोचते थे, अभी बटुआ खोलते हैं, अभी नोट निकालते हैं। देखें क्या देते हैं। अमीर आदमी हैं, रुपये पैसेकी परवाह नहीं, और काम बढ़िया माँगते हैं। पाँच सात सौसे कम क्या देंगे? मगर दीवान साहब उठे, और फिर आनेको कहकर नीचे उतर गए। ठाकुरसिंह देखते ही रह गए। उमड़ी हुई काली घटा देखकर किसानका दिल नाचने लगा था। उसे कैसी खुशी हुई थी। मगर हवाके झोंकोंने घटाको उड़ा दिया। पानीकी एक बूँद भी न बरसी।

२

गुजरी अपने कमरेके अन्दरसे सब कुछ देख रही थी। दीवान साहबके जाते ही उसने कमरेसे निकलकर ज़ीनेका द्वार बन्द कर दिया, और जाकर प्यारसे अपने निराश पतिका हाथ थाम लिया। ठाकुरसिंहकी आँखें सजल हो गई थीं। गुजरीने सहानुभूतिपूर्ण स्वरसे कहा, "तुम वृथा अपना जी छोटा करते हो। इस समय रुपया नहीं मिला, न सही। घबरानेकी क्या बात है? मुझे तो ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। उलटी खुशी है। मुझे तो विश्वास है कि यह आदमी हमारा सच्चा दोस्त होगा। मेरे दिलमें कोई कह रहा है कि इससे हमें लाभ पहुँचेगा। मगर उसे क्या मालूम कि यह पूरे कंगाल हैं, इनके पास पैसा भी नहीं। यह मकान, यह असबाब, यह बिजली देखकर किसीको यह शक भी नहीं हो सकता।"

ठाकुरसिंहने गुजरीकी ओर देखा, और ठंडी साँस भरकर जवाब दिया, "आज करवा चौथ[1] है, तुमने सुहागका व्रत रखा है, और हमारे पास एक पैसा भी नहीं। लोग खुशियाँ मना रहे हैं, हम बैठे भाग्यको रोते हैं।"

गुजरी—मगर यह अपनी-अपनी किसमत है। जो किसमतमें लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है? बाकी रही करवा चौथके व्रतकी बात, उसकी चिन्ता न करो। कहींसे आ जायगा, खा लेंगे; न आयगा, भूखे सो रहेंगे।

ठाकुरसिंह—और नौकरको क्या खिलायँगे? वह तो बच्चा है, समझता ही नहीं कि हाथ तंग है, चुप रह जाऊँ। हमारी भी क्या शान है, अपने खानेको रोटी नहीं, नौकर रख लिया!

---

१ पंजाबमें सुहागका व्रत है, जब स्त्रियाँ चाँदको अर्घ्य देकर खाना खाती हैं।

गुजरी—इसका प्रबन्ध भी हो जाएगा। तुम अपना दिल छोटा न करो, नहीं बीमार हो जाओगे।"

ठाकुरसिंहको स्त्रीकी इन बातोंसे धीरज हुआ। वह समझते थे, दीवान साहबके जाते ही गुजरी उन्हें गालियाँ देने लगेगी, तकदीरको कोसने लगेगी, मगर पतिको उदास देखकर वह आशा और विश्वासकी देवी बन गई, जो कभी निराश नहीं होती। ठाकुरसिंहने उसे श्रद्धा-भावसे देखकर कहा, "जी चाहता है, इन चित्रोंको आग लगाकर कहीं निकल जाएँ। काम करानेको सभी हैं, पैसे देते समय प्राण निकलते हैं। कभी कहते हैं, कल आओ, कभी कहते है, परसों आओ।"

गुजरी—यही तो ख़राबी है, वर्ना हमें ज़रा भी तकलीफ़ न हो। देखो, गंगू गया है, कुछ लाता है, या सब फिर आनेको कहते हैं।

ठाकुरसिंह—मुझे डर है, आज कोई भी न देगा।

गुजरी—वाह गुरुपर विश्वास रखो। (चित्रकी ओर इशारा करके) यह चित्र किसका है ?

"एडीटर 'शौकत-हिन्द'का है।"

"कैसा आदमी है ?"

"बहुत शरीफ़ है।"

"पैसेवाला भी है, या हमारे ही जैसा है ?"

"आदमी तो खानदानी है। बाक़ी हमारा प्रारब्ध।"

"तस्वीर बनाकर ले जाओ, तो पैसे दे दे, या नहीं ?"

"अब मैं किसीके मनका हाल क्या जानूँ। हाँ, उम्मीद तो है, कि दे देगा।"

"तो इसे पूरा क्यों नहीं करते? कितने रुपये मिल जायँगे?"

"मैंने तीस माँगे थे, उसने बीस सुनाए। पचीसपर फैसला हो जायगा।"

गुजरीके चेहरेपर आशाकी आभा झलकने लगी। हँसकर बोली, "जालडी खाटम करो। टाइम थोड़ा है, वर्ना जामाडार खफ़ा हो जायगा।"

अब वह फिर वही हँसमुख, वही बेपरवा गुजरी थी, जो भूखी रहकर भी हँसती थी, खेलती थी, चहकती थी।

ठाकुरसिंह चित्र बनाने लगे। कल रातसे कुछ खाया न था। प्रातःकाल भूख मालूम हुई थी, मगर इस समय प्यास भी न थी। उन्हें शरीरमें एक नई स्फूर्तिका अनुभव होता था। कभी यह रंग घोलते, कभी वह, और चित्र बनाते जाते थे। उनका हाथ आज कैसा तेज़ चलता था। मन काममें डूबा हुआ था। इतनी एकाग्रता उनमें कभी न थी। यहाँ तक कि पाँच बज गए और उन्होंने सिर न उठाया। दफ्तरोंके बाबुओंकी छुट्टी हो गई। पंछी भी अपना बसेरा लेने लगे। गउएँ और भैंसें भी अपने घरोंको आ गईं। मगर ठाकुरसिंहको आराम कहाँ? वह अभी तक उसी लगनसे चित्र बनानेमें लगे थे। आशामें कितना जीवन है, कितनी जागृति, कितनी ज्योति! यों कहनेको एक कच्चा धागा है, मगर इसी कच्चे धागेने सारे संसारको बाँध रखा है।

इतनेमें गंगू आ गया। स्त्री-पुरुष दोनोंका हृदय धड़कने लगा। कुछ लाया है, या नहीं? एक मीठा शब्द सुनकर दोनोंके हृदय खिल जायँगे। और यदि वह खाली हाथ लौटा हो, तो? मनुष्य कितना

पराधीन, कितना दूसरोंके बसमें है ! ठाकुरसिंह उससे पूछते हुए भी डरते थे । मगर स्त्री अबला होनेपर भी हिम्मत नहीं हारती । उसने गंगूसे कहा, " तू सारा दिन बाहर गवाँ आया । बोल, कुछ काम भी किया या नहीं । "

गंगूने उत्तर दिया, " कहींसे भी नहीं मिला । "

ठाकुरसिंहके हृदयमें किसीने छुरा भोंक दिया । तलमलाकर बोले, " अमृत-फैक्टरीवालोंने क्या कहा ? "

" कहा कि सरदार साहब कहीं बाहर गए हैं । आयँगे, तो भिजवा देंगे । "

" और लन्दन-वाच कम्पनीवाले ? "

" बोले, आज बिक्री नहीं हुई, कल आना । "

" और राय साहब होतूराम ? "

" वह अभी कराचीसे नहीं आए ? "

ठाकुरसिंह (क्रोधसे)—" और तू अब तक कहाँ मर गया था ? पहले चला आता, तो कहीं और ही भेज देता । अब मैं क्या करूँ ? "

गंगूने सहमकर उत्तर दिया, " मियाँ याकूबकी तरफ़ गया था । उन्होंने बिठा लिया कि अभी मनीआर्डर आते हैं, तो लेकर जाना । वहीं बैठा रहा । आखिर चला आया । वह तो अब भी न आने देते थे । कहते थे, ज़रा और ठहरो, शायद कोई देनेवाला ही आ जाय । "

ठाकुरसिंह बड़बड़ाते हुए उठे, और तस्वीर लेकर चले गए । गुजरी रोने लगी । संध्या हो चली थी । सुहागन स्त्रियाँ अपने-अपने थालोंमें मिठाई, बादाम, घीके दीए रखकर सुहागन रानीकी कथा सुनने जा रही थीं ! इस समय उनके चेहरे कैसे प्रसन्न थे ! आँखें कैसी

प्रकाशपूर्ण! आज उन्होंने सुहागका व्रत रखा था, आज वह पतिकी मंगल-कामना करने जा रही थीं। मगर गुजरी क्या करे? उसके प्राण पिंजरेमें फँसे हुए पंछीके समान फड़फड़ा रहे थे, मगर उड़नेकी शक्ति न थी। उसने ठंडी आह भरी और छतकी ओर देखने लगी।

इतनेमें उसकी पड़ोसिनने साथके छज्जेसे पुकारकर कहा "क्यों बहन गुजरी! कथा सुनने चलोगी?"

गुजरी फूट-फूटकर रोने लगी। वह कैसी अभागिन है, जो सुहाग-व्रतके दिन सुहाग-कथा भी नहीं सुन सकती। मगर पड़ोसिनपर अपनी विवशता प्रकट भी नहीं करना चाहती थी, आवाज़ सँभालकर बोली, "बहनजी, मैं तो सुन आई।"

पड़ोसिन चली गई, गुजरी फिर उदास हो गई। उसे निर्दयी अमीरोंपर रह-रहकर क्रोध आता था, जो ग़रीब मजदूरोंसे काम करा लेते हैं, पैसे समयपर नहीं देते। इस वक्त वह चंडिका देवी हो रही थी। अगर कोई अमीर उसके सामने आ जाता, तो उसका ख़ून पानी एक कर देती। वह सोचती थी, सबने इन्कार कर दिया। किसीने यह भी न सोचा कि चलो दे दो, त्योहारका दिन है, उसे भी जरूरत होगी। ऐसे ही पापोंके कारण तो वर्षा नहीं होती, इसी लिए तो अकाल पड़ते रहते हैं।

आध घण्टा बीत गया, गुजरी उसी तरह बैठी रही। उसके चारों तरफ़ अँधेरा था, मगर उसने बत्ती नहीं जलाई। यह बाहरका अँधेरा उसके दिलके अँधेरेके सामने कितना तुच्छ था! इतनेमें गंगूने आकर कहा, "बीबीजी, कुछ खानेको है, या नहीं? बड़ी भूख लगी है।"

बात साधारण थी, मगर गुजरीकी देहमें आग लग गई। जैसे

सूखी बारूद रगड़से भी जल उठती है। गरजकर बोली, "तू आदमी है, या गधा? देखता नहीं, कहींसे भी पैसे नहीं मिले। मुरव्वत तो इन लोगोंको छू भी नहीं गई। मालिक मरे, या जिए, इनकी बलासे। इन्हें अपने कामसे काम है।"

गंगू खाना खानेके बदले गालियाँ खाकर चुप चाप ऊपर जा बैठा। उसे अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप हो रहा था। थोड़ी देर बाद गुजरी हिम्मत करके उठी, और पड़ोसिनको बुलाकर बोली, "बहन, ज़रा एक चार आनेके पैसे देना। वह बाहर गए हैं, मेरे पास दस रुपयेका नोट है, अभी लौटा दूँगी।"

परन्तु उसका दिल धक-धक कर रहा था कि अगर इसने भी न दिए, तो क्या इज़्ज़त रह जायगी। मगर पड़ोसिनने चवन्नी दे दी। गुजरीको यह चवन्नी नहीं, चार सौ रुपया मालूम हुआ। चवन्नी लेकर भागी-भागी ऊपर चढ़ गई, और गंगूसे बोली, "जा, जाकर दो आनेके चावल ले आ, एक आनेका दूध, एक आनेकी चीनी। मगर जल्दी आना। तेरी आदत है, जहाँ चार आदमी देखे, वहीं खड़ा हो गया।"

गंगूने चवन्नी ली, और नीचे उतर गया। इधर गुजरीने जल्दी-जल्दी आग जलाई, और गंगूकी प्रतीक्षा करने लगी। मगर आध घंटा बीत गया, और गंगू न आया। आखिर कहाँ चला गया? इतनी देर कहाँ लग गई? बनियेकी दूकान तो दूर नहीं। तीन-चार मिनटका रास्ता है, जरूर कहीं खड़ा हो गया होगा। इतना भी खयाल नहीं कि आज त्योहारका दिन है। सरदार साहब आते हैं, तो कहती हूँ, मैं बाज़ आई ऐसे नौकरसे, इसे जवाब दे दो। इसे तो

समय कुसमयका भी विचार नहीं। यहाँ आग जल रही है, वह कहीं खड़ा समय नष्ट कर रहा होगा।

मगर आध घण्टा और गुज़र गया, और गंगू फिर भी न आया। अब गुजरीके क्रोधने चिन्ताका रूप धारण कर लिया। सोचने लगी कहीं किसी गाड़ी तले न आ गया हो। आँखें बन्द करके चलता है, सामने तो देखता ही नहीं। गुजरीका दिल दहल गया, मानो गंगू सचमुच गाड़ी तले कुचला गया है। इतनेमें गंगू उसके सामने आकर खड़ा हो गया, और सिसक-सिसककर रोने लगा। गुजरीने घबराकर पूछा, "क्यों? क्या हुआ?"

गंगूने हाथ बाँधकर रोते-रोते जवाब दिया, "चवन्नी कहीं गिर गई।"

गुजरीने ठंडी साँस भरी और निराशासे व्याकुल होकर वहीं बैठ गई। उसके मुँहसे एक भी शब्द न निकला। अँधेरी रातमें मुसाफिरको एक छोटी-सी पगडंडी मिली थी, देखते-देखते वह भी झाड़ियोंमें गुम हो गई। अब मुसाफिरके चारों तरफ़ अँधेरा था, प्रकाश कहीं भी न था।

३

उधर ठाकुरसिंह तस्वीर लेकर 'शौकत हिन्द' के दफ्तरमें पहुँचे, और सम्पादकसे बोले, "लीजिए जनाब, तस्वीर तय्यार हो गई।"

सम्पादक साहबने तस्वीरको उड़ती हुई नज़रसे देखा, और बेपरवा-ईसे मेज़के एक कोनेकी तरफ़ इशारा करके कहा, "रख दीजिए।"

और यह क़दर थी उस चीज़की, जिसे चित्रकारने भूखा रहकर बनाया था, जिसमें उसने अपना दिल लगाया था, जिसपर उसने अपने प्राण छिड़के थे। क्या इसके लिए इस पाषाण-हृदय अन्धे

व्यापारीके पास प्रशंसाके दो शब्द भी न थे? केवल दो शब्दोंसे उनको सन्तोष हो जाता, वह अपनी थकावटको भूल जाते। समझते कि दुनिया अभी क़दरदानोंसे खाली नहीं हो गई। रुपया नहीं देते, प्रशंसा तो करते हैं। कलाकारोंके लिए यही बहुत है। मगर यहाँ वह भी न था। ठाकुरसिंहके जीमें आया कि तस्वीर उठा लूँ, और कहूँ, जनाब, मैं तस्वीर आपके हाथ न बेचूँगा। अगर आपको मेरी कलाकी परवा नहीं, तो मुझे भी आपके धनकी परवा नहीं। मगर फिर घरका और घरकी शोचनीय दशाका ध्यान आ गया। ग़रीबीने आनका गला घोंट दिया। तस्वीरको हाथमें लेकर बोले, "आप ज़रा देख तो लेते?"

"कल देखूँगा, इस समय रहने दीजिए।"

"बहुत बढ़िया है, आप खुश हो जायँगे।"

"यह कहनेकी ज़रूरत ही नहीं। आप जिस वस्तुको हाथ लगायँगे वही सुन्दर बन जायगी। सौन्दर्य्य तो आपके हाथोंका मैल है।"

"आप तो मुझे बनाते हैं।"

"जी नहीं, मेरा सचमुच यही विचार है।"

"इसपर पूरे तीन दिन लगे हैं।"

"आप चाहते, तो एक दिनमें बना लेते। बल्कि मेरा तो ख्याल है, आप डटकर बैठ जाते, तो तीन चार घण्टोंसे ज्यादाका काम न था।"

"जी नहीं, अच्छी चीज़ अच्छा समय खाये बिना जवान नहीं होती।"

" अरे ! आप तो शायरी भी करने लगे । "

" आपकी महरबानी हो जाय, तो शायरी भी करने लगूँगा । अब आज्ञा दीजिए, अँधेरा हो रहा है । "

" बहुत अच्छा । फिर किसी दिन आइएगा, एक और तस्वीर बनवाना है । "

" कहिए, कल ही आ जाऊँ ? (संकोचसे) और इस तस्वीरके रुपये ? "

" इतनी जल्दी ? "

" बहुत ज़रूरत है । "

" तो दो चार दिनमें मिल जायँगे । "

" न साहब ! ऐसा जुल्म न कीजिएगा । बड़ी आस लेकर आया हूँ । अभी दिलवा दीजिए । "

सम्पादक (कुरसीसे उठते हुए)—दो चार दिनसे पहले तो किसी सूरतमें न दे सकूँगा ।

" बड़ी ज़रूरत है, पाँच रुपये ही दे दें । "

सम्पादक (सिर हिलाकर)—इस समय तो पाँच पैसे माँगें, वह भी न मिलेंगे । "

" आपने तो कहा था, चित्र बनाकर लाओ, रुपये उसी समय मिल जायँगे । "

" मालूम होता है, आप हमें चोर समझ रहे हैं, जो आपका चित्र लेकर भाग जायँगे । यहाँ छै-छै महीने गुज़र जाते हैं, कोई तगादा भी नहीं करता । "

" उनके पास खानेको होगा, तगादा न करते होंगे । हम मज़दूर

आदमी हैं, जो कमाते हैं, वही खाते हैं !"

"आप तो पंजे झाड़कर पीछे पड़ गए। एक बार कह दिया, इस समय नहीं हैं: माफ़ करो। मगर जनाब अपनी ही कहे जाते हैं।"

अब ठाकुरसिंह भी तेज़ हो गये, बोले, "अगर आपके पास रुपये न थे, तो आपने काम क्यों कराया? मैं यों निराश तो न होता?"

सम्पादक महोदय सन्नाटेमें आ गए। सोचने लगे, यह आदमी कितना कमीना है। मेरे मान-अपमानका ज़रा भी खयाल नहीं। थोड़ी देर बाद बोले, "अपना चित्र उठाकर ले जाइए, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।"

ठाकुरसिंह (आश्चर्यसे)—आपने कहकर बनवाया है।

"मगर मुझे क्या मालूम था कि आप ऐसी खराब चीज़ बना लाएँगे? इससे अच्छा चित्र तो स्कूलके लड़के भी बना सकते हैं। और यह भी किसी लड़केहीका बनाया हुआ है, आपका नहीं। चले हैं हमें चकमा देने। मगर हम भी जनाब हाथ पहचानते हैं, हाथ!"

"मगर चित्र तो आपने अभी देखा ही नहीं।"

"आते ही देख लिया, मुझे जरा भी पसन्द नहीं। पत्रमें छाप दूँ, तो लोग कहें, सम्पादक पागल हो गया है।"

ठाकुरसिंहका सिर चकराने लगा। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। तस्वीर लेकर चुपचाप बाहर निकल आए। पछताते थे कि क्यों बात बढ़ाई? रुपये आज न मिलते, दो दिन बाद मिल जाते, अब वह भी गए। तस्वीर इनकी है, दूसरा कोई इसके लिए पैसा भी न देगा। वह चाहते थे सम्पादक बुलाकर चित्र माँग लें, तो चुपचाप दे दें, चूँ भी न करें। परन्तु वह दूर चले आए, और उन्हें किसीने भी न बुलाया।

अब चारों ओर अन्धकार था। क्या करें, क्या न करें! बहुत

सोचते थे, मगर उन्हें कोई आदमी दिखाई न देता था जो इस विपदके समय उनकी सहायता करे। उन्हें घर जाते हुए भी डर लगता था। गुजरीको क्या मुँह दिखायेंगे! आज करवा-चौथका व्रत है, स्त्रियाँ चन्द्रमाको अर्घ्य देकर मिठाई और फल खायँगी। हमारे घर आटा भी नहीं। दुर्भाग्य तो देखो, घरमें सिवाय लकड़ियोंके और कोई भी चीज़ नहीं बची, सब कुछ समाप्त हो गया। ठाकुरसिंह शहरसे बाहर निकल गए, और पैरेडमें बैठकर चिन्तामें डूब गए। कभी सोचते, रावीमें डूब मरें; ऐसे जीवनसे तो मौत ही भली। कभी ख्याल आता, साधु हो जाएँ, गुजरीको उसका पिता ले जायगा। चार दिन याद कर-करके रोएगी, फिर भूल जायगी। मगर उनमें इतना साहस भी न था।

कुछ देरके बाद वह उठे, और शहरकी तरफ़ रवाना हुए। पहले धीरे-धीरे चले, फिर तेज़ हो गए। आशाके निकट पहुँचकर हम अधीर हो जाते हैं, हमारी शान्ति भंग हो जाती है। अब उन्हें एक मित्रका खयाल आ गया था; शायद वह दो चार रुपये दे दे।

४

रातके साढ़े आठ बजे थे, करवा-चौथका चंद्रमा निकलनेमें थोड़ी देर बाकी थी। हर मकानपर स्त्रियाँ खड़ी थीं, और आसमानकी तरफ़ देखती थीं, कि चाँद निकला है, या नहीं? जो छोटी लड़कियाँ भूखसे अधीर हो रही थीं, वह कहती थीं, चाँदको भी आज ही बैर लेना था, पहले तो इतनी देर कभी न होती थी। जो स्यानी थीं, वह कहती थीं, अभी निकलेगा।

मगर गुजरी अपने अँधेरे कमरेमें औंधे मुँह लेटी थी। वह चन्द्रमाकी क्या प्रतीक्षा करती, गरीबके पास अर्घ्य देनेके लिए कच्ची

लस्सी भी न थी, न व्रत खोलनेके लिए रोटीका एक टुकड़ा था। निराश होकर लेटी थी, और अपने भाग्यको कोस रही थी। इतनेमें ठाकुरसिंहने आकर उसकी पीठपर हाथ फेरा, और प्यारसे कहा, "लो उठो! चाँद निकल आया है, चलकर अर्घ्य दे लो। लस्सी और गंडेरियाँ नहीं है, ठण्डा जल तो है। देवता लोग कुछ खाते पीते थोड़े हैं! श्रद्धा देखते हैं और उसका तुम्हारे पास अभाव नहीं।"

गुजरी चुपचाप उठकर खड़ी हो गई। उसने इतना भी न पूछा कि चित्रके दाम मिले या नहीं। समझ गई, न मिले होंगे। मिले होते तो नाचते हुए आते। वह बेदिलीसे पतिके साथ ऊपर चली गई, और नलसे हाथ-मुँह धोकर बोली, "जलका एक लोटा मँगवा दो, तो अर्घ्य दे लूँ।"

"वह देखो चौकीपर धरा है, उठा लो।"

गुजरीने जाकर लोटेमें लस्सी और पास दूसरी चीज़ें देखीं, तो उसका दिल नाचने लगा। तुनककर बोली, "तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया। पहले क्यों न कहा, कि सब कुछ ले आया हूँ। यह तो बहुत कुछ है।"

"पहले चाँदको अर्घ्य दे लो, फिर बातें करेंगे।"

"कैसे झूठे आदमी हैं। कहते थे, पानीहीसे अर्घ्य दे लो।"

"मगर अब तो चावल और गंडेरियाँ भी हैं।"

गुजरीने लस्सी, चावल और गंडेरियोंसे चन्द्रमाको अर्घ्य दिया, और हाथ बाँधकर पतिकी दीर्घायुके लिए प्रार्थना की। इस समय उसे चाँद मुस्कराता हुआ दिखाई दिया जैसे आशीर्वाद दे रहा हो, जैसे उसे कह रहा हो, यों ही घबराती थी, अब कहो! गुजरीके मुँहसे हँसी फूट-फूटकर निकलती थी। गुजरी रोकती थी, मगर हँसी रुकती न

थी। वह इठलाती हुई पतिके पास आई, और पास बैठकर बोली, "क्या कुछ लाए, देखूँ।"

ठाकुरसिंहने मिठाईकी टोकरी सामने रखकर कहा, "नम्बर एक।"

गुजरीने मिठाई देखी, तो मुँहमें पानी भर आया, मगर शान्तिसे बोली, "इतनी क्यों ले आए? दो रुपयेसे कमकी न होगी।"

"एक रुपयेकी तो मैं ही खा जाता, शायद इससे भी ज़्यादा खा जाऊँ। कलसे भूखा हूँ, और क्या? देखना कैसे बढ़-बढ़के हाथ मारता हूँ। केवल तुम्हारे कहनेकी देर है।"

गुजरी (मुस्कुराकर)—"और क्या लाए?"

ठाकुरसिंहने फलोंकी टोकरीसे कागज़ उठाकर कहा, "नम्बर दो।"

कुछ सेब थे, कुछ अनार, आध सेर अंगूर, और एक सरदा। गुजरीके कुम्हलाए हुए दिलको ठंडा पानी मिल गया। बोली, "अब मालूम हुआ, आज करवा-चौथका व्रत है।"

ठाकुरसिंहने जेबसे एक बंडल निकालकर खोला, उसमें एक रेशमी साड़ी थी। गुजरीकी आँखें चमकने लगीं। ठाकुरसिंहने कहा, "नम्बर तीन।"

गुजरीने अपना सिर पतिके कन्धेपर रख दिया, और आँखें मूँद लीं। खुशी इतनी थी, कि मुँहसे बात भी न निकलती थी। सारे दिनकी थकन देखते-देखते दूर हो गई। ठाकुरसिंहने उसके सिरपर हाथ फेरकर कहा, "अब भी खुश हुईं या नहीं?"

"जीभसे क्या कहूँ, मेरा मुँह देख लो।"

यह कहकर गुजरीने अपने पतिकी तरफ देखा, और मुस्कराने लगी।

ठाकुरसिंहने गुजरीका मुँह दोनों हाथोंसे पकड़ लिया, और कहा, "अब हमारा भी चाँद निकला। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि यह मुझसे बातें कर रहा है।"

गुजरी (शरारतसे)—कहता है मुझे, देखो।

ठाकुर—नहीं, कहता है, अर्घ्य दो।

यह कहते कहते ठाकुरसिंहने एक पेड़ा उठाकर गुजरीके मुँहमें दे दिया। वह 'न न' करती ही रही, मगर ठाकुरसिंहने एक न सुनी, कहा, "तुमने अपने चाँदको अर्घ्य दिया है, या नहीं। हम अपने चाँदको अर्घ्य दिये बिना कैसे खा लें?"

गुजरीने भी एक पेड़ा पतिके मुँहमें दे दिया। स्त्री-पुरुष दोनों खाने लगे।

इतनेमें गंगूने आकर कहा, "मियाँ याकूबका आदमी बीस रुपये दे गया है।"

ठाकुरसिंहका चेहरा और भी चमकने लगा। गुजरीने गंगूसे रुपये ले लिए, और पतिकी तरफ देखकर कहा, "पहले मिल जाते, तो इतनी तकलीफ़ न होती।"

"उस दशामें यह पेड़े ऐसे मीठे कभी न लगते।"

इतनेमें किसीने नीचे दरवाज़ा खटखटाया।

ठाकुर—कौन है?

"ज़रा नीचे आइए।"

गुजरीने मुँह बनाकर कहा, "इस समय कौन आ गया, बैठे रहो, गंगू पता ले आता है।"

ठाकुरसिंह (हंसकर)—घबराती काहेको हो। मैं नीचे जा

रहा हूँ, दिल्ली नहीं जा रहा। अभी आया।

"इस वक्त एक मिनट भी एक घंटेसे कम नहीं।"

ठाकुरसिंह नीचे गए; थोड़ी देर बाद लौटे, तो चेहरेपर अद्भुत आभा थी। गुजरीने पूछा, "कौन था?"

"दीवान हरजस रायका आदमी था।"

"कौन हरजस राय? वही तो नहीं, जो दुपहरको आया था?"

"बस-बस-बस! वही था। उसीने चित्रके लिए पेशगी रुपया भेजा है।"

गुजरीके दिलमें गुद्‌गुदी होने लगी, जल्दीसे ठाकुरसिंहके पास आकर बोली, "कितना रुपया?"

ठाकुरसिंहने एक-एक शब्दपर रुक-रुककर कहा, "अढ़ाई सौ रुपया।"

गुजरीका दिल खुशीसे धड़कने लगा। बोली, "झूठ तो नहीं बोल रहे?"

"झूठ बोलूँगा, तो मेरा यह जमादार नाराज़ न हो जायगा? यह तुम्हारा चेक रहा।"

यह कहकर ठाकुरसिंहने चेक गुजरीके हाथमें दे दिया। गुजरी चेक और रेशमी साड़ी लेकर जल्दी जल्दी नीचे उतर गई। ठाकुरसिंह मुस्कराने लगे।

सूरदास

१

सूरदास कौन था? कहाँका रहनेवाला था? उसका असली नाम क्या था? यह किसीको भी मालूम न था, न वह अपना असली हाल किसीको सुनाता था। अगर कोई पूछता, तो जबाब देता, "भैया! पापी जीव हूँ, हाल क्या सुनाऊँ? गंगा मैयाकी शरण आ पड़ा हूँ, प्राण निकल जाएँ, तो रामका नाम लेकर गंगामें बहा देना।" इससे ज्यादा बातचीत वह अपने सम्बन्धमें कभी न करता था, मगर वास्तवमें वह ऐसा तुच्छ न था। उसके आनेसे काशीकी रौनक़ बढ़ गई थी। दशाश्वमेघ घाटमें तो जैसे जान-सी पड़ गई। प्रातःकाल चार बजे उठता और तम्बूरा लेकर बैठ जाता था। तम्बूरा बजाता था और हरि-भजन गाता था। उसका आलाप सुनकर लोग मंत्र-मुग्धसे हो जाते थे। उसके चारों तरफ़ लोगोंकी भीड़ लग जाती थी। जब वह असार संसारके वैराग्यसूचक गीत गाता था, उस समय वह साधारण अन्धा मालूम न होता था, कोई उच्च कोटिका दार्शनिक विद्वान् संसारकी असारतापर व्याख्यान देता मालूम होता था। उसका एक-एक शब्द श्रोताओंके हृदयमें खुब जाता था। लोग उसके गानोंमें तन्मय हो जाते थे। वह

अनाड़ी गवैया न था, राग-विद्याका पूरा उस्ताद था। स्त्री, पुरुष, बच्चे सब उसकी प्रशंसा करते थे। कोई उसे पैसा देता, कोई फल, कोई आटा और कोई कपड़ा; परन्तु वह कभी किसीसे कुछ माँगता न था। आँखोंका अंधा था, दिलका अंधा न था। कोई दे या न दे, इसकी उसे चिन्ता न थी, पर लोग उसे उसकी ज़रूरतसे भी ज्यादा देते थे। दोपहर होते-होते उसके सामने पैसों और खाद्य-पदार्थोंका ढेर-सा लग जाता था। जब घाट लोगोंसे खाली हो जाता, तो वह अपने गाने-बजानेकी कमाईको समेटकर गिनता, और तब इतनी ऊँची आवाज़से जैसे कोई किसीको सुना रहा हो, कहता—यह तो बहुत है, क्या करूँगा? उसे आजकी परवा थी, कलकी परवा न थी। गंगा घाटके लोभी साधु उसके पास आकर कहते, 'सूरदासजी, हमें तो कुछ भी न मिला, टापते रह गए। आज भूखा रहना पड़ेगा।' फिर एक लम्बी साँस छोड़कर कहते, 'कलजुगका जमाना है, यात्रियोंके दिल पत्थर हो गए हैं। नहाते हैं, चले जाते हैं। हमारी ओर कोई आँख भी नहीं उठाता।'

सूरदास उनकी बातें सुनता, तो अपने खाने-भरके लिए रखकर बाकी उन्हें बाँट देता था। और यह उस ग़रीबका हाल था, जो आप रोटीके एक-एक टुकड़ेका मोहताज था, जिसकी सारी सम्पत्ति तम्बूरा, एक लकड़ी और चार चिथड़े थीं। उसको यों फटेहालों देखकर कौन कह सकता था कि उसके सीनेमें राज-हृदय धड़क रहा है, कितना महान्! कितना विशाल!! बाहरकी दीवारोंपर निराशा छाई हुई थी, भीतर संगमरमरका महल अपनी विभूति लिए खड़ा था।

२

इसी तरह कुछ वर्ष बीत गए। सूरदास अपनी अँधेरी दुनियाकी काली और कभी न समाप्त होनेवाली लम्बी रातमें उसी तरह सन्तुष्ट था। शायद संसारके इस सबसे बड़े दुर्भाग्यकी ओर उसका ध्यान ही न था। संसारके सुखोंसे दूर, प्रकाशके सुषमापूर्ण दृश्योंसे परे, यौवनके मद-भरे चित्रोंके आनंदसे वंचित होनेपर भी उसके जीवनमें इतना सन्तोष, इतना हर्ष था, जो राज-महलोंमें बादशाहोंको प्राप्त नहीं। वहाँ हज़ारों चिन्ताएँ होंगी, यहाँ एक भी न थी। सूरदास दिनको गाता था, जैसे पंछी फलोंकी डालियोंपर चहकता है; रातको घाटकी सीढ़ियोंपर पाँव फैलाकर सो रहता था, जैसे छोटा बच्चा नींद आनेपर जहाँ हो, वहीं सो जाता है। उसे यह विचार भी नहीं आता कि कहीं सन्दूकका ताला खुला न रह गया हो, कहीं घरमें चोर न घुस आएँ। जीवन-सुखके ये लुटेरे बच्चोंके अकंटक संसारमें पाँव भी नहीं रख सकते। मनुष्य-रुधिरके प्यासे ये भेड़िये बच्चोंके सामने आकर पालतू कुत्ते बन जाते हैं, जो दुम हिलाते हैं, पाँव चाटते हैं, काटते नहीं। यही दशा सूरदासकी थी। उसका स्वभाव बालकोंके समान सरल था। उसकी आवश्यकताएँ न हाथ फैलातीं, न विकल होकर ठंडी आहें भरती थीं। उसकी सृष्टि आहार, निद्रा तथा गाने-बजाने तक परमित थी। इससे आगे न वह आशाकी खोजमें जाता था, न निराश होकर खूनके आँसू रोता था। सन्तोषका इससे अधिक प्रत्यक्ष, ज्वलन्त, जीता-जागता उदाहरण किसीने कम देखा होगा।

रातका समय था। आकाशके तारे गंगाकी लहरोंपर नाचते फिरते

थे। सूरदार घाटकी सीढ़ियोंपर लेटा एक साधुसे बातचीत कर रहा था।

साधु—सूरदासजी, आज तो बड़ी गरमी है। अपने रामकी मरजी है कि जलहीमें खड़े रहें, बाहर न निकलें।

सूरदास—बरखा होनेवाली है। आज तारे क्या निकले होंगे। बादल घिरा होगा। जरूर बरसेगा। ढुम्मस हो रहा है।

साधु—नहीं सूरदासजी, तारे निकले हुए हैं। जो भागवान हैं, वे घरोंमें छतोंपर लेटे होंगे। नौकर खुसामद करते होंगे। एक हम हैं कि यहाँ परालब्धको रो रहे हैं।

सूरदास—परमेसरका नाम लो। उनको हजारों फिकिर हैं। बताओ तुम्हें क्या फिकिर है; बड़े मजेमें हो महाराज। उस जिन्दगीमें जाकर चार दिन न रह सकोगे। मेरा खयाल है कि दो दिनमें भाग आओगे।

साधु (मुसकराकर)—नहीं सूरदास, वह जिन्दगी बड़ी अच्छी है। यह जिन्दगी नहीं, जिन्दगीका मजाक है। दिन पूरे कर रहे हैं।

सूरदास—तो जाओ, कोई राँड़ ढूँढ़कर सादी कर लो। जब तुम्हारे मनकी तिसना नहीं मिटी, तो गेरुए कपड़े पहनना बेफायदा है।

साधु—आज एक सेठ आया था। सबको एक-एक धोती दे गया। जब हम पहुँचे तो धोतियाँ ही खतम हो गईं। हम मन मानकर रह गए। कहा, जा साले, तेरी आसा कभी पूरी न हो। तुम्हें भी मिली होगी, गए थे या नहीं?

सूरदास—मुझे दरकार ही न थी।

साधु—अब जातरी कम आने लगे। पहले तो भीड़ लगी रहती थी। अब नसा-पानी भी मुस्किलसे होता है।

सूरदास—पर वह साधु ही क्या, जिसे नसेका सौक हो। साधु तो वह है, जो रामका भजन करे।

साधु—अब तो, सब आरिये बन गए। जिसे देखो, नमस्ते नमस्ते कर रहा है। न किसीमें प्रेम है, न किसीमें सरधा।

सूरदास (बातका रुख बदलनेके लिए)—बड़ी गरमी है। आज नींद नहीं आएगी।

साधु—अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो हम भूखों मरेंगे। कोई मुट्ठी-भर धान भी न देगा।

सूरदास (अपनी लाठीको टटोलकर)—हमें परमेसर देगा भाई। पुरसकी क्या औकात है? हम तो मर जाएँ, पर किसीके सामने हाथ न फैलाएँ। हमें तो माँगते हुए सरम लगती है। हमारा तो हिरदा बिदरोह करता है। भूखा पड़ा रहना मंजूर, पर माँगना मंजूर नहीं।

साधुने चिलमपर आग रखी और सूरदासकी ओर घृणासे देखकर कहा, "तुममें यह पानी होगा सूरदास। अपने रामसे तो छुधा नहीं सही जाती। बिना माँगे कौन साला देता है?"

यह कहकर साधु चिलम पीने लगा।

सूरदास—परमेसर देता है और कौन देता है? पर तुम परमेसरसे माँगते ही नहीं हो।

साधुने कुछ चिढ़कर उत्तर दिया, "तुम भी तो लोगोंके सामने ही गाते हो। परमेसरके सामने क्यों नहीं गाते? खानेको मिल जाता है, तो चले हैं उपदेस करने। दो दिन भूखे रहो, तो होस ठिकाने आ जाएँ। और क्या?"

परन्तु सूरदास अब भी सन्तुष्ट था। मुसकराकर बोला, "हम

तो भगवानके सामने ही गाते हैं, सुननेको कोई सुन ले । इससे हमको कोई मतलब नहीं । ”

अकस्मात् एक दूसरे साधुने आकर कहा, “ क्यों सूरदास, क्या कर रहे हो ? ”

सूरदास उठकर बैठ गया और अपने तम्बूरे और लाठीपर हाथ फेरकर बोला, “ बातचीत कर रहे हैं महाराज ! आइए, बैठिए, बड़ी गरमी है, सरीर फुँका जाता है । ”

बूढ़ा—नहीं सूरदास, बैठनेका वक्त नहीं, आज एक अद्भुत घटना हुई । घाटपर किसीका बालक रह गया है । तीन-चार सालकी आयु होगी । बहुत खोज की, पर उसके माता-पिताका कहीं पता नहीं लगता । बताओ, क्या करें ? बड़ा प्यारा बच्चा है ।

सूरदास (बेचैन होकर)—रो रहा होगा ?

बूढ़ा—रोता तो इस तरह है कि तुमसे क्या कहूँ । बाबू ! बाबू ! कहकर चिल्ला रहा है । उसे रोते देखकर मेरा हृदय हिल जाता है । मा-बाप भी कैसे बेपरवा होते हैं ! न मिले, तो क्या करें जीवन-भर रोते रहें ।

सूरदास लाठी लेकर खड़ा हो गया और अन्धी आँखोंकी पलकें झपककर और गर्दन हिलाकर बोला, “ ढूँढ़ रहे होंगे, सायद अभी आ जायँ । ”

बूढ़ा—लाख पुचकारते हैं, मिठाइयाँ देते हैं, परन्तु ज़रा चुप नहीं होता । बराबर रोता जाता है । बताओ, क्या करें ?

सूरदास (मुसकराकर)—मेरे पास आ जाय, तो (चुटकी बजाकर) एक मिनटमें चुप हो जाय । क्या मजाल जो जरा भी रो जाय ।

बूढ़ा—वाह सूरदास, तुम तो छिपे रुस्तम निकले। तो चलो, चलकर ले आओ।

आगे आगे बूढ़ा चला, पीछे पीछे सूरदास। एक मिनटमें दोनों घाटके दूसरे सिरेपर जा पहुँचे, जहाँ बालक फूट-फूटकर रो रहा था। सूरदासने जाते ही लाठी ज़मीनपर रख दी और हाथ फैलाकर कहा, "लाओ तो इसे मेरे पास—आ बेटा, मेरे पास आ।" यह कहकर उसने बालकको उठा लिया और गलेसे लगाकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगा। बालकने पहले तो आश्चर्यसे सूरदासकी ओर देखा। शायद वह सोच रहा था कि यह कौन है? परन्तु दूसरे ही पलमें उसने अपना सिर उसके कन्धेपर रख दिया और धीरे-धीरे सिसकने लगा, मानो घबराये हुए बालकको माकी गोदमें आश्रय मिल गया। वह कुछ देर सिसकियाँ भरता रहा। इसके बाद चुप हो गया। सच्चे प्रेमके राज्यमें रोने-धोनेका अवकाश कहाँ?

३

दूसरे दिन सवेरे ही सूरदास हलवाईकी दुकानपर खड़ा हलवा पूरी माँग रहा था। लोग देखते थे और हैरान होते थे। यह वही सूरदास था, जिसने किसीके सामने कभी हाथ न फैलाये थे। जो कहता था, मरता मर जाऊँगा, कभी मुँहसे न माँगूँगा। आज उसकी यह टेक कहाँ चली गई थी? आज उसके आत्माभिमानको क्या हो गया था? गंगाघाटके साधुओंने कहा, "सूरदास, यह कायापलट कैसी? एक ही रातमें क्यासे क्या हो गए!"

सूरदासने अपने दृष्टिहीन नेत्रोंसे उनकी ओर देखा और पलकें झपककर कहा, "भैया, एक ही दिनकी बात है। आज सायंकाल

तक इसके मा-बाप आकर ले जायँगे।" यह कहकर उसने बच्चेको सीनेसे लगा लिया और उसका सिर चूम लिया।

मगर साँझ हो गई और बच्चेको लेने कोई न आया। दो-तीन दिन और इसी तरह बीत गए, फिर भी कोई न आया। दिन सप्ताहोंमें बदल गए। बालक, जिसे सूरदास 'दीपक' कहता था, उससे हिल-मिल गया। कभी उसकी गर्दनपर सवार हो जाता, कभी गोदमें आ बैठता, कभी तम्बूरेको आकर छेड़ता, कभी लकड़ी लेकर भाग जाता। सूरदासको उसकी ये बाल-क्रीड़ाएँ बड़ी प्यारी लगती थीं। क्या मजाल जो कोई उसे ज़रा भी डाँट जाय। अब दोपहरके समय वह अपने गाने-बजानेकी कमाई साधुओंमें नहीं बाँटता था, न गाते समय अब वह सन्तोष प्रकट करता था। अब उसे जितना मिलता, उतना ही कम था। जैसे अब यह सूरदास वह सूरदास न था। उसकी आमदनी अब पहलेसे बढ़ गई थी, परन्तु उसके चित्तका वह सन्तोष कहाँ था? जब वह गाता, बालक अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे लोगोंकी ओर देखा करता। लोग पूछते, 'यह बच्चा कौन है?' सूरदास कहता, 'हजूर किसी भागवानका पुत्र है। सोचता हूँ, इसे तकलीफ न हो। क्या याद करेगा।' लोग कहते, 'सूरदास, इसे ज्यादा सिर न चढ़ा, बिगड़ जायगा।' सूरदास किसी विचारसे सहमकर ठंढी साँस भरता और गिड़गिड़ाकर उत्तर देता, 'सरकार, परमेसरने चार दिनके लिए पाहुना भेजा है। मेरे पास हमेसा थोड़ा बैठा रहेगा। सायद आज ही इसके मा-बाप आ जाएँ और इसे ले जाएँ। आपसे आप सुधर जायगा। मैं तो यह सोचता हूँ, इसका मन मैला न हो। जब यह उदास होकर चुपचाप बैठ जाता है, तो मेरे कलेजेमें

तूफ़ान-सा उठ खड़ा होता है। जाने किसका बेटा है। वहाँ जाने इसकी कैसी-कैसी खुसामदें होती होंगी। जाने कैसे-कैसे नौकर खिदमत करते होंगे। यहाँ एक अन्धेके सिवा इसका कौन है? मैं भी डाँट-डपट करने लगूँ, तो इसका हिरदा मुरझा जाए। अब कैसा चहकता फिरता है। फिर सिर भी न उठाएगा।'

परन्तु बारह वर्ष गुज़र गए और 'दीपक'को लेनेके लिए कोई न आया। सूरदासने समझ लिया, अब यह मेरे ही सिर पड़ा। अब वह रातको घाटपर नहीं सोता। उसने शहरमें एक छोटा-सा मकान किरायेपर ले लिया है। वहाँ सभी जरूरी चीज़ें हैं। दरी है, पलंग है, बर्तन हैं, सन्दूक है, टाइमपीस है, एक मेज और कुरसी है, शीशा और कंघी है, एक लैम्प भी है। किन्तु यह सब कुछ दीपकके लिए हैं, सूरदासके लिए नहीं। वह अब भी वही सूरदास है। उसी तरह भीख माँगता है। हाँ, लोभी बहुत हो गया है। अब उसके उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गए हैं। पहले आज़ाद था, अब गुलाम है। पहले निश्चिन्त होकर सोता था, अब रातको चौंक-चौंककर उठ बैठता है। घाटपर प्रातः ही पहुँच जाता है। बड़ी मेहनतसे गाता है। मिन्नत कर करके माँगता है। जब तक रुपया सवा रुपया न मिल जाए, उठनेका नाम नहीं लेता। कभी उसके लिए रुपया मिट्टीके बराबर था, अब कौड़ी-कौड़ीको दाँतोंसे पकड़ता है। क्या मजाल जो किसीको एक पैसा भी दे जाय। हाँ, दीपकके लिए उसकी जान भी हाजिर है। उसके लिए अच्छीसे अच्छी वस्तुएँ खरीदता है, और उसे देकर खुश होता है। दीपक नवीं श्रेणीमें पढ़ता है। सूरदास उसे अपने हाथसे खाना बनाकर खिलाता

है और स्कूल भेजता है। उसके पश्चात् फिर घाटपर जा बैठता है और माँगता है। परन्तु तीन बजेसे पहले घर पहुँच जाता है, ताकि दीपकको स्कूलसे आते ही पीनेके लिए दूध मिल जाय। रातको वह लेम्पके सम्मुख बैठकर पढ़ता है, सूरदास दरीपर लेटकर अपने दिलसे बातें करता है। कभी कभी दीपकको पुकारकर देख भी लेता है कि सो तो नहीं गया। सो जाय, तो उठाकर बैठा देता है, और कहता है, 'पढ़।' रातको सोते समय उसे दीपकहीके ख़याल आते हैं। जब जाग उठता है, तो सोचता है, यह नौकर हो जाय तो इसका व्याह कर दूँ। घाटपर एक साधुनी है। उसके एक बारह-तेरह सालकी बेटी है। लोग कहते हैं, वह देखने-सुननेमें भी अच्छी है। उसका कंठ बड़ा सुरीला है। गाती है तो समा बँध जाता है। सूरदास चाहता है, उसका दीपकसे व्याह हो जाय। वह भी बहू-वाला बन जाय। उसे भी अपने हाथसे खाना पकाना न पड़े। सोचता, बैठा हुक्म चलाया करूँगा। जरा-सी भी बात इच्छाविरुद्ध हो जाय, तो रूठ जाया करूँगा। दोनों मनायँगे, जब मानूँगा। मगर हाँ, घाटपर जाना बन्द कर दूँगा। नहीं, लोग दीपकको बुरा-भला कहेंगे।

ये आशाएँ कितनी प्राण-पोषक थीं, कितनी उल्लासमयी! सूरदासको ऐसा मालूम होता था कि उसकी अन्धेरी दुनिया जगमगा रही है। जैसे उसके नेत्र खुल जानेवाले हैं। जैसे उसका संसार बदल जानेवाला है। अब तक भीख माँगता था, अब राजसिंहासनपर बैठ जायगा। इस विचारके आते ही उसके दिलका कमल खिल जाता था। उसकी तबीयत हरी हो जाती थी। साधुनीको भी यह सम्बन्ध पसन्द

है। फकीरकी बेटीको उससे अच्छा वर और कौन मिलेगा? आज नवीं कक्षामें पढ़ता है। कल दसवीं पास करके कहीं नौकर हो जायगा और बाबू कहलाएगा। लड़की राज करेगी। साधुनी उस समयका विचार करते ही एकदम भावोंके स्वर्गमें पहुँच जाती थी। हमारी वर्तमान दशा कैसी भी शोचनीय क्यों न हो, परन्तु हमारे भविष्यको आशाकी ज्योतिसे खाली किसने किया है?

४

मगर सूरदासहीको दीपकसे स्नेह न था। दीपकको भी सूरदाससे प्यार था। स्कूलसे आता, तो 'दादा, दादा' कहकर उसके गलेसे लिपट जाता था। उसे खाना पकाते देखकर उसे हार्दिक कष्ट होता था। उसका घाटपर जाना तो अब उसे असह्य होता जाता था। मगर उसके बसमें होता, तो एकदम बन्द कर देता। प्रायः कहा करता, "दादा, मुझे नौकर हो जाने दो, फिर क्या मजाल, जो घाटपर तुम पाँव भी धर जाओ। जो कमाऊँगा, तुम्हारे हाथमें दूँगा। जैसा चाहो, खर्च करना। मैं ज़रा दखल न दूँगा। सब बुरा-भला तुम्हारे हाथमें होगा। मुझे केवल दोनों समय पेट भरनेको मिल जाय। मुझे और कुछ न चाहिए।"

एक दिन सूरदासने कहा, "दीपू, अब अगर तुम्हारा बाप आ जाए, तो क्या करो? मैं जानूँ, खुसीसे साथ चल दो। मेरा खयाल भी न करो। जाने फिर कभी याद भी करो या न करो।"

दीपकने सूरदासकी ओर प्रेम और रोषकी मिली-जुली दृष्टिसे देखकर उत्तर दिया, "दादा, ऐसी बातें न करो, नहीं तो मैं रो दूँगा। अब मेरे मा-बाप सब तुम ही हो और कोई नहीं। जिस प्रेमसे, जिस

आदरसे मुझे तुमने पाला है, ऐसे प्रेमसे कोई बाप भी अपने बेटेको क्या पालेगा। मैं तुम्हें बाप ही समझता हूँ। मुझे स्वप्नमें भी कभी यह विचार नहीं आता कि तुम मेरे बाप नहीं हो।"

सूरदासके दृष्टि-विहीन नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उसने अपनी दोनों भुजायें फैला दीं। दीपकके हाथमें पुस्तक थी, वह उसे ज़मीनपर पटककर सूरदासके गलेसे लिपट गया, और रोते-रोते बोला, "दादा, फिर ऐसी बात न कहना, मुझे दुःख होता है।"

सूरदासने दीपकके मुँहपर प्यारसे हाथ फेरा, और अधीर होकर पूछा, "अच्छा बता, अगर तेरा बाप आ जाय, तो तू जाय या न जाय? जो वह बहुत भागवान हो, बड़ा अमीर हो, बड़े इक़बालवाला हो, बोल, क्या करे? मुझ अन्धे फ़कीरका खयाल करे या उसका, साफ़-साफ़ कह।"

दीपकने तड़से उत्तर दिया, "सच कहता हूँ दादा, चाहे वह लखपती हो, तब भी परवा न करूँ। किसी रियासतका राजा हो, तब भी न जाऊँ। मेरे लिए जो तुमने किया है, वह कोई किसीके लिए कम करेगा। अगर तुम न होते, तो मैं रो-रोकर मर जाता। कोई रोटीका टुकड़ा भी न फेंकता। दादा, इसमें ज़रा भी झूठ नहीं है। मैं चाहता हूँ, मेरे मा-बाप मुझे लेने न आवें। मैं यह घर कभी न छोड़ूँगा।"

सूरदास—अरे, यह घर! इसमें क्या धरा है, मूरख कहींका।

दीपक—जो इसमें है, वह बड़े राजमहलोंमें भी नहीं है दादा!

सूरदासका हृदय खिल गया। खुश होकर बोला, "अरे! इसमें क्या है? तुम्हारे रहने लायक भी तो नहीं है।"

दीपक—वाह ! रहने लायक क्यों नहीं है ? इसमें तुम हो, तुम्हारा स्नेह है। इससे ज्यादा संसारमें और मुझे क्या चाहिए ? मुझे अगर कोई स्वर्ग भी दे, तब भी यहाँसे न जाऊँ। दादा, तुम्हें शायद विश्वास न हो, मुझे इस घरकी एक-एक वस्तु प्यारी है। यहाँका चप्पा चप्पा मेरा मित्र है। मुझे इसकी एक-एक ईंट अपनी लगती है।

सूरदासको किसीने आकाशपर चढ़ा दिया। इस समय वह उस ग़रीब, माँगकर खानेवाले, गंगा-घाटपर बैठकर तम्बूरा बजानेवाले अन्धे फकीरसे कितना भिन्न, कितना परे था। उसके दिलमें आनन्दकी लहरें उठ रही थीं। अब उसका परिश्रम सफल होनेको था। अब उसको अपनी तपस्याका फल मिलनेको था। आज अन्धेकी अन्धेरी दुनियामें आशाका दीपक जल रहा था। उसने दीपकको गलेसे चिमटा लिया और खुशीसे रोने लगा।

५

दो वर्ष और बीत गए। दीपकने एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास कर ली और कालेजमें भरती हो गया। सूरदास किंकर्त्तव्यविमूढ़ था। क्या करे, क्या न करे। उसकी भिक्षाकी आमदनी तीस-पैंतीससे अधिक न थी और इस आमदनीसे कालेजके विद्यार्थीका निर्वाह होना कठिन था। इस समस्याने उसे हैरान कर दिया था। वह दीपकको समझाता 'बेटे, कहीं नौकरी कर ले, अब मुझसे घाटपर नहीं बैठा जाता।' दीपक उत्तर देता, 'दादा, इतनी पढ़ाईको कौन पूछता है ? कोई बीस-पचीस रुपयेसे भी अधिक न देगा। इससे हमारा निर्वाह कभी न होगा। एफ० ए० पास कर लूँ, तो चालीस-पचास कहीं गए नहीं हैं। किसी तरह दो

साल निकल जाएँ, तो सारी उम्रका रोग कट जाय।' युक्ति प्रबल थी। सूरदासका मुँह बन्द हो जाता। मगर रुपया कहाँसे आए? वह अन्धा था, और घाटपर बैठकर गाता था और जो कुछ लोग उसे भिक्षा स्वरूप देते थे, वह रुपया सवा रुपया दैनिकसे अधिक न होता था। इधर दीपकको शहरका पानी लग गया था। पहले सीधे-साधे कपड़े पहनता था, अब कोट-पतलून पहनने लगा। नेकटाईके बिना अब उसका कालेज जाना असम्भव था। बूट-पालिश और बालोंके लिए तेलका खर्च बढ़ गया। पहले घरहीमें व्यायाम कर लेता था, अब टेनिसकी चाट लग गई। सूरदास समझाता, तो मुँह फुला लेता था। कहता, 'तुम तो चाहते हो, कालेजमें नक्कू बनकर रहूँ। मुझसे यह न होगा, कहिए, पढ़ाई छोड़ दूँ?'

सूरदास यह भी न चाहता था। कभी कभी उसे यह सन्देह होता था कि दीपकका स्वभाव बदल रहा है। अब उसमें स्वार्थकी मात्रा बढ़ती जाती है। यह सन्देह उसके लिए अत्यन्त दुःखदायी था, पर वह इस सन्देहको अधिक देर तक ठहरने न देता था। हम कोई बात अपने निकटके बन्धुओंके विरुद्ध किसीसे सुनना नहीं चाहते। यही अवस्था सूरदासकी थी। वह अपने आपको धोखा दे रहा था। उसकी एकमात्र अभिलाषा थी कि जैसे भी हो, दीपक एफ़० ए० पास कर ले। मगर रुपया? यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा था। तीस-चालीस रुपयेकी आमदनी थी और साठ-सत्तरका खर्च। सूरदास इसी चिन्तामें घुला जाता था। उसे रातको नींद तक न आती थी। आखिर रातको काशीकी गलियोंमें जाकर गाने लगा। शायद इसी तरह कुछ बन जाय। गानेमें दर्द था। स्त्रियाँ अपने घरोंमें

बुला लेतीं, और गीत सुनतीं। सूरदास उनसे अपना रोना रोया करता, कहता, ‘माजी, लड़का कालेजमें पढ़ता है, सहायता करो।’ स्त्रियाँ कहतीं, ‘सूरे, तू इतना कमाता है, वह सब कहाँ जाता है?’ सूरदास अपनी ज्योति-विहीन आँखोंको इधर-उधर घुमाता और कहता, ‘बड़ा खर्च है माजी, पिसा जाता हूँ। किसी तरह दो वर्ष गुजर जायँ, तो सुकर करूँ।’ स्त्रियाँ कहतीं, ‘बड़ा निर्दयी छोकरा है। नौकरी क्यों नहीं कर लेता? तू इस आयुमें कहाँ तक मेहनत करेगा?’ सूरदास जवाब देता, ‘नौकरी क्या करे। कोई तीस-चालीस भी तो न देगा।’ स्त्रियाँ कहतीं, ‘बूढ़े, तेरी अकल मारी गई है। क्या अब तेरा लड़का डिपटी हो जायगा?’ सूरदास उत्तर देता, ‘परमेसर जो चाहे, कर दे। उससे यह भी दूर नहीं है। जाने उसकी किसमतमें राज करना ही लिखा हो। माजी, आज एक रुपया दे दीजिए। बड़ा पुन्न होगा। बड़ी ज़रूरत है। बस, एक रुपया मिल जाय। इसके बदले परमेसर आपको सौ देगा माजी!’ स्त्रियोंको दया आ जाती। आना, दो आने दे देतीं। सूरदासका काम बन जाता।

इधर यह दुबला, पतला, निर्बल बूढ़ा सिपाहियोंके समान जीवनकी लढ़ाई लड़ रहा था, उधर दीपक सुन्दरता और यौवनकी उपासना करने लगा। उसकी कक्षामें एक विधवाकी रूपवती बेटी रूपकुँवर पढ़ती थी। दीपकका उससे प्रेम हो गया। हर समय एक साथ रहने लगे। क्लासमें भी एक साथ पढ़ते थे। इकट्ठे सैरको जाते और अपने भविष्यकी बातें सोच सोचकर खुश होते। दूसरे विद्यार्थी यह देखते थे और हँसते थे। कुछ एक ऐसे भी थे, जिन्हें ईर्षा होती थी। वह कहते, ‘यह अन्धेका बेटा कैसा भाग्यशाली

है। कालेजमें एक ही परी थी, उसको ले उड़ा। हम टापते ही रह गए। लड़की निरी मूर्खा है, उसके चकमेंमें आ गई है। चार दिनमें पछताने लगेगी। न जाने किसका बेटा है ! शायद किसी भंगी-चमारका लड़का हो।' परन्तु इन प्रेमके मतवालोंको किसीकी भी परवा न थी। इनका प्रेम बराबर बढ़ता जाता था; मगर जब एफ० ए० का नतीजा निकला और दोनों पास हो गए, तो विरह-वेदनाका भयंकर रूप दिखाई दिया। जब तक पढ़ते थे, विरहकी चिन्ता न थी, पर परिणाम निकलते ही उनके ब्याह-शादीका प्रश्न उठ खड़ा हुआ। रूपकुँवरीकी सगाई अपनी जातिके एक अमीर वकीलसे हो चुकी थी। उसके मा-बापने लिखा, अब हम अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, जल्दी ब्याह कर दो। उधर साधुनीने सूरदाससे कहा, अब तो एफ० ए० की परीक्षा भी पास कर ली है, अब ब्याहमें देर न करो। लड़की जवान हो गई है।

दीपक और रूपकुँवर दोनों घबरा गए। क्या करें ? काश, परीक्षामें फेल हो जाते, तो एक वर्षका और मौका मिल जाता, परन्तु हाय शोक ! उनके भाग्यमें फेल होना न लिखा था ! विद्यार्थी फेल होकर रोते हैं, वे पास होकर रो रहे थे।

एक दिन दीपकने रूपकुँवरसे कहा, "दादा नहीं मानता। कहता है, मैं साधुनीको वचन दे चुका हूँ। अब इनकार क्योंकर कर दूँ ? लड़की तुम्हारे नामपर बैठी है। वह क्या करेगी ?"

रूपकुँवरने दीपककी ओर करुणायुक्त दृष्टिसे देखा और गर्दन झुका ली।

दीपकने डरते-डरते पूछा, "तुम्हारी मा क्या कहती है ?"

रूपकुँवरने सिर हिलाकर धीरेसे उत्तर दिया, "वह भी नहीं मानती। कहती है, जाने किसका बेटा है? तुम्हें अन्धे कूएँमें कैसे झोंक दूँ।"

दीपकके सीनेमें तीर-सा चुभ गया। थोड़ी देर दोनों चुपचाप अपने अपने दिलमें कुछ सोचते रहे। इसके बाद दीपकने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और कहा, "रूप, अगर मुझे मालूम होता कि हमारे प्रेमका यह परिणाम होगा, तो तुमसे कभी प्यार न करता। हँस-हँसकर मिले थे, रो-रोकर जुदा होंगे।"

रूपकुँवरने नागिनकी तरह सिर उठाया और कहा, "हमें जुदा कौन कर सकता है? कोई नहीं। मुझे माकी भी परवा नहीं है।"

दीपक—जुदा तो होना ही पड़ेगा रूपकुँवर!

दोनों फिर चुप हो गए। साँझका समय था; गंगाका पानी, उसके किनारेके वृक्ष, पक्षियोंका कलरव, दिनका प्रकाश—सब धीरे-धीरे अँधेरेमें डूब रहे थे। ठीक उसी तरह उनकी आशाओंके फल, जीवनका प्रकाश, मनोकामनाओंका शोर—सब कुछ निराशाके अँधेरेमें डूबा जा रहा था। सहसा रूपकुँवरने दीपकके कन्धेपर हाथ रखा, उसकी आँखोंमें अपनी आँखें डालीं और साहससे बोली, "चलो, कहीं भाग चलें। ऐसे देशमें, जहाँ हमारा अपना कोई भी न हो। विरोध अपने ही करते हैं, पराए नहीं करते।"

दीपकने रूपकुँवरका फूल-सा हाथ अपने हाथमें लेकर आहिस्तासे कहा, "बदनाम हो जायँगे।"

रूप०—परन्तु चिन्ता तो मिट जायगी।

दीपक—दादा क्या करेगा?

रूप०—करना क्या है। घाटपर बैठकर गाना गायेगा। तुम भोले हो। समझते हो, उसे भी तुम्हारा उतना ही ख़याल है, जितना तुम्हें उसका ख़याल है।

दीपक,—और तुम्हारी माँ ?

रूपकुँवर (अपने सिरकी साड़ीको ठीक करके)—वह भी चार दिन रोएगी, फिर चुप हो जाएगी, समझ लेगी, लड़कीने अपने मनकी कर ली। और क्या ?

यह कहकर रूपकुँवरने शर्मसे गर्दन झुका ली। इस शर्मने दीपकके दिलमें आग लगा दी। उसका दिल दोनों ओर दौड़ता था। उसे दादाका भी ख़याल था, रूपकुँवरका भी। वह दोनोंको चाहता था, परन्तु दोनों एक दूसरेसे कितने दूर, कितने परे थे। दोनोंके बीचमें हज़ारों कोसोंका अन्तर था। दीपक सोचने लगा।

अन्तमें वही हुआ जो ऐसे अवसरपर परम्परासे होता आया है। रूप और यौवनके लोभने कर्त्तव्यका गला घोंट दिया। दूसरे दिन दोनों गायब थे।

६

सूरदासका संसार सूना हो गया। चारों ओर भागता फिरता था और दीपकको ढूँढ़ता था। कालेजके प्रोफेसरोंके पास जाकर रोया, विद्यार्थियोंसे जाकर पूछा, दीपकके मित्रोंके पास गया, पर दीपकका किसीको भी पता न था। क्या-क्या आशाएँ थीं, सबपर पानी फिर गया। क्या क्या उमंगें थीं, सब मिट्टीमें मिल गईं। लोग कहते, 'सूरदास, अब बैठकर हरि-भजन कर। चला गया है, चला जाने दे।' सूरदास जवाब देता 'क्या करूँ, जी नहीं मानता।' गंगा-घाटके

साधु कहते, "सूरे, तू तो बावला हो गया है, कभी पराया बेटा भी अपना हुआ है ? पराया सदा पराया है। अब उसका ख़्याल छोड़ दे। अब वह कभी न लौटेगा।"

एक पुजारीने कहा, "जब तक पढ़ता था, उसे तेरी जरूरत थी। अब पढ़-लिख गया है, अब उसे तेरी क्या ज़रूरत है ?"

सूरदासकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

वह लाठीके सिरेपर हाथ रखकर बोला, "उसे तो खाने-पीनेकी भी सुध नहीं। कोई न खिलाए, तो दो दो दिन खाना ही न खायगा, बड़ा भोला है। बड़ा बे-परवा है।"

एक और साधुने कहा, "यह सब माया है सूरदास, तू अगर जरा सोचे, तो तेरे हिरदेके किवाड़ खुल जायँ।"

मगर सूरदासके दिलपर जो बीत रही थी, उसे कौन जानता था ? सन्ध्या-समय घरको जाता, शायद आ गया हो; परन्तु वहाँ कोई न मिलता। रातको जरा दरवाज़ा हिलता, तो सूरदास उठकर बैठ जाता, शायद वही हो; मगर वह कहाँ था ? अन्धेकी किसमत उसकी अंधी आँखोंसे भी ज़्यादा अँधेरी थी।

इसी तरह तीन वर्ष गुज़र गए, दीपक और रूपकुँवरकी कोई टोह न मिली। रूपकुँवरकी मा बेटीके वियोगमें रो-रोकर मर गई। सूरदास जीता था, पर उसकी दशा मुर्देसे भी बुरी थी। पहले शरीर मज़बूत था, अब हड्डियोंका पिंजर रह गया है। अब उसे किसीने हँसते नहीं देखा। गाना भी छूट गया है। जब किसीसे बात करता है, तो उसकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। चुपचाप घाटपर बैठा रहता है, और दोपहरको उठकर घर चला आता है। साधुओंने

बहुत समझाया कि मकान छोड़ दे, परन्तु सूरदास मकान नहीं छोड़ता। उसे अब भी दीपकके आ जानेकी आशा है। हर रात उसके पलंगपर बिस्तरा बिछाता है, हर सप्ताह उसकी चादर बदल देता है। रोज़ लैम्पकी चिमनी साफ़ करता है, रोज़ पुस्तकोंपरसे गर्द झाड़ता है। उसकी इस अन्धी, बहरी, निराश न होनेवाली मुहब्बतको देखकर लोगोंके कलेजेमें हूक-सी उठती है। ऐसी श्रद्धा, ऐसी भक्ति, ऐसी भावुकतासे किसी उपासकने अपने इष्टदेवको भी न रिझाया होगा।

आखिर एक दिन सूरदासके सोए हुए भाग्य जागे।

रातका समय था। सूरदास दीपकके पलंगकी चादर बदल रहा था और गुज़रे हुए दिनोंको याद कर रहा था। अकस्मात् किसीने दरवाज़ा खटखटाया। सूरदास सचेत हो गया। यह हवाका धक्का न था, न कोई जीव जन्तु था। ज़रूर कोई आया है। यह विचार आते ही सूरदासने झपटकर किवाड़ खोल दिया, और बिना प्रतीक्षा किये पूछा, "कौन, दीपक?"

"नहीं, दीपक नहीं; मगर उसका समाचार है।"

सूरदासकी नस-नसमें खुशी दौड़ गई। वह साधुको घसीटकर अन्दर ले गया, और पलंगपर बैठाकर हाँफते हुए बोला, "जल्दी बताओ, क्या खबर है?"

यह कहकर उसने झटपट लैम्प जला दिया।

साधु—मैंने तुम्हारा दीपक देखा है।

सूरदासका मुख आशाकी रोशनीसे चमकने लगा। जल्दी-जल्दी आँखें झपकाकर बोला, "कहाँ देखा है, बाबाजी!

साधु—लाहौरमें।

सूरदास—वही है। कहीं तुमसे ग़लती तो नहीं हुई?

साधु—ग़लती कैसे होगी? मैं उसे हज़ारोंमें पहचान लूँ। वह राँड़ भी उसके साथ थी, दोनों बाज़ारमें जा रहे थे। मैंने देखते ही पहचान लिया कि वही है। अब तो सा'ब बन गया है। अब वह बिलकुल सा'ब माळूम होता है। सूरे, ज़रा चिलम तो दे।

सूरदासने चिलमपर आग धर दी। साधु दम लगाने लगा।

सूर०—तुमने बुलाया नहीं?

साधु—बुलाया क्यों नहीं, झट आगे बढ़कर कहा, 'बाबू सा'ब कुछ दान मिल जाय।' उसने मेरी ओर मुसकराकर देखा और कहा, 'बाबा! कुछ काम क्यों नहीं करते?' वह राँड़ बोली, 'मुफ्तमें खानेकी आदत पड़ गई है', किन्तु दीपकने एक पैसा दे ही दिया। उस राँड़का अख्त्यार होता, तो कभी न देती। बोलो, चलोगे? मैं उसका मकान भी देख आया हूँ। ग्वालमंडीमें।

सूरदासको साधुके मुखसे दीपककी स्त्रीके लिए राँड़का शब्द सुनकर ज़हर चढ़ गया, मगर उसने क्रोधको प्रकट न होने दिया। बोला, "ज़रूर चलूँगा। तुम भी चलोगे न? तुम्हारा किराया मैं दूँगा। आज मुझे बड़ी खुसी है। आज मुझे अपने दीपककी खबर मिली है। उसे सरम लगती होगी, वर्ना आप आकर ले जाता। मैं जाते ही छिमा कर दूँगा, तो बड़ा खुस होगा। बोलो, कब चलोगे? आज ही क्यों नहीं चलते? उसे पाकर मैं जी जाऊँगा।"

साधु—आज नहीं, परसों चलेंगे। मैं तुम्हें उसके दरवाज़ेपर पहुँचाकर चला आऊँगा, यह पहले कहे देता हूँ।

सूर०—चले आना; मगर परसों तो बहुत दूर है। अब मुझसे

धीरज न होगा। कल चलो।

यह कहकर सूरदासने साधुके चरण पकड़ लिए। अब वह इनकार न कर सका, बोला, कल ही सही, रुपयोंका परबंध कर लो।

सूर०—रुपयेकी चिन्ता न करो। अब इस वक्त कहाँ जाओगे? यहीं पड़ रहो। क्यों?

साधु—नहीं सूरे, घाटपर जाऊँगा। सीधा इधर ही आ रहा हूँ। इस वखत जाने दो, सबसे मिलना है।

साधु चला गया। सूरदास बैठकर सोचने लगा, 'दीपक क्या कहेगा? देखते ही गलेसे लिपट जायगा, और छिमा माँगेगा। मैं पहले खफा हूँगा, फिर मान जाऊँगा। उसकी बहू लायक मालूम होती है। चलो, अच्छा हुआ, साधुनीकी लड़की फिर भी फकीरनी हीं थी। यह पढ़ी-लिखी है। मेरा ज़रूर खयाल करेगी। ऐसी स्त्रियोंका हिरदा नरम होता है।'

सूरदासने तम्बूरा उठाया और गाने लगा। आज उसका स्वर कितना मीठा, कितना सुरीला था। आज उसका दिल उमड़ा हुआ था। कुम्हलाई हुई आशा फिर हरी हो उठी थी। जब सबेरा हुआ, तो उसने मिट्टीके भाँडेसे रुपये निकाले और अंटीमें बाँधकर घाटकी ओर चला। आज उसके पाँव जमीनपर न पड़ते थे।

७

चौथे दिन रातके समय लाहौरमें ग्वालमंडीके एक दोमंज़ले मकानके सामने एक टमटम रुकी, और उसमेंसे वह साधु और सूरदास उतरे। साधु सूरदासको मकानके पास ले गया और दूसरे दिन मिलनेकी प्रतिज्ञा करके चला गया। सूरदास कुछ देर चुप रहा, इसके बाद

उसने धीरेसे किवाड़ खटखटाया।

"कौन है?"

सूरदासका कलेजा धड़कने लगा—यह वही था, वही स्वर था, वही उच्चारण था, वही शब्द थे, वही माधुरी थी। जरा भी फ़र्क न था। वही जिसके लिए सूरदास तीन साल तक छटपटाता रहा था, जिसके सामने वह अपना जीवन भी तुच्छ समझता था।

"कौन है?" दीपकने फिर पूछा और उसके साथ ही कमीज़ पहने नंगे सिर आकर दरवाजेमें खड़ा हो गया।

सूरदासने दीपकके पाँवोंकी आहट पहचान ली और दोनों हाथ फैलाकर कहा, "भैया! मैं हूँ सूरदास।"

दीपकने एक क्षणके लिए सूरदासके भूखे सूखे शरीरको देखा, और इसके बाद "दादा! दादा!" कहकर उसके गलेसे लिपट गया।

थोड़ी देरके बाद दोनों कमरेमें बैठे थे, और बातें कर रहे थे। सूरदासने कहा, "देखा! मैंने तुझे आ पकड़ा। अब कहाँ भागेगा?"

"शायद आपको विश्वास न हो। कई बार तैयार हुआ कि चलकर आपको यहाँ ले आऊँ परन्तु लज्जा रास्ता रोक लेती थी।"

"एक खत ही लिख दिया होता।"

"रूपकुँवर कहती थी, मेरी माको पता लग गया, तो बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी।"

"वह तो कभीकी मर चुकी। तुम्हें मालूम है या नहीं?"

"जी हाँ, मालूम हो गया था। आप तो आधे भी नहीं रहे। आप मुँहसे न बोलते तो शायद मैं पहचान भी न सकता। वह शकल ही नहीं रही।"

सूरदास (दीपकके शरीरपर हाथ फेरकर)—तुम भी तो बहुत कमज़ोर हो गए। कुछ दूध पीते हो या नहीं? भैया, दूध रोज़ पिया करो।

"रोज पीता हूँ दादा! मुझे तो सब कहते हैं, तुम बहुत मोटे हो गये हो।"

"चल झूठा कहींका। जो बात काशीमें थी, वह बात कहाँ? क्या तलब मिलती है?"

"६०) मिलते हैं। वह भी स्कूलमें पढ़ाती है। ६०) उसे मिलते हैं। सवा सौ हो जाता है। बड़े मज़ेमें हैं।"

"बुड्ढेका तो खयाल ही न था। अब खोपड़ीपर आकर सवार हो गया। तेरी स्त्री बुरा तो न मानेगी?"

"वह मुझसे ज्यादा प्रसन्न हो रही है। कहती है, अहोभाग्य! जो हमारा बड़ा कोई घरमें आया।"

परन्तु प्रसन्नताकी पोल रातको खुली।

आधी रातका समय था। सूरदासकी आँख खुल गई। दीपक और रूपकुँवर धीरे धीरे बातें कर रहे थे। अन्धोंके कान बहुत पतले होते हैं। सूरदासने एक-एक शब्द सुन लिया। राजकुँवर कह रही थी, "बड़े संकटमें फँस गए। क्या करें?"

दीपक बोला, "मैंने इसीलिए चिट्ठी नहीं लिखी थी कि दौड़ा हुआ चला आएगा।"

रूपकुँवर—कह दो वहीं चला जाए। हम पाँच रुपये हर महीने भेज दिया करेंगे।

दीपक—अन्धा कभी न मानेगा।

रूपकुँवर—मैं बैठाकर पराठे खिलाऊँ, यह मुझसे भी न होगा।

दीपक—यार-दोस्त पूछेंगे 'यह कौन है' तो क्या कहूँगा?

रूपकुँवर हँस पड़ी, "कह देना मेरे पूज्य पिताजी हैं, और क्या?"

दीपक—साठ सत्तर वर्षका हो गया, मौत भी नहीं आती। अभी दस वर्षसे पहले कभी न मरेगा। देख लेना।

सूरदासको ऐसा मालूम हुआ, जैसे खाट उसके नीचेसे निकली जाती है, जैसे उसके दिलपर किसीने सहस्रों मनका पत्थर रख दिया है। वही लड़का जिसे उसने इतने लाड़-प्यारसे पाल-पोसकर बड़ा किया था, जिसके लिए रात-दिन एक कर दिया था, जिसके पढ़ानेके लिए उसने अपना आत्म-गौरव भी बेच दिया था, वही लड़का आज उसकी मौतके लिए मनौती कर रहा था! जिसे उसने पन्द्रह वर्ष खिलाया, वह उसे एक दिन भी न खिला सका!

सूरदासने दबे पाँव उठकर अपनी लाठी उठाई और चुपचाप दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आया। नया शहर था, नई गलियाँ थीं। पग-पगपर ठोकरें खाता और गिरता था, मगर चला जाता था। कहाँ? किसके पास? यह वह आप भी न जानता था। वह चाहता था, किसी तरह दीपकके घरसे दूर निकल जाय। थोड़ी देरके बाद बड़े ज़ोरसे बिजली कड़की और इसके साथ ही वर्षा होने लगी। मगर सूरदास अब भी गिरता-पड़ता, ठोकरें खाता, भागा चला जा रहा था। सारी रात वर्षा होती रही, सारी रात सूरदास इधर-उधर भागता, दौड़ता, ठोकरें खाता रहा।

दूसरे दिन पुलीसको सड़कपर एक अन्धे फकीरकी लाश मिली!

प्रतापके पत्र

१

रामनिवास, जालन्धर
१ जुलाई १९१५

मेरे प्यारे राधाकृष्ण !

नमस्ते। आख़िर ब्याह हो गया, और बड़ी धूम-धामसे। हमारे गाँवके बुड्ढे बुड्ढे आदमियोंका कहना है कि यहाँ ऐसा ब्याह हमने होते नहीं देखा। पिताजीने दिल खोल कर खर्च किया। इतना दिल खोलकर मानो वह इस अवसर पर अपना सारा धन पानीके समान बहा देंगे, अपना सब कुछ ख़र्च कर देंगे। मैंने एक आध बार दबी ज़बानसे कहा कि आप ज़्यादा ख़र्च कर रहे हैं। इसपर मुस्कराकर बोले—तुम्हारा ब्याह है, तुम्हें बोलनेका अख़्तियार नहीं, चुप-चाप देखते चलो। इस समय मैं किसीकी न सुनूँगा। फिर मुझे मुँह खोलनेका साहस नहीं हुआ। वे ख़र्च करते थे, मैं चुप-चाप देखता था। इसके बाद बारात पेशावर पहुँची। लड़कीवालोंने हमारे ठहरनेका और ख़ातिर-तवाजोका ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था कि तुमसे क्याँ कहूँ ? किसीको भी शिकायतका मौक़ा नहीं मिला। अगर तुम आते, तो देखते कि शादीका प्रबन्ध कैसा किया जा सकता है। क्या मजाल

कि किसीके मुँहसे कुछ निकले, और वह चीज़ उसी समय हाज़िर न कर दी जाए।

मगर मुझे केवल एक ही ख़याल था। सोचता था, देखूँ, श्रीमतीजी कैसी हैं। दहेज़ मिले या न मिले, पर स्त्री अच्छी मिल जाए। कहीं कुरूपा न हो, काली न हो। हे भगवान्! बचा लेना, नहीं तो जीवन ही नष्ट हो जाएगा। भाँवरें पड़नेका समय आया, तो हृदय धक धक कर रहा था। परन्तु मेरे अंदेशे निर्मूल सिद्ध हुए। मैंने उसका हाथ देखा, तो शान्ति और संतोषकी साँस ली—वह सुन्दरी थी। कमसे कम काली न थी। स्त्रीका हाथ देखकर उसकी शक्ल-सूरतका अन्दाज़ा किया जा सकता है। भाग्यवान् घर अपनी ड्योढ़ीहीसे पहचाना जाता है। तुम हँसोगे, हँस लो। मगर मैं दावेसे कह सकता हूँ, कि अपने ब्याहमें तुम भी यही करोगे। एक ही महीना बाकी है, फिर पूछूँगा। मगर फिर भी मुझे बड़ी चिन्ता थी। यह चिन्ता उस समय तक दूर न हुई, जब तक मैंने घर पहुँच कर देवीजीके साक्षात् दर्शन न कर लिए। गाँव-भरकी स्त्रियाँ कहती हैं, बहू क्या है, चाँद है, मैंने देखा, तो मुग्ध हो गया।

बीस दिन हुए, हम दोनों यहाँ आगए हैं। बड़े आनन्दसे कटती है। अब मालूम हुआ है, जीवन किसे कहते है। लज्जाने मुझपर जादू कर दिया है। यही जी चाहता है, उसे आँखोंसे ओझल न होने दूँ, हर समय देखता रहूँ। बड़ी सरल-स्वभाव है; जब देखो, मुस्कराती रहती है। कभी उदास नहीं होती। मुझे जी-जानसे चाहती है। कचहरीसे लौटता हूँ, तो द्वारपर खड़ी पाता हूँ। ज़रा भी देर हो जाए, तो घबरा जाती है। उसकी आँखोंसे प्यार झलक

छलक पड़ता है, गोया आँखें क्या हैं अमृतके भरे हुए कटोरे हैं। ऐसा नारी-रत्न पाकर मैं फूला नहीं समाता। कोई सौन्दर्य्य चाहता है, कोई प्यार। मुझे स्वर्गकी यह दोनों चीज़ें मिल गई।

एक मज़ेदार घटना सुनो। कल संध्या-समय कुछ मित्र बैठे थे, और इधर-उधरकी बातें हो रही थीं। इतनेमें एक साहब बोले—आज इँग्लिस्तानकी एक बड़ी बढ़िया नाटक कम्पनी आई है, तमाशा देखना चाहिए। सबने हाँमें हाँ मिलाई। मगर मेरा जी न चाहता था, मैंने इनकार कर दिया। बस जनाब, उन शोहदोंने ऐसे ऐसे ताने मारे कि तुमसे क्या कहूँ। विवश हो गया, पर सोचता था, लज्जा अकेली है, कैसे जाऊँ? घबरा गया। मुझे किंकर्त्तव्यविमूढ़ देखकर एक महाशय बोले, क्यों, स्त्रीसे डरते हो क्या? अरे भाई! कोई बहाना बना दो। मैं बड़ा चकराया, झूठ कैसे बोल दूँ! दूसरे मित्रने कहा, कचहरीमें जजके सामने, और घरमें स्त्रीके सामने जो सच बोले, उससे ज्यादा बेवकूफ़ कोई नहीं। इस पर सब हँसने लगे। लाचार झूठ बोलना पड़ा। कह दिया, आज आर्य-समाजकी मीटिङ्ग है, वहाँ देर हो जायगी। एक दो बजेसे पहले न लौट सकूँगा, तुम सो रहना। उस ग़रीबको क्या पता था कि यहाँ कोई दूसरी ही मीटिंग है। उदास होकर बोली, मैं जागूँगी।

हम थियेटरमें पहुँचे। नाटक शुरू हुआ। सब मित्र हँसते थे, मुस्कराते थे, ऐक्टरोंके अभिनयपर टीका-टिप्पणी करते थे। मगर मेरा मन बैठा जाता था। नाटककी ओर ध्यान ही न था। आख़िर पहले ऐक्टका अंतिम दृश्य आया। यह दृश्य बड़ा हृदय-बेधक था। एक बे-परवा शराबी शराबख़ानेमें बैठा अपना धन, अपना स्वास्थ्य, अपना

मनुष्यत्व अपने हाथोंसे नष्ट कर रहा था, और घरमें उसकी नवयुवती प्रेममयी स्त्री उसकी तसवीरसे बातें कर रही थी, और समझती थी कि मेरा पति कारबारकी नई नीतिके सम्बन्धमें अपने मालिकसे बातचीत कर रहा है। मैं चौंक पड़ा। मेरी पीठपर किसीने चाबुक मार दिया। यह काल्पनिक नाटकका काल्पनिक दृश्य न था। मैंने नाटकके दर्पणमें अपना काला मुँह देखा और तलमलाकर खड़ा हो गया। मित्र-मंडली रोकती रह गई, मगर मैंने उनकी एक न सुनी, और चला आया। घर पहुँचकर देखा, तो ग़रीब लज्जा लालटेन सामने रक्खे बैठी है, और ऊँघ रही है। मैं कट गया। मुझे अपने आपसे घृणा हो गई। मुझे उसके निकट जाते, उसे छूते, उसे हाथ लगाते संकोच हो रहा था। मैंने मुँहसे कुछ न कहा, मगर दिलमें प्रतिज्ञा कर ली है कि अब लज्जासे कभी झूठ न बोलूँगा।

तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारे ब्याहमें ज़रूर आऊँगा।

तुम्हारा मित्र
प्रताप

२

रामनिवास, जालन्धर
१४ सितम्बर १९१६

प्यारे राधाकृष्णाजी!

नमस्ते। पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य्य हुआ। आख़िर इसका क्या मतलब कि भाभीजीका हाल दो सतरोंमें समाप्त कर दिया। सुन्दरी

है, क़द लम्बा है—यह बातें तो ब्याहहीमें मालूम हो गई थीं। मैंने जो कुछ पूछा था, उसके बारेमें एक भी शब्द नहीं लिखा, हाँ इधर-उधरकी बातोंसे दो पृष्ठ काले कर दिए। मैंने पूछा था भाभीजीका स्वभाव कैसा है? तुम्हारे साथ लड़ाई-दंगा तो नहीं करती रहतीं? सारा दिन क्या करती हैं? कुछ घरका काम-काज भी करती हैं, या केवल उपन्यास ही पढ़नेका शौक़ है? बताओ, इन बातोंका तुमने क्या उत्तर दिया? एक हम हैं कि अपनी 'मेम साहब'की एक एक बात लिख देते हैं और पूरे विस्तारसे!

रसोई बनानेके लिए नौकर रक्खा था, देवीजीने निकाल दिया। कहती हैं, हमारी स्वाधीनतामें फ़र्क पड़ता है। हर समय सहमे सहमे रहो, कहीं कोई बात न सुन ले, कहीं कुछ देख न ले। यह रोग कौन पाले? भट पड़े सोना जो छेदे कान। मैंने बहुत कहा, कि तुम्हारी तबीयत बिगड़ जायगी। मगर जनाब, कौन परवा करता है। अब सारा कामकाज अपने "श्रीहाथों"से करती हैं, और ज़रा भी नहीं थकतीं। और फिर लुत्फ़ यह कि क्या मजाल जो कोई भी काम रुक जाए। सारा घर शीशेकी तरह चमकता है। जब नौकर था, ऐसी सफ़ाई उस ज़मानेमें भी न होती थी। मेरे दफ़्तरका चपरासी है, उससे भाजी आदि मँगवा लेती हैं, और सब काम खुद करती हैं। यहाँ तक कि कमरोंकी सफ़ाई भी खुद करती हैं। मैं रोकता हूँ, और वह हँसकर टाल देती हैं। कहती हैं, अपने घरका काम करनेमें लाज कैसी, अपने पाँव तो रानियाँ भी धो लेती हैं। और फिर इन कामोंको भी ऐसे श्रद्धा-भावसे करती हैं, मानों किसी उपास्य देवताकी पूजा कर रही हों। एक दिन मैंने कहा, लज्जा, तुमको अब यह काम न करने दूँगा।

में वकील हूँ, कहार नहीं हूँ। जो कहारियाँ भी न करें, तुम वह कर रही हो। इसपर जोशमें आगई, और एक पूरा व्याख्यान दे डाला! भाई, मुझपर तो रोब पड़ गया। मैं समझता था, सीधी-सादी लड़की है। पर यह तो पूरी फ़िलासफ़र निकली। इसके विचार कैसे गम्भीर हैं! कितने पवित्र! ऐसी स्त्रियाँ मैंने अपने समाजमें नहीं देखीं। लज्जाका गौरव मेरी दृष्टिमें दिन-प्रति दिन बढ़ता जाता है। परमात्मा मुझे उसके योग्य बनाए।

तुम्हारा मित्र
प्रताप

३

रामनिवास, जालन्धर
२० दिसम्बर १९१५

भाई जान!

नमस्ते। पत्र आपका मिला, पढ़कर आनन्द आ गया। मुझे सुपनेमें भी वह आशा न थी कि भाभीजी ऐसे स्वभावकी होंगी। मिसिज़ प्रतापचन्द बहुत देर तक हँसती रहीं। फ़रमाती हैं, ऐसा जवाब दूँगी, कि छठीका दूध याद आ जाए। हमने कहा—हम ऐसा जवाब देंगे कि सातवींका दही याद आ जाए।

तुम क्रिसमिसकी छुट्टियोंमें दिल्ली बुलाते हो, मगर हम वहाँ न आ सकेंगे। हमारी सैर यहीं होगी। लज्जा कहती है, इन छुट्टियोंका रास्ता देखते देखते तो आँखें भी पक गईं, अब दिल्ली आने-जानेमें कैसे उड़ा दें? तुमको भी असुविधा होगी। मुँहसे शायद मुरौअतके

मारे न कहो, मगर दिलमें ज़रूर गालियाँ देते रहोगे। और जहाँ तक भाभीजीको मैंने तुम्हारे पत्रोंसे समझा है, वह तो साफ़ साफ़ कह देंगी कि तुम दोनों अजब आदमी हो। हमने हँसी-मज़ाक़के तौर पर ख़त लिखा था, तुम सचमुच टिकट लेकर गाड़ीमें बैठ गए। इतना भी न हुआ, कि एक आध बार नाहीं कर दें। बताओ; उस समय क्या उत्तर दूँगा? तुम तो गरदन खुजलाते हुए ऊपरकी ओर देखने लग जाओगे। मगर हमारी आँखें तो ऊपर न उठेंगीं।

न भाई, यह नहीं होगा। छुट्टियोंका पूरा सप्ताह यहीं बीतेगा। प्रातःकाल साहब बहादुर और मेमसाहबा कम्पनी बाग़की सैर करेंगे; दुपहरको ताश खेलेंगे, शामको सिनेमा हालमें जाकर प्रेम, सौन्दर्य्य और यौवनके रसीले तमाशे देखेंगे, और रातको अपने घर जाकर उन तमाशोंके ख़ास ख़ास भागोंकी नक़्ल उतारेंगे। कहो इससे रंगीन सैर और कहाँ होगी? दिल्लीमें क्या पड़ा है, लाल क़िला और कुतब साहबकी लाट! और छुट्टियोंके रंगीन दिनोंका गला घोंटनेके लिए एक नीरस भाई और एक कोतवाल भाभी! बापरे बाप! ऐसी मूर्खता कौन कर सकता है? कमसे कम एक वकील तो नहीं, चाहे उसकी वकालत अभी तक न चली हो।

हाँ, एक बातका मुझे बड़ा भय है। लज्जाकी छोटी बहन शान्ता यहाँ कन्या-महाविद्यालयमें पढ़ती है। क्रिसमिसमें उसकी भी छुट्टियाँ होंगी। कहीं वह न आ जाए। परमात्मा उसे सुबुद्धि दें, वर्ना हमारी सारी शुभ इच्छाएँ मिट्टीमें मिल जायँगी।

तुम्हारा, प्रताप

४

रामनिवास, जालन्धर
२८ दिसम्बर १९१५

माई डिअर राधाकृष्ण !

नमस्ते । जिस बातका भय था, वही हुई । शान्ता २४ तारीख-को हमारे घर आ गई । अगर पहले पता होता, तो भगवान् जानता है, तुम्हारा निमंत्रण ज़रूर स्वीकार कर लेता । और न होता, दिल्लीकी सैर तो हो जाती । और फिर तुम्हारे यहाँ हमें उस लोक-लज्जाकी ज़रूरत न थी, जिसका हमें आज-कल यहाँ ख़याल रखना पड़ता है । कुँवारी लड़की है, उसके सामने आँखें भी उठाएँ, तो शर्म आती है । एक दिन खाना खा रहे थे । मैं मना करता रहा, लज्जाने थालमें और रोटी फेंक दी । मेरा पेट भर चुका था, एक ग्रासके लिए भी स्थान न था, मैंने पूछा—मुझे तो भूख नहीं, अब यह रोटी कौन खाएगा ? ”

लज्जाने धीरेसे उत्तर दिया—आप खाएँगे ।

“ मुझे तो अब ज़रा भी भूख नहीं । जो खाना था, खा चुका । ”

“ खा कैसे चुके ? एक ज़रा-सी रोटी है । खा जाओ । ”

“ नहीं मेरी रानी ! इस वक्त तो माफ़ ही कर दो । ”

बस इसी बातपर खफ़ा हो गई कि तुमने मेरी बहनके सामने यह शब्द कहे क्यों ? वह दिलमें क्या कहती होगी, यही कि दोनों निर्लज्ज हो गए । मेरे सामने भी मज़ाक़ करनेसे न रुके । और जो उसने विद्यालयमें जाकर अपनी किसी सहेलीसे कह दिया, फिर तो ग़ज़ब ही हो जायगा । कहो, कैसा दुर्भाग्य है, अपने घरमें भी

पराए बनकर रहो। क्या सोचा था, क्या हो गया? और शान्ता इतनी भोली है, कि इन बातोंको ज़रा नहीं समझती, रातको भी बहनके साथ ही सोती है। अब हमारी यह दशा है कि खीरका थाल सामने धरा है, खानेको मन ललचा रहा है, मगर आँख उठाकर देखते भी नहीं कि कहीं कोई यह न कह दे, भूखा है, देखते ही टूट पड़ा। हाथ बढ़ाते भी हैं, तो इस शानसे जैसे श्रीमान्‌जी अनुरोधसे खा रहे हैं। गो सच यह है कि पेटमें चूहे दौड़ रहे हैं। अगर संसारके व्यवहारका भय न होता, तो थालहीको मुँह लगा देते, चमचेकी भी परवाह न करते, मगर अब...

तुम पूछोगे, दिन कैसे कटता है? दफ्तरमें बैठा लाकी पुस्तकें देखा करता हूँ। परन्तु केवल देखता हूँ, पढ़नेमें किस मरदूदका जी लगता है? लेकिन शान्ताका आना मुझे ही नहीं अखरा, लज्जाको भी बुरा मालूम हुआ है। एक दिन शान्ता छतपर बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी, लज्जाने मुझे इशारेसे कमरेमें बुलाया और मेरा हाथ प्यारसे अपने हाथमें लेकर कहा—ख़फ़ा क्यों रहते हो? क्या करूँ, छुट्टियोंके दिन बड़े मज़ेसे गुज़रते, मगर शान्ताके मारे सिर नहीं उठाया जाता। मैंने एक आध बार कहा भी है कि तुम्हारी पढ़ाईमें अड़चन पड़ती होगी, विद्यालय चली जाओ। पर वह इतनी भोली है कि ज़रा नहीं समझती; कहती है, कोई बात नहीं। एक सप्ताहके लिए बहन मिली है, उसे तो न छोडूँगी।

मैं (लज्जाकी ठुड्डीको हाथसे ऊपर उठाकर)—अगर यह न आती, तो ताश खेलते, प्यार मुहब्बतकी बातें करते और...

लज्जा मेरा संकल्प जानकर पीछे हट गई, और हँसकर बोली,

बड़े शरारती हो। दूर खड़े रहो।

मैं—क्यों लज्जा, यह क्यों नहीं कहतीं कि हम तुम्हें मिलनेको रोज़ विद्यालय आ जाया करेंगे।

लज्जा (मुस्कराकर)—यह तीर भी ख़ाली गया। वह कहती है, तुम मेरी बड़ी बहन हो, तुम्हें कष्ट न दूँगी।

बताओ, क्या किया जाय? उधर तुम अपनी गोपीको साथ लिए मथुरा और वृन्दावनकी सैर करते फिरते हो। कदाचित् तुम्हारा कहा मान लेते, तो इस संकटमें काहेको फँसते?

परन्तु इतना ही नहीं। मेरे दिलपर एक बोझ-सा पड़ा रहता है। तुम मेरे परम मित्र हो, तुमसे क्या परदा है? मुझे लज्जापर कुछ संदेह हो गया है। बहुत यत्न करता हूँ, मनको समझाता हूँ, मगर मन नहीं मानता। कल शामको घर आया, तो लज्जा बैठी कुछ लिख रही थी, और ऐसी तन्मय होकर, कि उसे मेरे आनेकी भी ख़बर न हुई। शान्ता ऊपर थी। मेरे दिलमें ख़याल आया कि आगे बढ़कर लज्जाकी आँखोंपर पीछेसे हाथ रख दूँ। चौंक उठेगी। मैं कहूँगा, तुम्हें मालूम भी न हुआ। यह सोच कर मैंने पाँवसे जूता निकाल दिया, और धीरे धीरे आगे बढ़ा। एकाएक वह चौंक पड़ी। उसने मुझे देखा, और कागज़ छिपा लिया। मैं कहता था, दिखाओ, क्या लिखती थीं? वह कहती थी क्यों दिखाऊँ? न दिखाऊँगी। मैंने प्यारसे कहा, क्रोधसे कहा, धमकी दी। मगर उसपर इनमेंसे किसी बातका भी असर न हुआ। राम जाने क्या लिख रही थी? कोई ख़ास बात ही होगी, वर्ना मुझसे छिपानेकी ज़रूरत ही क्या थी? मैं हारकर चुप हो रहा, मगर सन्देहकी आग दिलमें धधक

रही थी। सारी रात नींद नहीं आई।

अब ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई कीमती चीज़ खो गई हो, या जैसे किसी अज्ञात भयसे दिल काँप रहा हो। कई बार ख़याल आता है कि बात कुछ भी नहीं; अपने भाई या पिताको पत्र लिख रही होगी। मैं भी कैसा छोटे दिलका आदमी हूँ, ज़रा-सी चञ्चलतापर ऐसी सुशीला, प्रेममयी, पतिव्रतापर ऐसा सन्देह! निश्चय ही मैं पागल हो गया हूँ। पर क्या करूँ, यह सन्देह साँपके विषकी तरह पल पल बढ़ता जाता है। संसारकी हर एक वस्तु बदली हुई दिखाई देती है। परमात्मा करे, यह वहम ही हो। परन्तु जब तक काग़ज़ देख न लूँगा, चैन न आएगा।

तुम्हारा

चिन्ता-ग्रस्त प्रताप

९

रामनिवास जालन्धर

३ जनवरी १९१६

भाई जान!

तुम्हारा पत्र मिला, मगर अब मुझे समझाना बेकार है। जो होना था, हो चुका। तुम्हारा ख़याल है, मेरा दिमाग़ चल गया है। तुम समझते हो, लज्जा सती-साध्वी है। मेरी भी ऐसी धारणा थी। मगर काश ऐसा होता, तो इस समय मैं इतना दुखी, अधीर, अशान्त न होता। तुम्हें यह सुनकर शोक होगा कि लज्जा इस दुनियासे चल बसी, परन्तु मुझे इसका ज़रा भी शोक नहीं। हाँ, अगर न मरती, तो ज़रूर शोक होता।

वह पत्र मैंने पढ़ लिया। सन्ध्याका समय था, लज्जा शान्ताको छोड़नेके लिए विद्यालय गई हुई थी। मैंने मैदान साफ़ पाकर मेज़की दराज़ खोल ली। मुझे आशा न थी कि ख़त वहाँ होगा। मैं समझता था, वह ऐसी अदूरदर्शी, इतनी मूर्खा नहीं। मगर काग़ज़ वहीं था, उसी तरह, न लपेटा हुआ, न तह किया हुआ। मैंने उसे पढ़ा, और मेरा सिर चकराने लगा। यह साधारण काग़ज़ न था, लज्जाके पापोंका प्रमाण था। यह चिट्ठी न थी, मेरे प्रेमापमानकी घृणा-पूर्ण कहानी थी। मैंने सिर पीट लिया। किसे ख़याल था कि लज्जा जैसी नेक, लजीली, प्यार करनेवाली स्त्री ऐसी भ्रष्टाचारिणी होगी? किसी दूसरेकी ज़बानसे मैं यही बात सुनकर उसपर कभी विश्वास न करता, मैं उसका मुँह नोच लेता, मैं उसकी गरदन मरोड़ देता। मगर अब....यह सन्देह न था, लज्जाके अपने हाथकी लिखी हुई चिट्ठी मेरे सामने थी, और मैं उसे अपनी आँखोंसे पढ़ रहा था। यह प्रेम-पत्र किसी मनमोहनके नाम था, "प्यारे मनमोहन, ब्याह हो गया; पर मैं अब भी तुम्हारी हूँ। मेरा पति मुझे बहुत चाहता है, मेरी हरएक इच्छाको पूरा करना अपना धर्म्म समझता है। मगर तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मुझे उसकी शक्लसे भी घृणा है। उसे देखकर मेरी देहमें आग-सी लग जाती है। अगर अपने बसकी बात होती, तो एक दिनमें भाग खड़ी होती, और तुम्हारे पास पहुँच जाती। पर अपनी और तुम्हारी बदनामीका भय है...।"

राधाकृष्ण, यह अधूरा पत्र पढ़कर मुझपर बिजली-सी गिर पड़ी। मैं वहीं कुरसीपर बैठ गया। नहीं, बैठा नहीं, गिर पड़ा, और फूट फूटकर रोया। इस तरह मैं अपने जीवनमें

आज तक नहीं रोया हूँगा। कितनी लज्जा, कैसे शोककी बात है, कि जिस स्त्रीपर मैं अपनी जान निछावर करता था, जिसका प्रेम मेरे दिलका प्रकाश था, जिसकी मुसकान देखकर मेरे शरीरके रोम रोममें आनन्दकी लहर दौड़ जाती थी, वही स्त्री किसी दूसरेको चाहती थी। और मैं कितना मूर्ख था, कि मुझे इसका ज़रा भी पता न था। वह द्वारपर खड़ी होकर मेरी प्रतीक्षा करती थी, वह मुझे देखकर खुशीसे झूमने लग जाती थी, उसकी आँखें चमकने लगती थीं, मगर प्यारकी ये धोखेबाज़ियाँ केवल इसलिए थीं कि मैं उल्लू बना रहूँ। परमात्मा जाने, इसी छत-तले बैठकर उसने अपने अपवित्र हाथोंसे इसी प्रकार और कितने पापसे परिपूर्ण पत्र लिखे होंगे।

थोड़ी देर बाद वह आ गई। उसके मुँहपर, इस समय भी वही सादगी थी, आँखोंमें वही प्रेम! परन्तु अब मैं पागल नहीं हो गया। अब मैंने उसका दिल देख लिया था। ऊपर जलकी लहरें क्रीड़ा करती थीं, नीचे भयानक घड़ियाल बैठा था। जब तक घड़ियाल न देखा था, तब तक धोखा खाता रहा, पर अब मैंने वह घड़ियाल देख लिया था। लज्जाने मेरे बदले हुए तेवर देखे, और डर गई। उसने मुझे मनाना चाहा। उसने मेरे क्रोधका कारण पूछा, मगर मैंने उसे झिड़ककर परे हटा दिया। अब वह रो रही थी। पता नहीं क्यों, उसकी आँखोंमें आँसू देखकर मेरा दिल घबरा गया, मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं उसके साथ अन्याय कर रहा हूँ। मैं आगे बढ़ा कि उसे गलेसे लगा कर चुप करा दूँ। सहसा उसका पत्र याद आ गया। मैंने अपने आपको रोक लिया। उसका यह रोना भी उसके प्रेमके समान धोखा था। मैं पागलोंकी तरह

उठ कर बाहर चला गया। वह रोकती रह गई, मगर मैंने उसे धक्का देकर गिरा दिया, और बाहर निकल गया। वह बड़े ज़ोरसे ज़मीनपर गिरी, मगर मैंने ज़रा भी परवा न की।

रातको ग्यारह बजे मैं घर लौटा। लज्जा रसोई घरमें बैंठी मेरी राह देख रही थी। पर मुझे भूख न थी, साफ़ साफ़ कह दिया, मैं कुछ न खाऊँगा। कितनी धोखेबाज़ थी, इस समय भी इस तरह फूट फूट कर रोई, मानो उसका दिल फटा जा रहा है। मगर मैं उसके छलको खूब समझता था। दूसरे दिन सोकर उठा, तो वह चारपाई-पर मरी पड़ी थी। पता नहीं ज़हर खा लिया, या राज़ खुल जानेके भयसे दिलकी धड़कन बन्द हो गई। मैंने परमात्माको धन्यवाद दिया कि उस खूबसूरत बलासे पीछा छूटा। ब्याहपर जितना खुश हुआ था, उसकी मौतपर उससे भी ज़्यादा ख़ुश हुआ।

तुम्हारा
प्रताप

९

रामनिवास, जालन्धर
५ जनवरी १६१६

प्यारे भाई !

तुम्हारा ख़याल ठीक निकला। मैं सन्देह ही सन्देहमें बरबाद हो गया। मैंने अपने हाथोंसे अपनी सोनेकी लंका जलाकर भस्म कर ली। वह सचमुच सती-साध्वी थी। उसके मनमें पापकी छाया भी न थी। मगर मेरी आँखोंपर पत्थर पड़ गए थे। कदाचित् उस समय ज़रा

भी सोच-समझसे काम लेता, तो आज यों रोना न पड़ता। परन्तु अब क्या हो सकता है? जो होना था, हो गया। पहले छिपाया था, पर अब न छिपाऊँगा। न छिपानेसे कुछ लाभ है। लज्जाने ज़हर नहीं खाया, न उसे किसी साँपने काटा था। उसका हत्यारा मैं ही हूँ, उसे स्वयं मैंने मारा है। मेरे ही पापी हाथोंकी निर्दयी अँगुलियोंने उसका गला घोंट दिया।

रातका समय था, वह दिन-भर चिन्ता और मनस्तापसे थक कर सो गई थी। उसके गुलाबी गालोंपर उसके आँसुओंके चिह्न अभी तक बाकी थे। उसका एक हाथ सिरके नीचे था, दूसरा सीनेपर था। चेहरेपर हार्दिक वेदनाकी गहरी छाया थी। इसपर भी उसकी मोहनी छबिकी शोभासे सारा कमरा जगमगा रहा था। ऊपर बादल थे, नीचे चाँद चमक रहा था। मगर जिसकी आँखें दुखती हों, उसको रोशनी भी चुभती है। मेरी भी यही दशा थी। उसका सौन्दर्य्य उस समय मुझे ज़हर मालूम हुआ। मेरा ख़ून उबल रहा था। मैं धीरेसे उसके पलँगपर बैठ गया। उसकी आँख खुल गई। उसने मुझे प्यारकी अध-खुली आँखोंसे देखा, और अपने साथ लिटानेके लिए हाथ बढ़ा दिए। अब मैं क्रोधको वशमें न रख सका। मैंने उसका गला पकड़ लिया, और उसे अपनी देहकी पूरी शक्तिसे दबाया। उसकी आँखें बाहर निकल आईं। परन्तु उनमें भय न था, आश्चर्य्य था। वह समझ न सकती थी कि ये क्या कर रहे हैं, और मेरा अपराध क्या है? वह गला छुड़ानेके लिए चेष्टा करती थी और मैं पागलोंके समान उसे और भी ज़ोरसे दबाता जाता था। यहाँ तक कि उसकी चेष्टा समाप्त हो गई; और इसके साथ ही उसकी जीवन-लीलाका

भी अन्त हो गया। अब पलँगपर वह न थी, उसकी लाश थी। उस समय मैं खुश था। मगर वास्तवमें यह मेरी जीत न थी, मेरे जीवनकी सबसे बड़ी हार थी।

इसका ज्ञान मुझे आज ही दोपहरको हुआ। शान्ताकी कुछ पुस्तकें मेरे यहाँ पड़ी थीं, वह लेने आई। बहनका घर था, मगर बहन न थी, शान्ता फूट फूट कर रोने लगी। उसे रोते देखकर मेरी आँखें भी सजल हो गईं। रूमाल निकालकर मुँह पोंछने लगा, तो जेबसे एक काग़ज़ गिर पड़ा। यह वही काग़ज़ था जिसने लज्जाका राज़ खोल दिया था। जिसे देखकर मैं पागल हो गया था। जो उसके पापोंका जीता-जागता प्रमाण था। शान्ताने उसे उठा लिया, और उचटती हुई दृष्टिसे देखकर ठण्डी आह भरी।

मुझे आश्चर्य हुआ—तो क्या यह भी जानती है? मेरे हृदयमें उथल-पुथल होने लगी। मैंने काँपते हुए कहा, "शान्ता!"

शान्ताने अपनी आँसुओंसे भरी हुई आँख ऊपर उठाई, और बेपरवाईसे मेरी ओर देखा। उनमें बहनकी मौतके दुःखके सिवाय और कुछ भी न था।

मैं—क्या तूने यह काग़ज़ देखा है?

शान्ता—हाँ, देखा है।

और वह अब भी उसी तरह शान्त थी। मेरा दिल बाज़के पंजेमें फँसे हुए कबूतरकी तरह तड़प रहा था।

मैं—यह तुम्हारी बहनका पत्र है।

शान्ता—नहीं, यह उसकी पहली कहानीका पहला भाग है।

मैंने शान्ताके यह शब्द सुने, मगर इनका अर्थ न समझ सका।

पर इतना जान गया, कि मुझसे कोई भयानक भूल हो गई है। इस समय मेरा दिल बड़े ज़ोर ज़ोरसे धड़क रहा था, और उसकी आवाज़ मेरे कानों तक आ रही थी।

मैंने घायल पंछीके समान तड़प कर पूछा, "शान्ता, तूने क्या कहा?"

शान्ताने मेरी ओर देखा और अपनी बहनकी यादमें ठण्डी साँस भर कर कहा, "जीजाजी, आपसे क्या कहूँ, बहनजीने यह कहानी कैसे चावसे लिखनी शुरू की थी। वे इसे छः पत्रोंमें समाप्त करना चाहती थीं। यह उसका पहला पत्र है, और वह भी अधूरा। मैंने कहा, 'जीजाजीसे पूछ लो, तो कहानी और भी अच्छी बन जाए।' मगर उन्होंने जवाब दिया, दुर पगली! उनको मालूम हो गया, तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जायगा। मज़ा जब है, कि उनको पता भी न लगे, और कहानी किसी अखबारमें छपकर सामने आ जाए। हैरान हो जायँगे, दङ्ग रह जायँगे! कहेंगे, लज्जा, मुझे बिलकुल पता न था कि तू कहानियाँ भी लिख सकती है। पर किसे ख़याल था कि मौत घातमें है। कहानी समाप्त न हुई, लिखनेवाली समाप्त हो गई।"

मैं तड़प कर खड़ा हो गया—तो वह निर्दोष थी, मैं ही अन्धा हो गया था। अब मुझे उसकी एक एक बात याद आने लगी। वह भोला-भाला चेहरा, वह सादगी, वह अचरजमें डूबी हुई सुन्दरता, वह सहमी हुई आँखें, आज सब कुछ सुपना हो गया। कैसी स्त्री थी, जिसपर स्वर्गकी देवियोंको भी डाह होता, मगर मैं उसके योग्य न था। मुझे उसकी पूजा करनी चाहिए थी, मगर मैंने अपने निर्दयी हाथोंसे उसका गला घोंट दिया और परमात्माका न्याय संसारके इस

सबसे बड़े अन्यायको चुपकी आँखोंसे देखता रहा, और उसको ज़रा भी जोश न आया।

अब रात हो गई है। कमरेका लैम्प रोशन है, मगर मेरे हृदयका दीपक बुझ चुका है। किसी किसी वक्त ऐसा जान पड़ता है, कि वह रसोई-घरमें खाना बना रही है। अभी आएगी, अभी कुरसीके पीछे खड़ी हो जायगी। वही मधुर, वही सुकोमल, प्यारके अमृतमें सना हुआ वही स्वर फिर सुनाई देगा। हृदयको विश्वास ही नहीं होता, कि वह मर चुकी है। मैं इस तरह चला, जैसे कोई स्वप्नमें चल रहा हो, और रसोई-घरमें जा पहुँचा। वहाँ प्रकाश था। तो क्या प्रकृतिके न बदलनेवाले नियम बदल गए? मेरा दिल धड़कने लगा। मैं जल्दीसे आगे बढ़ा। मगर वहाँ पहाड़ी नौकर रोटी बना रहा था, जो मेरे एक वकील मित्रने भेज दिया था। मैं रोता हुआ लौट आया और मुझे विश्वास हो गया कि सचमुच मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया। अगर वह ज़िन्दा होती, तो वह अपनी रसोईमें किसी ग़ैरको पाँव भी न धरने देती। हा विधाता! यह प्रेमका नाटक कितनी जल्दी समाप्त हो गया।

कमरेमें वह मेज़ उसी जगह पड़ा है। वह कुरसी भी वहीं धरी है, जिस-पर बैठकर उसने वह पत्र-कहानी लिखनी शुरू की थी। क़लम, दावात, काग़ज़ सब कुछ वहीं हैं, केवल वह नहीं है। सन्दूकोंमें उसके हाथोंके तह किए हुए कपड़े उसी तरह पड़े हैं। खूँटीपर उसकी रेशमी सारी लटक रही है। मशीनमें आधी सिली हुई क़मीज़ उसकी राह देख रही है। मगर वह कहाँ चली गई? साहित्यके साथ खेलने लगी थी। परन्तु ग़रीबको क्या मालूम था कि यह साहित्य-क्रीड़ा नहीं मृत्यु-क्रीड़ा है। मैं वकील हूँ। कचहरीमें आकाश-पातालकी बातें करता हूँ। पर इतनी समझ न आई

कि उससे पूछ दूँ, यह पत्र किसके नाम है। सच है, विनाशके समय आँखें बन्द हो जाती हैं।

अब नौ बज गए हैं, दस बजे मेरे और मेरी लज्जाके मा-बाप आ रहे हैं। उनको अपना काला मुँह कैसे दिखाऊँगा? जब पूछेंगे, कि लज्जा कहाँ है, तो क्या उत्तर दूँगा? उसकी मृत्युका कारण क्या बताऊँगा? हे भगवान्! वह समय कभी न आए। मगर दीवारकी घड़ी टिक टिक कर रही है, और समय बीत रहा है, और थोड़ी देर बाद यह एक घण्टा भी बीत जायगा। उस समय मैं क्या करूँगा? नहीं, यह असम्भव है। यह नहीं होना चाहिए। यह नहीं हो सकता। यह नहीं होगा।

यह दीवार-घड़ी उस रात भी इसी तरह टिक टिक कर रही थी। मैंने उसका गला दबाया और यह टिक टिक करती रही। वह तड़प कर ठण्डी हो गई, और यह टिक टिक करती रही। आज रात भी यह उसी तरह टिक टिक कर रही है। और एक घण्टेके बाद भी जब कि मेरे और उसके अभागे माता-पिता हम दोनोंकी रहस्यमयी मृत्युपर खूनके आँसू बहा रहे होंगे, इसकी टिक टिक इसी तरह जारी रहेगी। नमस्ते।

तुम्हारा अभागा मित्र

प्रताप

खरा खोटा

पण्डित प्रभुदत्त बैरिस्टरी पास करके लौटे, तो प्रायः रात रात भर घरसे बाहर रहने लगे। उनके मित्र बहुत थे, हररोज़ किसी न किसीके घर दावत रहती। बूढ़े पिता कौशल्यादास कुछ बहुत पढ़े-लिखे न थे मगर उन्होंने संसारका ऊँच-नीच देखा था। पुस्तकोंके जानकार न थे, दुनियाके जानकार थे। बेटेके रङ्ग-ढङ्ग देखकर मन ही मन कुढ़ते थे, मुँहसे कुछ कहते न थे। आख़िर जब बेटा रातके बारह बजे तक बाहर रहने लगा तब उनके धीरजका प्याला छलक उठा। रोगी दिनकी पीड़ा सह लेता है, पर रातका दुख छातीका पहाड़ हो जाता है। उसे सहना आसान नहीं। पण्डित कौशल्यादासकी भी यही दशा थी। वे समझते थे, ये लच्छन अच्छे नहीं, बेटा हाथसे निकला जाता है। रातको घरसे बाहर रहना दुर्व्यसनोंकी भूमिका है। कुछ दिनोंतक सोचते रहे कि कुछ कहें या न कहें। कहीं बेटा बुरा न मान जाए, कहीं सामने न बोल बैठे। आज तक कभी सामने नहीं बोला; कहीं ऐसा न हो, मेरी डाँट-डपट सदाके लिए उसे मेरे हाथसे खो दे।

पण्डित कौशल्यादासने कुछ दिनोंतक मुँह न खोला। परन्तु जब उन्होंने देखा कि रोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है और वह व्यसन

स्वभाव बन रहा है तब तो चुप न रह सके। एक दिन बोले—"बेटा, दिनको जहाँ चाहो जाओ पर रातको बाहर न रहा करो। तुम वहाँ जलसे रचाते हो, हम यहाँ तारे गिनते हैं।"

प्रभुदत्त बाहर जानेको तैयार थे। यह सुन कर उनके पाँव रुक गए। धीरेसे कहने लगे, "मैं इन दावतोंसे खुद तंग आ गया हूँ। आप कदाचित् विश्वास न करेंगे, पर मैं सच कहता हूँ, शामको घरसे निकलनेको जी नहीं चाहता। परन्तु क्या करूँ। जब कोई मित्र बुला भेजता है तब 'न' करना मुश्किल हो जाता है।"

कौशल्यादास—तो क्या हररोज़ तुम्हारे मित्र ही बुला भेजते हैं? मुझे यह ख़याल न था।

प्रभुदत्त—मैंने विलायतमें शिक्षा पाई है, मुझे वहाँका पानी नहीं लगा। मैं उन मनुष्योंमें हूँ जो पिताकी आज्ञा न मानना पाप समझते हैं। अब जो हो गया सो हो गया। पर आजसे साँझके बाद कभी घरसे बाहर न निकलूँगा।

कौशल्यादास प्यारसे बेटेकी ओर देख कर बोले, "तो क्या आज भी किसी मित्रके यहाँ जा रहे थे?"

प्रभुदत्त—जी हाँ। डाक्टर कपिलदेवने बुलाया था।

कौशल्यादास—और कल कहाँ गए थे?

प्रभुदत्त—प्रोफ़ेसर शर्माके यहाँ।

कौशल्यादास—परन्तु तुम तो लगातार कई दिनोंसे साँझको बाहर जाते हो और आधी रातको लौटते हो। क्या तुम्हारे इतने मित्र हैं? मुझे सन्देह है। वे तुम्हारे मित्र न होंगे, परिचित होना और बात है। आजकल सच्चा मित्र कहाँ?

प्रभुदत्तके आत्म-सम्मानको चोट पहुँची, और मुँह लाल हो गया, सँभल कर बोले, मुझे इनमेंसे हर एकपर पूरा विश्वास है। चाहूँ तो सिर उतार लूँ, चूँ तक न करेंगे।

कौशल्यादास—यह सब कहनेकी बातें हैं। नई सभ्यता बातें बहुत करती है, परन्तु कर्म-क्षेत्रमें उसे दो कदम भी चलना कठिन हो जाता है।

प्रभुदत्तकी भौंहें टेढ़ी हो गई, सिर उठा कर बोले—मेरे मित्र ऐसे नहीं हैं।

कौशल्यादास—तुम बुरा तो मानोगे। एक सवालका जवाब दो। क्या तुमने कभी उनकी परीक्षा भी की है?

प्रभु०—परीक्षा उसकी की जाती है, जिसपर सन्देह हो। मुझे उनपर सन्देह ही नहीं है।

कौशल्यादास—परन्तु मैं तो जब तक परीक्षा न कर लूँ तब तक किसीपर भी विश्वास नहीं करता। तुम्हारे मित्रोंपर कैसे विश्वास कर लूँ?

प्रभुदत्तकी आँखें लाल हो गईं, परन्तु पिताकी ओर देखकर क्रोध ठण्डा हो गया। जब जरा अपने आपेमें आए तो बोले, "आप चाहें तो परीक्षा कर लें। जब सोना खरा है तो उसे कसौटीका क्या भय?"

२

रातके एक बजे कौशल्यादास और प्रभुदत्त घरसे निकले और लाला सिकन्दरलालके मकानपर पहुँचे। ये साहब उस शहरके सबसे बड़े ठेकेदार थे। इनसे और प्रभुदत्तसे पुरानी दोस्ती थी। स्कूलमें भी एक साथ पढ़े थे। बचपनके दिनोंको याद करके उनकी आँखोंमें आँसू आ जाते थे। प्रभुदत्तको यों तो अपने सब मित्रोंपर

भरोसा था, मगर लाला सिकन्दरलालसे उनका विशेष प्रेम था। उनकी प्रेमसे सनी हुई बातें सुनकर उनका मन विह्वल हो जाता था, और वे आनन्दसे झूमने लग जाते थे। कौशल्यादासने सबसे पहले उन्हींकी परीक्षाका निश्चय किया। इस समय कौशल्यादासकी काँखमें एक कपड़ा था, जिसमें कोई चीज़ लिपटी हुई थी।

सिकन्दरलालने प्रभुदत्त और कौशल्यादासको अपने मकानपर देखा, तो बहुत प्रसन्न हुए। बार बार कहते थे, यह मेरा सौभाग्य है जो आपके दर्शन हुए। प्रभुदत्त तो रोज़ आता है, मगर आपके चरणोंसे मेरा घर आज ही पवित्र हुआ है।

कौशल्यादासने बात काट कर कहा, "बेटा, क्या कहूँ, तुम्हारे भाईने ग़ज़ब ढाया है। इस समय तुम्हारे पास आया हूँ, तुम सहायता न करोगे तो बचाव कठिन है।"

सिकन्दरलालने प्रभुदत्तकी ओर देखा, और डर गए। इस समय न होठोंपर वह मुस्कुराहट थी, न नेत्रोंमें वह प्रकाश। निराशाकी मूर्ति इससे अच्छी किसी चतुर चित्रकारने भी कम बनाई होगी। क्या यह वही हँसमुख प्रभुदत्त था? जिसकी मृदु मुस्कान-भरी आँखें मित्र-मण्डलीमें रौनक भर देती थीं? तब आँखें इतनी उदास और इतनी चिन्तित न होती थीं, उस समय मुखपर शान्त मुस्कराहट खेलती थी, इस समय निराशाकी पीली छाया थी।

चकित होकर सिकन्दरलालने पूछा—परन्तु बात क्या है?

कौशल्यादासने थोड़ी देर सोचा, और फिर चारों ओर देख कर धीरेसे कहा—तुम्हारे मित्रने आज अपनी स्त्रीकी हत्या कर डाली है।

सिकन्दरलाल चौंक पड़े। पिता-पुत्रकी ओर घूर घूर कर देखा

और सोचने लगे—ये यहाँ क्यों आ गए, मैं इतनी क्या सहायता कर सकता हूँ। रातके एक बजे आए हैं, पहले पता होता तो किवाड़ ही न खोलता। नौकरसे कहलवा देता, बीमार हैं, इस समय जगानेसे मना किया है। परन्तु अब क्या करूँ? इसको भी मेरा ही घर सूझा। और पचासों मित्र हैं। किसी दूसरेके पास क्यों नहीं ले गया? मुझसे यह तो न होगा। पराई आगमें कौन गिरे? किसीके कानमें भनक भी पड़ गई तो मारा जाऊँगा। घरकी तलाशी होगी, पुलिस पकड़कर ले जायगी, और सम्भव है, फाँसीपर भी लटकाया जाऊँ। उस समय यह मित्रता मेरे किस काम आयगी? परन्तु 'न' कैसे करूँ, सैकड़ों बार सच्चे प्रेमके दावे किये हैं, प्यारकी सौगन्धें खाई हैं। यह मनमें क्या कहेगा?

इन विचारोंमें सिकन्दरलाल कई मिनट तक चुप रहे, फिर बोले, मुझे यह बात सुनकर अत्यन्त खेद हुआ। इनके लिए मैं प्राण तक दे सकता हूँ, परन्तु मेरे पड़ोसमें इन्स्पेक्टर पुलिस रहता है। क्या बताऊँ, बड़ा ही हज़रत और बातको ताड़ जानेवाला है। उसकी आँखें हृदयकी तह तक पहुँचती हैं। और मेरे जैसे दुर्बल-हृदय मनुष्यकी आँखें तो अपने आप ही सारा भेद खोल देंगी। तो भी मैं आपसे बाहर थोड़ा ही हूँ। आज्ञा कीजिए, मैं उसका पालन करूँगा।

प्रभुदत्तने जब यह सुना, तो उसकी आँखें खुल गईं। उसे यह आशा न थी। वह समझता था, सिकन्दरलाल मेरे लिए फाँसीपर चढ़नेको भी तैयार हो जायगा। परन्तु इस उत्तरसे वह भौंचक रह गया। ख़याल आया कि यह मनुष्य जब मेरे लिए कुछ करनेको

तैयार नहीं तो फिर मुँहसे इतनी बातें क्यों बनाता है ? साफ़ शब्दोंमें क्यों नहीं कह देता कि मुझसे कुछ न हो सकेगा। कोई सीधा-सादा मनुष्य होता तो साफ़ साफ़ शब्दोंमें अपने मनकी बात कह देता। उस समय उसके मनमें यही विचार आया कि क्या सभ्यता झूठका दूसरा नाम है ?

तब उसने अपनी आँखें संसारदर्शी पिताकी तरफ़ उठाईं। उनमें अनन्त भाव छिपे थे। सिकन्दरलालको उनमें कुछ भी दिखाई न दिया, मगर कौशल्यादासको ऐसा मालूम हुआ, मानो प्रभुदत्त साफ़ साफ़ कह रहे हैं, चलो यहाँ क्या रक्खा है ? मैंने बहुत धोखा खाया, मुझे यह आशा न थी।

३

इसके आध घण्टे बाद पिता-पुत्र दोनों शहरसे बाहर निकले और एक बहुत बड़ी कोठीमें पहुँचे। यहाँ मिस्टर के० सी० सेठी इञ्जीनियर रहते थे। ये भी प्रभुदत्तके मित्र थे और इनपर भी प्रभुदत्तको बहुत भरोसा था। आज कौशल्यादास इनके प्रेमकी परीक्षा लेने चले थे। परन्तु प्रभुदत्तके पाँव आगे न बढ़ते थे। उनमें किसीने रस्सा नहीं डाला, बेड़ियाँ नहीं डालीं, उन्हें कोई रोक नहीं रहा था, वे थके-माँदे नहीं थे, फिर भी उनके पाँवोंमें शक्ति न थी। परन्तु उन पाँवोंसे भी अधिक निर्बल इस समय उनका दिल था।

मिस्टर सेठी जगाये गए। पहले तो वे बहुत सटपटाए। मगर जब उनको बताया गया कि पण्डित प्रभुदत्त और उनके पिता आए हैं तो चुप हो गए। जल्दीसे मरदानेमें आकर बोले—आप बहुत रात बीते आए हैं, यह तो मिलनेका समय नहीं है। कोई ख़ास बात हो

गई है, ऐसा जान पड़ता है। कहिए, क्या आज्ञा है?

पण्डित कौशल्यादासने प्रभुदत्तकी ओर इशारा किया और उत्तर दिया—तुम्हारे भाईने आज अपनी स्त्रीको मार डाला है। हमने उसका शरीर तो आँगनमें दबा दिया है, पर जब सिर दबाने लगे तब नौकरोंकी आँखें खुल गईं। अब हम सिरका क्या करें? बाहर दबाना बहुत ख़तरनाक है। मगर कोई देख लेगा तो आफ़त आ जायगी। वैसे फेंक देना भी ठीक नहीं। अब तो तुम्हारी शरण आए हैं, अपने घरमें जगह दो, आयु-भर तुम्हारा उपकार न भूलेंगे।

मिस्टर सेठीने कुछ देरतक विचार किया और फिर बोले—माफ़ कीजिए, मैं साफ़गो आदमी हूँ, मुझे झूठ बोलना अच्छा नहीं लगता। मैं आपको धोखेमें नहीं रखना चाहता, यह काम मेरे वशका नहीं। और जो कहो, कर सकता हूँ, पर अपने आपको इस हत्याके अभियोगमें फँसानेका मुझमें बूता नहीं। मेरे भी बाल-बच्चे हैं, उनका क्या बनेगा?

प्रभुदत्तके अन्देशे पूरे हो गए। यह जलका ठण्डा स्रोत न था, लहरें मारनेवाली नदी न थी, यह जलते रेतका स्थल था। इसमें आकर्षण था, पर सचाई न थी; इसमें जादू था, पर प्रेम न था। प्रभुदत्तकी आँखोंमें आँसू आ गए। हृदयमें आग लगी थी, यह उसका धुँआ था। आज उन्होंने मित्रोंकी प्रीति खो दी थी। इसकी अपेक्षा वे हजारों रुपयोंका नुकसान हँसकर सह लेते।

४

आकाशमें तारे जगमगा रहे थे, पृथिवीपर बिजलीके लैम्प जल रहे थे, परन्तु प्रभुदत्तके हृदयमें अथाह अन्धकार छाया हुआ

था। चारों ओर देखते थे, कहीं आशा-किरण दिखाई न देती थी। सोचते थे, आज तक भोंदू ही बना रहा। कैसी मीठी मीठी बातें करते थे! ऐसा जान पड़ता था, मानो इनके बराबर मेरा और कोई शुभचिन्तक न होगा, प्राण तक निछावर कर देंगे। मुझे इनके शब्दोंपर कभी सन्देह तक नहीं हुआ। मैं समझता था, सब कुछ हो सकता है, केवल यह नहीं हो सकता है। पर आज आँखें खुल गईं। मैं भी कैसा मूर्ख था, दूधके धोखेमें छाछ पीता रहा, और कभी सन्देह तक नहीं हुआ। मैं बुद्धिहीन अन्धा था। सोनेके ख़्यालमें पीतल उठा लाया, अगर आज अँधेरा दूर हो गया। अब धोखेमें न आऊँगा।

प्रमुदत्त इन विचारोंमें मग्न थे, और उनके सामने बैठे कौशल्यादास बेटेकी अज्ञानतापर हँस रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा—क्यों बेटा! अभी क्या किसी और पर भी भरोसा है? मगर है तो चलो उसे भी देख लें।

प्रमुदत्तने शरमसे आँखें झुका लीं, और जवाब दिया—अब और शरमिंदा न करें। इनका इस तरह आँखें फेर लेना मुझे कभी न भूलेगा।

कौशल्यादास—तुम्हें इनके ऊपर बहुत भरोसा था?

प्रमुदत्त—पर अब कान हो गए।

कौशल्यादास—कैसी बढ़ बढ़कर बातें बनाते थे!

प्रमुदत्त—झूठकी जीभ बहुत चलती है।

कौशल्यादास—चलो, तुम्हारी आँखोंसे परदा तो हटा।

प्रमुदत्त—यह मेरे जीवनका पहला अनुभव है, आजसे किसीपर विश्वास न करूँगा। एक अँगरेज़ फ़िलासफ़रका वचन है, संसारमें

परमेश्वर मिल सकता है, मित्र नहीं मिल सकता। मैं इस विचारपर हँसता था, मगर आज इसपर विश्वास हो गया।

कौशल्यादास—यह भी तुम्हारी भूल है। दुनिया सच्चे मित्रोंसे खाली नहीं है, मगर यह चीज़ किसी किसी भाग्यवान्‌के ही हाथ लगती है।

प्रभुदत्त—मैं तो इसे भी भूल ही समझता हूँ। परियोंके समान सच्चे मित्रोंकी कहानियाँ सभीने सुनी हैं, परन्तु उन्हें देखा किसने है?

कौशल्यादास—मैंने देखा है।

प्रभुदत्त—मुझे तो अब विश्वास नहीं होता। आपने भी आज़माया न होगा।

कौशल्यादास—अच्छी तरह आज़मा चुका। चाहो तो तुम भी आज़मा लो। फिर तो मानोगे?

प्रभुदत्त—मगर मेरा हृदय नहीं मानता। ये भी बड़ी बड़ी बातें बनाते थे।

कौशल्यादास—तो रातको तैयार रहना, मैं तुम्हें आज अपना मित्र दिखाऊँगा। तुम देखकर चौंक उठोगे। तुम्हारी आँखें खुल जायँगीं। तुम कहोगे, क्या यह भी इस दुनियामें हो सकता है? परन्तु मेरे मित्रोंकी संख्या अधिक नहीं है। मैंने सारी आयुमें केवल एक मित्र बनाया है। और यह मित्र वह है जो प्राण दे देगा, पर दग़ा न देगा।

५

आधी रातका समय था, बाप-बेटा फिर घरसे बाहर निकले और चक्करदार गलियोंसे गुज़रते हुए एक छोटेसे मकानके सामने जा पहुँचे। कौशल्यादासने आवाज़ दी—लाला साईंदास!

लाला साईंदास सो रहे थे, आवाज़ सुनकर जाग उठे और नीचे झाँक कर बोले—कौन है इस समय ?

"मैं हूँ। दरवाज़ा खोल दो।"

लाला साईंदासने आवाज़ पहचानी और समझ गए कि कोई विपत्ति आई है, नीचे आकर बोले—क्या बात है ? साफ़ साफ़ कह दो।

यह कहकर वे दोनोंको अन्दर ले गए और एक चारपाईपर बैठ गए। कलवाला नाटक फिरसे दोहराया गया। कौशल्यादासने सारी कहानी फिरसे सुनाई। साईंदास बोले—वह सिर कहाँ है ?

कौशल्यादासने कपड़ेमें लपेटी हुई चीज़की ओर इशारा किया—वह मेरे पास है।

साईंदास—मुझे दे दो।

कौशल्यादास—क्या करोगे ?

साईंदास—ठिकाने लगा दूँगा।

कौशल्यादास—कहीं भण्डा न फूट जाय !

साईंदास—आशा तो नहीं।

कौशल्यादास—कोई भाँप न जाय। मामला बहुत बेढब है।

साईंदास—पर तुम्हें कोई कुछ न कहेगा।

कौशल्यादास—क्या करोगे ?

साईंदास—(चिढ़कर) पुलिस लेकर तुम्हारे मकानपर आ जाऊँगा।

कौशल्यादास—हूँ !

साईंदास—कैसी बहकी बहकी बातें करते हो ? तुमने शराब तो नहीं पी ली है ? क्या तुमने मुझे पहली बार देखा है ? फाँसी चढ़ जाऊँगा, पर मुँहसे एक शब्द न निकालूँगा।

कौशल्यादास—कहना आसान है, पर करके दिखाना आसान नहीं।

साईंदास—तुम मेरा अपमान कर रहे हो। मैं बहुत बातें नहीं जानता, एक बात जानता हूँ। अगर तुम्हें मुझपर विश्वास है तो सिर मुझे दे दो, अपने आप निपट लूँगा। अगर नहीं तो घरकी राह लो।

यह कहकर उन्होंने बाप-बेटेकी ओर लाल लाल आँखोंसे देखा, जैसे दोनोंको खा जायँगे। प्रभुदत्तको इस क्रोधपर प्यार आया। कहते हैं, प्यारका क्रोध हँसीसे भी अधिक मीठा होता है। यह क्रोध बनावटी क्रोध न था, घृणाका क्रोध न था, यह क्रोध प्यारका क्रोध था, जिसपर स्वयं प्यार भी निछावर होता है। प्रभुदत्तकी आँखोंमें पानी आ गया। यह पानी कलवाले पानीसे कितना भिन्न था! झूठे मोतीमें सच्चे मोतीकी ज्योति आ गई थी।

कौशल्यादास खड़े हो गए और बोले—मुझे तुम्हारी बातोंसे धोखेकी गन्ध आती है। कुछ और प्रबन्ध करूँगा।

प्यार सब कुछ सह सकता है, मगर विश्वासघातका कलङ्क नहीं सह सकता। साईंदास पहलेसे ही क्रोधमें थे, इन शब्दोंने आगपर तेल छिड़क दिया। उन्होंने छेड़े हुए नागकी तरह सिर उठाया, और फुङ्कार मारते हुए कहा—मुझे तुमसे यह आशा न थी।

प्रभुदत्त सोचते थे, कितना सज्जन पुरुष है, प्रेमके भावमें तन्मय। अपने प्राणोंकी परवा नहीं, मित्रका ध्यान है। यह मनुष्य नहीं देवता है। वे चाहते थे, अब पिता कुछ न कहें। प्रेमकी आँखोंमें क्रोध देखकर वे अपने आपको भूल गए, परन्तु कौशल्यादासने फिर भी कहा—

मैं अन्धा नहीं हूँ, तुम्हारी आँखें तुम्हारे शब्दोंका समर्थन नहीं

करतीं। तुम्हारी जिह्वासे मधु टपकता है, परन्तु हृदयमें विष भरा है। मैं अपनी और अपने बेटेकी गर्दन तुम्हारे हाथ कैसे दे दूँ?

साईदासकी आँखोंमें जल भर आया। पहले बादल गरजता था, अब वर्षा होने लगी। इन आँसुओंकी एक एक बूँद कौशल्यादासके हृदयपर आगके अङ्गारे बरसाती थी। उन्हें अपने आपको सँभालना कठिन हो गया। वे चाहते थे, आगे बढ़कर उस प्रेमकी मूर्तिको हृदयमें बिठा लें। परन्तु अभी नाटक समाप्त न हुआ था। उन्होंनें एक भावमय दृष्टिसे बेटेकी ओर देखा और उठकर बाहर निकल आए।

साईदासने चिल्लाकर कहा—जाते हो तो जाओ, परन्तु एक दिन तुम्हें इस दिनके लिए पछताना पड़ेगा।

कुछ दूर जाकर कौशल्यादासने प्रभुदत्तसे भर्राए हुए स्वरमें कहा—तुमने देखा।

"बहुत अच्छी तरह।"

"अब क्या कहते हो?"

"यह आदमी नहीं देवता है। इसका हृदय प्रेमका स्रोत है जैसे पत्थरों तले ठण्डा और मीठा जल बह रहा हो। कल मुझे व्यावहारिक जीवनका पहला अनुभव हुआ था, आज दूसरा अनुभव हुआ है। मेरा तो जी चाहता है, जाकर उसके चरणोंसे लिपट जाऊँ।"

कौशल्यादास—अभी नहीं, जरा ठहर जाओ। मेरे कानमें कोई कह रहा है कि इस परीक्षाका कुछ भाग अभी बाकी है। पहले उसे भी देख लो, फिर अपनी राय देना।

कौशल्यादासने ये बातें ऐसे ढङ्गसे कहीं कि प्रभुदत्त सन्नाटेमें आगए। उन्होंने अनुभवी बापकी ओर देखा, परन्तु यह रहस्य उनकी समझमें न आया।

६

दो दिन बीत गए, दोपहरका समय था। पण्डित प्रभुदत्त बार-रूममें बैठे एक अँगरेजीका मासिक-पत्र देख रहे थे, मगर उनके हृदयको शान्ति न थी। मित्रोंकी रुखाई उन्हें रह रहकर अखरती थी। वे अब पहले प्रभुदत्त न थे। कभी मित्र-मण्डलीकी चर्चासे उनका मुँह कमलके समान खिल जाता था, पर अब इस शब्दमें कोई प्रभाव, कोई आकर्षण न रह गया था। मित्रोंका नाम सुनते तो मुँह फेर लेते, मानो उन्हें अपने हृदयके घाव हरे हो जानेका भय था। इतनेमें किसीने उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—हलो!

प्रभुदत्त चौंक पड़े, घूमकर देखा, सिकन्दरलाल थे। वही सिकन्दरलाल जिनके बिना उन्हें चैन न पड़ता था, जिनको देखकर वह उछल पड़ते थे। परन्तु, इस समय उन्होंने उनको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा, जिसमें दुःख क्रोध और निराशा मिले हुए थे, और धीरेसे कहा—आइए, बैठिए।

शब्द साधारण थे, मगर उनका अर्थ बहुत गहरा था। सिकन्दर-लालका चेहरा उतर गया। उन्होंने बोलना चाहा, मगर शब्द होंठोंपर जम गए। समयपर हमारी जिह्वा भी काम नहीं आती। सोचने लगे, बड़ी भूल हो गई। सुलह-सफ़ाई करने आया था, पहली बात भी गँवाकर जाऊँगा। पर अब क्या हो सकता था? सिकन्दरलालने रूमालसे मुँहका पसीना पोंछा, और छतके पंखेकी ओर देखकर कहा—बड़ी गरमी है—

प्रभुदत्त—इस समय आपको घरसे बाहर न निकलना चाहिए था।

सिकन्दरलाल—तुम्हारा प्रेम खींच लाया। तुम दो दिनसे

मकानपर क्यों नहीं आए ? ग़ैरहाज़िरी लग गई।

प्रभुदत्त—अब तो हर रोज़ ही ग़ैरहाज़िरी लगेगी।

सिकन्दरलाल—रूठ गये ?

प्रभुदत्त—रूठ जाऊँगा तो आपका क्या बिगड़ जायगा ?

सिकन्दरलाल—राह देखते देखते आँखें पक गईं।

प्रभुदत्तने तीखे होकर कहा—अब इस स्वाँगकी क्या ज़रूरत है ? अब तो मैंने तुम्हारा असली रूप देख लिया।

सिकन्दरलाल इस समय तक नरमीसे बातचीत कर रहे थे। यह ताना सुनकर गरम हो गए, बोले—तुम्हारे लिए जान गँवा देता ?

प्रभुदत्तने अँगरेज़ी मासिक-पत्र मेज़पर रखकर उत्तर दिया—अभी वह मंज़िल बहुत दूर थी, तुम तो पहली ही परीक्षामें फ़ेल हो गए।

सिकन्दरलाल—यार-दोस्तोंसे बोलते समय तुम्हें जरा सावधान रहना चाहिए।

प्रभुदत्त—पर मैं आपको अपना यार-दोस्त ही नहीं समझता।

सिकन्दरलालकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। कुर्सीपर बैठे थे, खड़े हो गए और चिल्लाकर बोले—तो अब मैं तुम्हारा शत्रु हो गया।

प्रभुदत्त—मैं शत्रुको भी तुमसे अच्छा समझता हूँ।

सिकन्दरलाल—समझते हो, क्या कह रहे हो ?

प्रभुदत्त—अच्छी तरह समझता हूँ।

सिकन्दरलाल—तुम्हारी जान मेरी मुट्ठीमें है। चाहूँ तो आनकी आनमें पीस डालूँ।

प्रभुदत्तने घृणासे कहा—पीस डालो। यह पछतावा भी मनमें न रह जाए। मगर फिर कभी मित्रताका शब्द मुँहपर न लाना।

७

प्रभुदत्तकी आखिरी आशा भी जाती रही। उनका ख़याल था कि मेरे मित्र पछता रहे होंगे। मूर्ख हैं पर अविश्वासी नहीं। उन्हें जब अपनी भूलका ज्ञान होगा तब क्षमा माँगेंगे, गिड़गिड़ायँगे, और कदाचित् उनके पाँओंपर गिर पड़ेंगे। आशा जा चुकी थी, आशाकी झलक बाक़ी थी, परन्तु सिकन्दरलालकी आँखें देखकर उनकी यह झलक भी जाती रही। कदाचित् कुछ हानि पहुँचानेपर उद्यत हो जायँ, यह डर अवश्य हो गया। विश्वास पर्वतका पत्थर है जो अपने स्थानसे गिरनेपर नीचे ही नीचे गिरता जाता है।

मगर एक-दो घण्टे बीत गए, और कोई न आया, यहाँ तक कि चार बज गए और कचहरीके बन्द होनेका समय हो गया, मगर फिर भी पुलिसका कोई अधिकारी प्रभुदत्तकी खोजमें न आया। प्रभुदत्तकी आशङ्का निर्मूल सिद्ध होने लगी। अब उन्हें अपनी ढिठाई दिखाई देने लगी। सोचते थे, मैंने उनसे बहुत अन्याय किया, जो उनपर ऐसा सन्देह किया। वे डरपोक है, परन्तु विश्वासघातका दोष उनपर नहीं लगाया जा सकता। मैंने कैसी कड़वी बातें कहीं, कैसा रूखा व्यवहार किया! कोई सभ्य मनुष्य इससे अधिक क्या कहेगा? पर उन्होंने लहूका घूँट पिया और मनको मसोस कर चले गए। विचार-धारा यहाँ तक ही पहुँच पाई थी कि कमरेका दरवाज़ा खुला और पुलिसके डिप्टी सुपरिटेण्डेण्ट अन्दर आ गए। प्रभुदत्त चौंक पड़े, आशाकी आई हुई झलक फिर अथाह अन्धकारमें लोप हो गई। मगर आज इस अन्धकारने उनके हृदयकी आँखें खोल दीं। प्रभुदत्तने खड़े होकर क्लार्क साहबसे हाथ मिलाया और मुस्कुराकर कहा—आप

इधर कैसे भूल पड़े ?

क्लार्क साहबने प्रभुदत्तके चेहरेकी ओर देखा, मगर उन्हें वहाँ उस भयके कोई चिह्न दिखाई न दिए, जो हरएक अपराध अपराधीके चेहरेपर छोड़ जाता है; खिसियाये होकर बोले--आपका मिज़ाज अच्छा तो है ?

प्रभुदत्त खिलखिलाकर हँस पड़े और फिर बोले—हत्यारेके मिज़ाज कभी अच्छे नहीं हो सकते।

क्लार्क साहब हैरान हो गए। वे समझ न सकते थे कि असली बात क्या है। जिसने हत्या की हो वह तो पुलिस-कर्मचारीको देखकर काँप जाता है। उसका मुँह पीला पड़ जाता है। परन्तु यहाँ यह हँस रहा है। क्या पापको भी हँसनेकी शक्ति मिल गई? सोचकर बोले—मिस्टर प्रभुदत्त, बात क्या है?

प्रभुदत्तने हँसते हँसते सारी कहानी सुना दी। कहा—यह केवल कहानी थी। इसमें सचाई ज़रा भी नहीं। अगर विश्वास न हो तो अपनी स्त्री बुलाकर आपको दिखा दूँ। मुझे अपने मित्रोंकी परीक्षा करनी थी और वह मैं कर चुका। आपको वृथा कष्ट हुआ, मगर यह मेरा नहीं लाला सिकन्दरलालका दोष है।

क्लार्क साहब देर तक हँसते रहे, इसके बाद बोले—मगर क्या आप समझते हैं कि वह बुड्ढा साईंदास इस आगमें कूदनेको तैयार हो जायगा ?

प्रभुदत्त—मुझे विश्वास है, हो जायगा।

क्लार्क साहब—यह भी आपका भोलापन है। कोई आदमी अपना जीवन इतना सस्ता नहीं समझता।

प्रभुदत्त—मगर वह आदमी नहीं है।

क्लार्क साहब—तो तुम उसे क्या समझते हो ?

प्रभुदत्त—देवता।

क्लार्क साहब—कैसी पगलोंकी-सी बातें करते हो?

प्रभुदत्त—आज़मा देखो। तुम भी पागल हो जाओगे।

क्लार्क साहब बाहर निकले। वहाँ कुछ सिपाही खड़े थे, उन्होंने उनमें एकको बुलाकर लाला साईदासके मकानका पता बताया और कहा—जल्दी बुलाओ। मगर यह समाचार वहाँ पुलिसके सिपाहियोंसे पहले पहुँच गया था और साईदास अपने आप ही आ रहे थे। वह जानते थे कि मैं मौतके मुँहमें जा रहा हूँ, परन्तु न उनके मुँहपर उदासी थी, न आँखोंमें भय। बरन मुख-मण्डलपर अभिमानकी सुरखी थी। सोचते थे, मैं बुड्ढा हूँ, और कितने वर्ष जीऊँगा? और प्रभुदत्त अभी नवयुवक है, उसने संसारका देखा ही क्या है और फिर मित्रका पुत्र है। उसे न बचाया तो जीनेपर लानत है।

यह सोचते सोचते वे चिक उठा कर कमरेके अन्दर चले आए और क्लार्क साहबसे बोले—यह खून मैंने किया है।

प्रभुदत्तका मुख-मण्डल विजयके हर्षसे चमकने लगा, मगर क्लार्क साहबने कड़क कर कहा—तुम इकबाल करटा है?

"हाँ साहब, इकबाल करता हूँ।"

"जानता है, इसका सज़ा क्या है?"

"हाँ साहब, सब कुछ जानता हूँ, बच्चा नहीं हूँ।"

"फाँसीका सज़ा होगा।"

"मामूली बात है।"

क्लार्क साहब अब उसे एक ओर ले गए और धीरेसे बोले—हम जानटा है, टुमने खून नहीं किया। टुम अपना लाइफ़ क्यों डेटा है?

"नहीं साहब, मैंने खून किया है।"

"अभी टाईम है, इनकार कर दो। फिर बाट हमारे हाथसे निकल जायगा।"

"साहब यह कभी न होगा। जब खून मैंने किया है तब इनकार कैसे कर दूँ? मुझे भी अपने भगवान्‌को मुँह दिखाना है। आप मुझे गिरिफ्तार कर लें।

क्लार्क साहबने टोपी उतार कर लाला साईंदासको सलाम किया और प्रभुदत्तसे कहा—वेल, हमको हार हुआ। यह सचमुच आदमी नहीं एंजलके माफ़क है।

यह कह कर साहब बहादुरने सबसे हाथ मिलाए और बाहर निकल गए, परन्तु लाला साईंदास हैरान थे।

पण्डित कौशल्यादासने आगे बढ़कर उनको गलेसे लगा लिया और कहा—तुमने मेरी लाज रख ली है।

प्रभुदत्तकी आँखोंसे आँसू बह निकले।

८

आज न पण्डित कौशल्यादास ज़िन्दा हैं, न लाला साईंदास। मगर प्रभुदत्त अभी तक जीते हैं। अब उनकी प्रैक्टिस बहुत चमक गई है। उनकी गिनती उच्च कोटिके बैरिस्टरोंमें होने लगी है। अब वे शहरसे बाहर कोठीमें रहते हैं। उनके पास दो-तीन मोटरें हैं। मगर न मित्रोंको दावतें देते हैं, न उनकी दावतें स्वीकार करते हैं। रुपया-पैसा, बाल-बच्चे सब कुछ है। उन्हें किसी वस्तुकी कमी नहीं। पर हाँ, कभी कभी ठण्डी साँस भरने लगते हैं। उन्हें लाला साईंदास जैसा मित्र नहीं मिला। आयु बहुत हो गई है, मगर खोज अभी तक जारी है।

बापका हृदय

१

लाला राजारामने दफ़्तरसे आते ही क्रोध-भरे स्वरमें अपनी स्त्रीसे कहा, “शादीने आज फिर चोरी की।”

कौशल्या लड़कीके लिए कुर्ता सी रही थी, पतिकी आवाज़ सुनकर उसने सिर उठाया, और आश्चर्यसे बोली, “बड़ा पाजी लड़का है! रोज़ मार खाता है मगर इसकी आँखें नहीं खुलतीं। आज क्या चुराया है?”

“कल रात जेबमें सवा रुपया रक्खा था। आज दफ़्तर जाकर देखा, तो रुपया था, चवन्नी न थी। बस इसीके हाथ लग गई होगी। कहाँ है, ज़रा बुलाओ तो, पूछूँ।”

कौशल्याका कलेजा धड़कने लगा। उसने समझ लिया कि आज फिर लड़केकी ख़ैर नहीं। झूठी हँसी हँस कर बोली, “तुम कपड़े तो बदल लो। दफ़्तरसे थक कर आए हो, आते ही क्रोध करोगे, तो स्वास्थ्य बिगड़ जायगा।”

राजाराम—तुम्हारी बातें मैं ख़ूब समझता हूँ। तुम्हारी इच्छा है, मैं उसे कुछ न कहूँ। पर यह कभी न होगा। मैं आज उसकी हड्डियाँ तोड़े बिना न रहूँगा। बोलो, कहाँ है?

कौशल्या—कहीं खेलने गया होगा, अभी आजाता है। जल्दी

क्या है, जब आए, हड्डियाँ तोड़ लेना। कहीं भागा थोड़े जाता है।

राजाराम—बस! मैंने बात की और तुम्हें ज़हर चढ़ा।

कौशल्याकी आँखोंमें आँसू आ गए, भर्राई हुई आवाज़में बोली, मैंने तुम्हें क्या कहा है, जो आते ही गरजने लगे। तुम्हारा लड़का है, चाहे मारो, चाहे काटो। मेरी क्या मजाल है, जो बोल भी जाऊँ।

राजाराम—इतना नहीं सोचती कि लौंडा हाथसे निकला जाता है। उसे टेढ़ी आँखोंसे भी देखूँ तो रोने लगती हो। बादमें पछताओगी।

कौशल्याने जवाब न दिया, मुँह फुलाकर धरतीकी ओर देखने लगी।

राजाराम—तुम्हें तो वहम हो गया है कि मुझे अपनी सन्तानसे प्यार नहीं। तुम मा हो, इसमें सन्देह नहीं, मगर मैं भी तो बाप हूँ।

आख़िरी बात सुनकर कौशल्याको फिर बोलनेका साहस हुआ, ज़रा क्रोधसे बोली—बाप हो, मगर बापका स्नेह तो तुममें कभी न देखा। ग़रीब शादी तो तुम्हारी शक्ल देखकर सहम जाता है। मारना जानते हो, प्यार करना नहीं जानते।

राजारामको हँसी आ गई।

कौशल्या और भी तेज़ होकर बोली—क्या मजाल, जो कभी प्यारसे गोदमें ले लें, या हँसकर दो बातें ही कर लें। हाँ, मारनेको हर समय तैयार रहते हैं। अबोध बच्चा है, मनमें क्या कहता होगा!

राजाराम—यही कि यह मेरा बाप नहीं।

कौशल्या—चलो, चुप रहो। (ज़रा ठहर कर) अगर कलको मुझे कुछ हो जाए, तो इन बच्चोंका क्या हो? रो रोकर मर जायँ, जब भी तुमसे आशा नहीं कि इन्हें चुप भी करा जाओ।

राजाराम—लो अब मरनेको भी तैयार हो गईं।

कौशल्या—कैसे आदमी है, हर समय तने ही रहते हैं।

राजाराम—यह क्रोध अब उतरेगा भी या नहीं ?

कौशल्या—परमेश्वरने बच्चे दे दिए, यह बुद्धि न दी कि बालक शरारतें भी किया करते हैं। बचपनहीमें तुम्हारी-सी समझ कहाँसे ले आएँ ?

राजाराम—अगर हुक्म हो, तो आजसे मारना छोड़ दूँ।

कौशल्या—क्यों छोड़ दो ? मै यह कभी न कहूँगी। बापकी तरह मारो, मगर बापकी तरह प्यार भी तो करो।

राजाराम—और जिसे प्यार करना न आए, वह क्या करे ? मेरे ख़यालमें मार-पीट मैं कर देता हूँ, प्यार तुम कर लिया करो। अब सारे काम मै ही कैसे कर लूँ ?

कौशल्या—बस यही तो तुममें ऐब है। हर बातको हँसीमें उड़ा देते हो।

राजाराम—तो अब हँसना भी पाप हो गया ?

कौशल्या—सारा दिन राह देखते देखते गुज़रता है, और यह आते ही कोई न कोई ऐसी बात कर देते हैं कि देहमें आग लग जाय।

राजाराम—(हँसकर) चलो, आज शादीसे कुछ न कहूँगा, अब तो देवी खुश हुई ?

कौशल्या भी हँस पड़ी। प्यार-भरी दृष्टिसे पतिकी तरफ़ देखकर बोली—अपने कमरेमें चलकर कपड़े बदलो। इतनेमें मैं दूध गर्म कर लाऊँ।

शादीके सिरसे मुसीबत टल गई।

२

लाला राजाराम सीधे-साधे आदमी थे। घरका स्याह-सफ़ेद सब कौशल्याके हाथमें था। वह जो चाहती थी, करती थी। राजाराम उसमें कभी दख़ल न देते थे। उनको यह भी पता न था कि घरमें क्या है, क्या नहीं है? उनको रोटियाँ खानेसे काम था। वे कमाते थे, कौशल्या ख़र्च करती थी। इसी तरह उनके विवाहित जीवनके सात-आठ वर्ष बीत गए, कौशल्याको पतिसे कोई शिकायत न थी। सखी-सहेलियोंमें बैठती, तो उनकी प्रशंसाके पुल बाँध देती। कहती, ऐसा पति भगवान् सबको दे। उनमें कोई भी ऐब नहीं, यहाँ तक कि बीड़ी भी नहीं पीते। ज़रा ज़ोरसे बोलूँ, तो दब जाते हैं। मगर एक काँटा था जो उसके दिलमें सदा खटकता रहता था; उनको बच्चोंसे प्यार न था। कभी उनको गोदमें बैठाकर प्यार न करते थे, कभी बाज़ार न ले जाते थे। जरा जरा-सी बातमें भी धमका देते, और ज़ोर ज़ोरसे बोलने लगते। कोई मिलने-जुलनेवाला अपने बच्चेको साथ ले आता, तब भी उसकी परवा न करते। कौशल्या कहती, तुम्हारी इतनी उम्र हो गई, पर तुम्हें यह समझ अब तक न आई कि कोई घरमें आए, तो उसके बच्चेके सिरपर प्यारसे हाथ फेर देना उसका बड़ा भारी सत्कार करनेके बराबर है। वह तुम्हारे पास बैठे रहते हैं, तुम उनकी बात भी नहीं पूछते हो। सोचते होंगे, बड़ा अभिमानी है, सीधे मुँह बात ही नहीं करता। पता नहीं, दफ़्तरका काम कैसे कर लेते हो। वहाँ भी ग़ल्तियाँ करते होगे। राजाराम मुहब्बतसे सनी हुई यह बातें सुनते, तो हँस पड़ते। कौशल्याको भी हँसी आ जाती। मगर उसके मनकी चिन्ता दूर न होती थी।

इतवारका दिन था, लाला राजाराम धूपमें लेटे एक अख़बार देख रहे थे। इतनेमें कौशल्या लड़कीको लिए हुए आकर उनके पास बैठ गई, और अख़बार छीनकर बोली—लो सुनो! आज तुम्हारी बिटियाने एक नई बात सीखी है।

राजाराम—मालूम होता है, अख़बार न देखने दोगी। बड़ा अजीब लेख है।

कौशल्या—इसकी बात उससे भी अजीब है।

राजाराम—भाईको बुलाना सीख लिया होगा।

कौशल्या—वाह! मेरी बेटी क्या ऐसी मामूली बातें सीखती है? तुम्हारा दिल खुश कर देगी।

यह कहकर कौशल्याने शकुन्तलासे कहा, "क्यों बेटी! तू मरेगी, या नहीं मरेगी?"

शन्नीने माकी तरफ़ देखकर ज़ोरसे सिर हिलाया और कहा, "हाँ।"

राजारामको हँसी आ गई।

कौशल्या—तू मरना जानती है?

शन्नीने फिर उसी तरह सिर हिलाया, और तोतली जबानसे कहा, "हाँ।"

कौशल्या—कैसे मरेगी? ज़रा बाबूजीको मरकर दिखा दे।

शन्नी अपना नाटक दिखानेको झट माकी गोदसे उतर आई। इसके बाद उसने कौशल्याके सिरसे दुपट्टा उतार लिया, और ओढ़कर ज़मीनपर चुप-चाप लेट गई।

राजाराम हँस हँसकर लोटे जाते थे।

कौशल्या—(धीरेसे) ज़रा देखते चलो। (ऊँची आवाज़से)

शन्नी ! अरी ओ शन्नी !! बाप रे बाप ! कैसी लड़की है, पता नहीं कहाँ चली गई। (सहसा चौंककर) अरे, यह तो यहाँ लेटी हुई है।

शन्नीने उसी तरह लेटे लेटे मगर सिर हिला हिलाकर उत्तर दिया—छन्नी नहीं, छन्नी नहीं। मा ! छन्नी नहीं ई ई।

कौशल्या—तो क्या शन्नी मर गई ?

शन्नी—(सिर हिलाकर) हाँ छन्नी मल दई।

राजारामने हँसकर शन्नीको ज़मीनसे उठा लिया, और उसका मुँह चूमकर कहा, "क्यों बिटिया ! मरनेकी क्या ज़रूरत है ? तेरी माको बड़ा दुःख होगा, अब न मरना।"

शन्नीने दोनों हाथोंसे बापका मुँह पकड़ लिया, और उसकी आँखोंमें अपनी शक्ल देखते देखते कहा—वो ओ ओ छन्नी ! वो ओ ओ छन्नी !

कौशल्यापर ब्रह्मानन्दकी मस्ती छा गई। वह किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गई। इतनी खुशी उसे दो हज़ारके आभूषण लेकर भी न होती। वह यही चाहती थी, उसकी बड़ी ख़्वाहिश यही थी। वह अपने पतिका स्नेह माँगती थी, पर अपने लिए नहीं, अपनी सन्तानके लिए। एकाएक उसे शादीका ध्यान आया। घरमें मिठाई बँट रही हो, तो माँको सारे बच्चोंका ख़याल आता है। वह यह नहीं देख सकती कि एक बच्चा सब कुछ ले जाय, दूसरे मुँह तकते रहें। आज उसके यहाँ पिताका प्यार बँट रहा था। पता नहीं कितने दिनों बाद। बहन अपना भाग ले चुकी थी, अब भाईकी बारी थी। कौशल्याने दुपट्टा ओढ़कर शन्नीको गोदमें लिया, और जल्दीसे नीचे उतर गई। वहाँ शादी काग़ज़की नाव बना रह

था। कौशल्याने उसका मुँह धोया, सिरमें तेल डाला, कंघी की, नए कपड़े पहनाए, और धीरेसे कहा, "जा, जाकर बाबूजीको कपड़े दिखा आ।"

शादी नए कपड़े पहनकर दिलमें फूला न समाता था, मगर बापके पास जानेकी बात सुनकर उसका चेहरा उतर गया। वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा, पर उसका दिल धड़क रहा था।

वह बापके सामने जाकर खड़ा हो गया, मगर वे फिर अख़बार देख रहे थे। उनको मालूम भी न हुआ कि लड़का सामने खड़ा है। शादीने बहुत देरतक प्रतीक्षा की, मगर जब बापने उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं, तब उसने कहा, "पिताजी, नए कपड़े!"

राजारामने चौंककर सिर उठाया, और फिर अख़बार पढ़ते हुए कहा, "क्या है?"

शादी—नए कपड़े।

राजारामने बिना सिर उठाए उत्तर दिया, "तुमने नए कपड़े पहने हैं, बहुत अच्छा किया। अब जाओ जाकर खेलो। मैं अख़बार पढ़ रहा हूँ।"

शादीकी जान छूटी, परन्तु कौशल्या सन्तुष्ट न हुई। वह सीढ़ियोंके पास खड़ी यह सब कुछ देख रही थी। शादी नीचे जाने लगा, तो उसने उसे फिर पकड़ लिया और धीरेसे उसके कानमें कहा, "पीछेसे जाकर बाबूजीकी गरदनमें बाँहें डाल दे।"

शादी फिर उदास हो गया। वह सोचता था, नए कपड़े पहने हैं, चलकर अपने दोस्तोंको दिखाऊँगा। मगर माने फिर

उसी स्नेह-हीन कठोर-हृदय पिताकी ओर ढकेल दिया जो अख़बार पढ़ता था, प्यार न करता था। उसपर जैसे कोई घोर सङ्कट आ पड़ा। कमज़ोर विद्यार्थी फिर परीक्षा देने चला। उसके पाँव काँप रहे थे, मुँहका रङ्ग उड़ा जाता था। दैवयोगसे एक बार पास हो गया था, क्या अब दूसरी बार भी पास हो जायगा? नहीं, उसे इसकी ज़रा भी आशा न थी। परन्तु वह फिर गया, और बापकी पीठकी तरफ़ जाकर खड़ा हो गया। मगर उसकी गरदनमें बाँहें डालनेकी शक्ति उसमें न थी। कहीं नाराज़ न हो जायँ, एक बार हँस कर टाल चुके, पर अबके तो जान न बचेगी। उसने सीढ़ियोंकी ओर देखा, कि अगर मा न हो, तो भाग जाऊँ। लेकिन वह वहीं खड़ी थी, और शादीको इशारोंसे कह रही थी, कि देखता क्या है? लिपट जा।

अब शादीके लिए कोई और रास्ता न था। उसने जानपर खेल कर अपनी नन्हीं नन्हीं बाँहें खोलीं और बड़े ज़ोरके साथ बापके गलेसे लिपट गया। राजाराम अख़बारके पढ़नेमें लीन थे। झटका जो लगा, तो उनके हाथसे अख़बार गिर गया। चौंक कर बोले, "अरे कौन शादी!"

शादीने उनकी तरफ़ मुस्कराकर देखा। मगर यह मुस्कराहट स्वाधीनताकी सचेत, प्रकाशमय, प्रसन्नता-पूर्ण मुस्कराहट न थी, जिसके पीछे क़हक़हा छिपा रहता है। यह पराधीनताकी तेजहीन, सशंक मुस्कराहट थी, जो भयकी छाया तले चलती है, और पग पग पर काँपती है। उस समय यह मुस्कराहट कैसी फीकी, कितनी सौन्दर्य्यहीन दिखाई देती है! यही दशा शादीकी मुस्कराहटकी थी।

राजारामने शादीकी ओर क्रोधसे देखा और कड़क कर कहा,

"जा, जाकर खेल! नए कपड़े पहने हैं, तो क्या मुझे अख़बार न पढ़ने देगा?"

शादी डर कर चला आया, और चुपचाप नीचे उतर गया। कौशल्याकी आँखोंमें आँसू आ गए। विद्यार्थीके फ़ेल होनेपर अध्यापक भी उदास हो जाता है। उसने ठंडी आह भरी और अपनी कोठरीमें जाकर चारपाईपर लेट गई। इस समय उसकी आँखोंमें पानी था, हृदयमें आग। रह रह कर सोचती थी, कैसे कठोर-हृदय हैं, इन्हें बच्चोंसे जरा भी स्नेह नहीं। अगर हँसकर दो बातें कर लेते, तो इनका क्या बिगड़ जाता? इस तरह धमका दिया, जैसे कोई फ़क़ीरका लड़का भीख माँगने आया हो। इन्हें अख़बारकी चाह है, बच्चेकी चाह नहीं। इतना भी न सोचा, कि ग़रीबका दिल छोटा हो जाएगा। कौशल्याकी आँखोंके आँसू उसके गालोंपर बहने लगे।

शकुन्तलाने माके मुँहपर अपने सुकोमल हाथ फेरते हुए कहा, "मा!"

कौशल्याने बेटीका मुँह चूम लिया और रोते रोते कहा, "क्यों, शन्नी, क्या है?"

शन्नीने मनको मोह लेनेवाले ढँगसे झूम झूम कर कहा, "छुन्नी नहीं ई ई ई, छुन्नी नहीं ई ई ई।"

कौशल्याकी आँखें अपने बेटेके दुर्भाग्यपर आँसू बहा रही थीं, मगर उसके होंठ बेटीकी तोतली बातोंपर हँस रहे थे, जैसे कभी कभी वर्षामें धूप निकल आती है।

मगर राजाराम अपने अख़बारके मनोरञ्जक लेखमें तन्मय थे, और कौशल्याके नारी-हृदयमें सुख और दुःखके कैसे वेदनापूर्ण भाव पैदा हो रहे हैं, इसका उन्हें ज़रा भी पता न था।

३

इसके कुछ दिन बाद राजारामके मकानपर सङ्गीत-सभाका उत्सव हुआ। उनके दफ्तरके बाबुओंने उन्हीं दिनोंमें एक सभा (Happy Club) क़ायम की थी। इस सभाके बहुतसे सदस्य गाने-बजाने-वाले आदमी थे। हर शनिवारकी रातको किसी न किसी मेम्बरके मकानपर जमा होते, और दो घड़ी दिल बहलाते। लाला राजाराम गाना-बजाना बिलकुल न जानते थे, मगर सङ्गीतका शौक़ उन्हें बचपनसे था, Happy Club के मेम्बर बन गए। आज उनके यहाँ इसी सभाकी साप्ताहिक मीटिंग थी। अन्दर-बाहर दौड़ते फिरते थे। ताराचन्द गाता था, हंसराज हारमोनियम बजाता था और बाक़ी लोग तन्मय होकर सुनते थे। यह ताराचन्द रागी न था, न उसे राग-विद्याके नियमोंका बोध था, मगर उसका कण्ठ ऐसा सुरीला, और सुमधुर था कि सुनकर मज़ा आ जाता था। लोग कहते तेरी आवाज़में जादू है, तभी तो मन मोह लेता है। मगर इस समय राजारामका इधर ध्यान भी न था। वे मेम्बरोंके आदर-सत्कारमें लीन थे। सोचते थे, कोई यह न कहे, राजारामका प्रबन्ध ठीक न था। किसीको सिगरेट देते थे, किसीको दियासलाई, किसीको पान-सुपारी। इतनेमें एक साहब बोले, "बाबू ताराचन्दका गला बैठा जाता है। मिसरी और इलाइची दो, नहीं तो सभा शोभा-हीन हो जायगी।"

लाला राजाराम भागे भागे घरके अन्दर गए, और स्त्रीसे बोले "मिसरी और इलायची कहाँ है?"

कौशल्याने अलमारीसे एक प्लेट निकालकर पतिके हाथपर रक्खा और पूछा, "यह कौन गा रहा है?"

राजाराम—इसका नाम ताराचन्द है।

कौशल्या—खूब गाता है। आवाज़में मिठास है।

राजाराम—क्या कहने! सभी मस्त हो रहे हैं।

यह कहकर वे लौटनेहीको थे कि कौशल्याने धीरेसे कहा, ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।

राजाराम—(ठहर कर) क्या कहती हो, जो कुछ कहना हो, जल्द कहो। देर हो गई तो ताने मारेंगे कि मिसरी घरमें न होगी, बाज़ारसे लाए हो।

कौशल्या—अरे तो क्या ये लोग इतने शोहदे हैं? दूसरोंकी इज़्ज़तकी परवाह ही नहीं करते?

राजाराम—एक जगह काम करनेसे बे-तकल्लुफ़ी हो जाती है, इसमें बुरा क्या है। कहो क्या कहती हो?

कौशल्या—बच्चोंको भी ले जाओ। बार बार जाकर झाँकते हैं।

राजाराम—झाँकने दो, अन्दर जाकर क्या करेंगे? गानेकी आवाज़ बाहरसे भी सुनाई देती है और बिलकुल साफ़।

कौशल्या—एक तरफ़ बिठा देना, बैठे रहेंगे।

राजाराम—और जो कोई शरारत की, तो फिर?

दोनों बच्चे सामने खड़े अपनी क़िस्मतका फ़ैसला सुननेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कौशल्याने पूछा, "कोई शरारत तो नहीं करोगे?"

शादी—चुप-चाप बैठे रहेंगे।

राजाराम—तुम चुप-चाप बैठना जानते ही नहीं। चुप-चाप कैसे बैठोगे?

शादीका चेहरा निस्तेज हो गया। वह एक कोनेसे लग कर रोने

लगा। परन्तु शन्नी इतनी आसानीसे पिंड छोड़नेवाली न थी। उसने पिताकी टाँगोंसे लिपट कर कहा, "छन्नी नहीं ई ई ई। छन्नी नहीं ई ई ई।" और फिर माका दुपट्टा पकड़ कर उसे ज़ोर जोरसे खींचने लगी और रोने लगी, जिसका भाव यह था कि इन्हें कहो, ले चलें।

कौशल्याने कहा—नहीं शरारत करेंगे, ले जाओ।

राजारामका मन न मानता था कि ये बच्चे वहाँ आरामसे बैठेंगे, मगर स्त्रीके सामने बोलते हुए उन्हें डर लगता था। सोचते थे कि अगर इसे क्रोध आ गया तो अभी कड़कने लगेगी। इसकी आवाज़ बाहर तक सुनाई देगी, सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा। एक जलसा बाहर हो रहा है, एक अन्दर होने लगेगा। बे-बसीसे बोले, "ख़ैर आ जाओ। मगर शोर न मचाना।"

शादीके बहते हुए आँसू रुक गए। चेहरेपर हँसी आ गई। कुरतेसे आँखें साफ़ करते हुए बोला, "नहीं, शोर नहीं मचाएँगे।"

राजाराम—शन्नीको उठा लो, और चले आओ।

शादी बहनको उठा कर बाहर ले गया, और उस कमरेमें जाकर जहाँ गाना हो रहा था, एक तरफ़ बैठ गया और शन्नीको भी पास बिठा लिया। शन्नीने अपनी बड़ी बड़ी आँखोंसे इतने आदमी देखे तो डर गई और उठकर भाईकी गोदमें जा बैठी।

राजाराम मिसरी और इलायची बाँटने लगे। जब तक दूर थे, शन्नी चुप रही, मगर जब बिलकुल निकट आ गए, तब उसका धीरज जाता रहा। उसने एक हाथसे अपने सिरके लम्बे बालोंको पीछे हटाया और दूसरा हाथ फैला कर कहा, "मैं!"

जो पास बैठे थे, वे हँसने लगे। राजारामने मिसरीकी तीन-चार

डलियाँ उसके हाथपर रख दीं और कहा, "यह लो, यह "मैं" की डलियाँ हैं। चुपचाप खा लो।"

शादीके दिलमें कुछ कुछ होने लगा। उसकी दृष्टि मिसरीपर थी। वह अपनी जीभ होंठोंपर फेरता था। उसे आशा थी, अभी मुझे भी मिलती है। परन्तु राजाराम आगे बढ़ गए और उसे मिसरी न मिली। शादीकी आँखें सजल हो गईं। उसका चेहरा उतर गया। वह सोचने लगा, सबको मिली है, मुझीको क्यों नहीं मिली? अगर मा होती, तो यह अन्याय कभी न करती। जब बड़ा हूँगा और रुपया कमाऊँगा, तो पन्द्रह बीस रुपयेकी मिसरी ले आऊँगा, और पेट भर कर खाऊँगा। और सबको दूँगा, पर बाबूजीको एक डली भी न दूँगा। माँगेंगे, तो कहूँगा, तुमने भी तो मुझे न दी थी, अब शन्नीसे माँगो!

मगर वह बड़ा होनेका, रुपया कमानेका, और पेट भरकर मिसरी खानेका शुभ-अवसर अभी बहुत दूर था, और शन्नीकी मिसरी जल्दी जल्दी समाप्त हो रही थी। शादीने एक डली उठाकर मुँहमें डाल ली और मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया। अगर शन्नी न देखती तो किसीको पता भी न लगता, मगर उसने देख लिया और मचल गई। शादी उसे मनाता था, और वह गुस्सेसे उसका मुँह नोचती थी कि मेरी मिसरी तूने खाई क्यों? इसके बाद वह ज़मीनपर लेट गई और चीख़ चीख़कर रोने लगी। गानेमें एक आवाज़ भी सुनाई दे तो गाना बद-मज़ा हो जाता है। ताराचन्दने गाना बन्द कर दिया और पूछा, "यह रोती क्यों है?" कई आदमियोंने शन्नीको मनानेका यत्न किया, मगर वह चुप न हुई, और भी ज़ोर ज़ोरसे

रोने लगी। जहाँ सङ्गीत-ध्वनि गूँजती थी, वहाँ चीखें गूँजने लगीं। राजाराम किसी कामसे घरके अन्दर गए थे, बाहर आए, तो यह दृश्य देखा, लपककर शन्नीके पास पहुँचे और लाल लाल आँखें निकालकर बोले, "क्या हुआ है, जो यों चिल्ला रही है?"

एक आदमीने कहा, "नादान है। धीरेसे बोलिए, नहीं डर जायगी।"

शन्नीके देवता कूच कर गए। उसकी आँखोंके आँसू आँखोंहीमें रुक गए। डरते डरते बोली, "छादी।" अर्थात् शादीने मेरी मिसरी छीन ली है।

राजारामकी देहमें आग-सी लग गई। मगर इतने आदमियोंके सामने क्या कहते? लहूका घूँट पीकर रह गए, और धीरेसे मगर क्रोध-भरे स्वरमें बोले, "दोनों बाहर निकल जाओ।"

बच्चे हमारी भाषा समझें, या न समझें, पर वह हमारी आँखोंका भाव समझनेमें कभी भूल नहीं करते। शन्नीने समझ लिया कि इस समय चूँ भी की तो पिटूँगी। चुप-चाप भाईकी गोदमें चली गई। शादी उसे लेकर बाहर निकल गया। मगर राजारामकी क्रोधाग्नि अभी तक शान्त न हुई थी। उन्होंने आँगनमें जाकर शादीको पकड़ लिया और क्रोधसे काँपती हुई आवाज़से कहा, "क्यों पाजी! तूने इससे मिसरी क्यों छीनी? लोग क्या कहते होंगे? यही न कि इसने कभी मिसरीका मुँह नहीं देखा?"

शादीने बहनको गोदसे उतारकर ज़मीनपर खड़ा कर दिया और सिर झुकाकर नीचे देखने लगा। राजाराम बिफरे हुए शेरके समान उसके सामने खड़े थे और क्रोधसे दाँत पीसते थे।

शन्नीने मार-पीटके ये पूर्व-चिह्न देखे, तो रोती हुई भाग गई और रसोई-घरमें जाकर माँसे बोली, "मा, बाबू, छादी—मा, बाबू छादी।" अर्थात् बाबूजी शादीको मार रहे हैं।

कौशल्याने जल्दीसे बाहर निकल कर देखा, तो राजाराम लड़केको बुरी तरह मार रहे थे। ऐसी निर्दयतासे कोई धोबी कपड़ेको भी पत्थरपर न पटकता होगा। माका हृदय अधीर हो गया। उधर माको देखकर शादीकी चीखें निकल गईं। कौशल्याने शादीका हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ़ खींच लिया और कहा, "बस भी करो। क्या अब मार ही डालोगे?"

राजाराम—(काँपते हुए) मैंने कहा न था कि इन्हें अन्दर ही रहने दो। उस समय तो सुनती ही न थीं।

कौशल्या—तो किसकी हत्या कर आया है यह, जो इसकी जान मारनेपर तुल गए हो?

यह कहकर उसने अपने दुपट्टेके आँचलसे शादीका मुँह पोंछा।

राजाराम—किसकी हत्या की? सारी सभाकी हत्या की।

कौशल्या—बहुत अच्छा किया, बहुत ठीक किया। यह घर है, नाटकशाला नहीं है। ऐसी सभाएँ करनी हों, तो बाहर जाकर किया करो।

राजाराम—ज़रा और ज़ोरसे बोलो, तुम्हारी आवाज़ बाहर तो अभी जाती ही नहीं।

कौशल्या—जाती है, तो जाए। मुझे किसीका डर नहीं।

राजाराम—लोगोंको तमाशा दिखाओ, शरम तो न आती होगी।

कौशल्या—संसारकी सारी शरम क्या मेरे ही लिए रह गई है?

जब तुम्हें अजान बालकको मारते हुए शरम नहीं आती, तब मुझे उसे बचाते हुए क्यों शरम आये ?

राजाराम—देखो, मैं बे-शरम हूँ, परन्तु इतना गया-गुजरा नहीं हूँ कि तुम्हारी बकवाद सामने खड़ा सुनूँ।

कौशल्या—और मैं भी इतनी गई गुजरी नहीं हूँ कि निर्दोष बालकको सामने पिटते देखूँ, और चुप रहूँ। यह असम्भव है। अगर कोई हड्डी वड्डी टूट गई, तो सङ्कट मुझीपर टूटेगा, तुम्हारा क्या है ? तुम तो दफ़्तर चले जाओगे।

राजारामने स्त्रीकी ओर देखा, तो भयभीत हो गए। इस समय उसके चेहरेपर क्रोध था, आँखोंमें आगकी चिनगारियाँ। राजाराम समझ गए कि अगर एक भी शब्द बोले, तो वह बारूदके ढेरपर दिया सलाईका काम दे जाएगा। चुप-चाप कमरेमें चले गए। मगर वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। मुस्कुरानेकी चेष्टा करते हुए बोले, "गाना क्यों बन्द कर दिया?"

हैपी क्लबके सदस्योंने एक दूसरेकी तरफ़ देखा, मानो आँखों ही आँखोंमें एक दूसरेसे पूछा कि यहाँ तो पति-पत्नीमें संग्राम छिड़ गया, अब ठहरें या चलनेकी तैयारियाँ करें।

राजाराम सीधे-सादे आदमी थे, पर मूर्ख न थे। इन निगाहोंके अर्थ समझनेमें इन्हें जरा भी विलम्ब न हुआ। लज्जाने चेहरा कानों तक लाल कर दिया। मगर साहससे बोले, "गाओ ना! गाते क्यों नहीं ?"

ताराचन्द फिर गाने लगा, हंसराजकी अँगुलियाँ फिर बाजेके सुरोंपर दौड़ने लगीं। इधर यह राग-रङ्गका उत्सव हो रहा था

उधर घरके अंदर अबोध बालक सिसकियाँ भर भरकर रो रहा था, और कौशल्या उसे गलेसे लगाकर चुप करानेका यत्न कर रही थी।

४

दूसरे दिन शादी बुख़ारमें बे-सुध पड़ा था। राजाराम डर गए। सोचने लगे, कैसी मूर्खता की, अब कौशल्या शेर हो जायगी। कहेगी, उस समय मारते थे, अब घरमें बैठकर इलाज करो। कौशल्याके सामने उनकी आँखें न उठती थीं। न उनमें उससे बात-चीत करनेका साहस था। वे समझते थे, मैंने जीभ खोली और कौशल्याने कड़कना आरम्भ किया। कौशल्याकी कड़क उनके लिए बिजलीकी कड़कसे भी डरावनी थी। चुपचाप जाकर डाक्टरको बुला लाए और राहमें सारी घटना सुना दी।

डाक्टरने शादीको देखा, और नुसख़ा लिखने लगा। कौशल्याने घूँघटकी आड़से पतिसे कहा, "पूछो कोई हड्डी वड्डी तो नहीं टूटी?"

राजारामका कलेजा धड़कने लगा।

डाक्टरने कहा, "नहीं, डर गया है। इसीसे बुख़ार चढ़ गया है।"

राजारामकी जानमें जान आई। कौशल्याने फिर पूछा, "कब तक उतर जायगा?"

डाक्टरने कहा, "एक दो दिनमें। घबरानेकी बात नहीं। (नुसख़ा देकर) दिनमें तीन बार। ठीक हो जायगा।"

मगर तीन दिन बीत गए, और बुखार न उतरा। कौशल्या चिन्ताके मारे मरी जाती थी। सारी सारी रात जागती रहती। चौथी रात राजारामने कहा, "आज तुम सो रहो, इसके पास मैं बैठूँगा।"

कौशल्या—तुमको जागनेकी आदत नहीं, बीमार हो जाओगे।

राजाराम—नहीं होता। तुम जाकर आराम करो।

कौशल्या—तुम्हें कष्ट होगा।

राजाराम—भूल भी तो मेरी ही है।

कौशल्या—कल दफ़्तर कैसे जाओगे?

राजाराम—दफ़्तरसे छुट्टी ले लूँगा।

कौशल्या—न भई! मैं तुम्हें न जागने दूँगी। जाओ, जाकर आराम करो, नहीं कल सारा दिन तबीयत ख़राब रहेगी।

राजाराम—मालूम होता है, तुमने बीमार होनेका निश्चय कर लिया है।

यह कहकर राजाराम सोनेको चले गए। कौशल्याने शादीकी नाड़ी देखी, और ठंडी आह भरी—बुख़ार अभी तक न उतरा था। उसकी आँखोंमें पानी आ गया, और दिलमें बुरी बुरी आशंकाएँ उठने लगीं।

इतनेमें घड़ीने दस बजाए। शादीने एकाएक चिल्ला कर कहा, "मा! पानी।" कौशल्याने प्यारसे शादीको बाँहका सहारा देकर बैठा दिया और कहा, "पहले दवा पी लो, फिर पानी मिलेगा।"

शादी—न! पहले पानी दो। बड़ी प्यास लगी है। यह कहते कहते वह रोने लगा।

कौशल्या अधीर हो गई। हम बीमार बच्चे पर सख़्ती नहीं कर सकते। उसने शादीको पानी पिला दिया, और कहा, "दवा ठहर कर पिलाऊँगी।"

शादीने माकी तरफ़ प्यार-भरी दृष्टिसे देखा और कहा, "मेरे साथ लेट जाओ।"

कौशल्या लेट गई। शादीने अपना सिर उसकी छातीमें छिपा लिया, और अपना हाथ उसके मुँहपर फेरने लगा।

माकी ममता जागना चाहती थी, मगर प्रकृतिके नियम अटल हैं। थोड़ी देर बाद कौशल्याको नींद आ गई। अब उसे तन-बदनकी सुध न थी। उधर राजाराम अपनी शय्यापर तड़पते थे, परन्तु उन्हें नींद न आती थी। वही प्रकृति जिसने माँको सुला दिया था, बापको जगा रही थी। वह सोना चाहते थे, सोनेका यत्न करते थे, मगर नींद उनसे कोसों दूर थी। आखिर उठ बैठे, मगर अपनी इच्छासे नहीं, किसी दैवी-शक्तिके सङ्केतसे। उनको मालूम न था कि मैं क्या कर रहा हूँ, किधर जा रहा हूँ, पर वह चल रहे थे। वह नङ्गे पाँव, नङ्गे सिर घरसे निकले, और घरके पासवाले मन्दिरकी ओर रवाना हुए।

रातका समय था, एक बज चुका था। चारों तरफ़ सन्नाटा था। लोग अपने अपने घरोंमें आरामकी नींद सो रहे थे। माकी आँखें भी बन्द हो गई थीं। मगर बापका स्नेह बेटेकी जीवन-भिक्षा माँगनेके लिए नङ्गे-पाँव, नङ्गे-सिर मन्दिरकी ओर भागा चला जाता था। पर मन्दिरके द्वार बन्द थे, और पुजारी अपनी कोठरीमें पड़ा सो रहा था।

राजाराम मन्दिरकी सीढ़ियोंपर औंधे मुँह गिर पड़े, और बेटेकी सलामतीके लिए ऊँचे घरवाले, नीली छतवाले परमात्मासे प्रार्थना करने लगे। और उनके आँसुओंसे सङ्गमरमरकी सीढ़ियाँ तर हो गईं।

यह वही बे-परवा, वही कठोर-हृदय बाप है, जिसे बच्चोंसे ज़रा प्यार न था, जिसने उनको कभी गोदमें लेकर उनका मुँह न चूमा था। आज वही बाप रातके अँधेरेमें बेटेके लिए प्रार्थना करने आया है।

प्रातःकाल जब कौशल्याकी आँख खुली, तो साढ़े सात बज चुके थे। उसे अपने आपपर क्रोध आया कि मैं सो क्यों गई? तब उसने अपना हाथ शादीकी देहपर फेरा, और उसकी आँखें आनन्दसे चमकने लगीं—शादीका बुख़ार उतर चुका था, और वह इस समय मज़ेसे सो रहा था। कौशल्या जल्दीसे उठकर पतिको यह शुभ-समाचार सुनानेके लिए उनके कमरेकी तरफ़ दौड़ी। मगर उनकी चारपाई ख़ाली थी। कम्बल, कपड़े, जूता, सब कुछ वहीं था, केवल वे न थे। कौशल्याने कोना कोना ढूँढ़ा, परन्तु उनका कहीं पता न था। सहसा उसकी दृष्टि सीढ़ियोंकी तरफ़ गई, द्वार किसी भक्तकी आँखके समान खुला था। कौशल्या डर गई।

इतनेमें कहारीने ऊपर आकर कहा, "बहू! बाबूजी साथवाले मन्दिरकी सीढ़ियोंपर पड़े रो रहे हैं। और किसीके उठाए नहीं उठते।"

कौशल्याने यह बात अचरजके साथ सुनी, और सब कुछ समझ गई। वह दङ्ग रह गई। उसे आज मालूम हुआ कि वह जिसे ख़ुश्क नाला समझे बैठी थी, वह गम्भीर सागर था। ऊपर रेत थी, नीचे पानी लहरें मारता था। उसने रेत देखी, पानी न देखा, मगर आज यह पानी रेतके पर्दोंको फाड़कर बाहर छलक रहा था, जैसे फ़व्वारेसे जलकी धारा उछलती है। कौशल्याकी आँखें सजल हो गईं। आज उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुद्दतका अभाव एक क्षणमें पूरा हो गया हो। आज उसकी .ख़ुशीका ठिकाना न था। आज वह फूली न समाती थी। आज उसे अपना पति देवता दिखाई देता था।

थोड़ी देर बाद पति-पत्नी शादीके पास बैठे हँस हँसकर बातें कर रहे थे।

कौशल्या—बुरा न मानना। मैं आजतक यही समझती रही, कि तुम्हें बच्चोंसे ज़रा भी प्यार नहीं।

राजाराम—और आज?

कौशल्या—आज तुम्हारा असली रूप देख लिया।

राजाराम—(मुस्कराकर) यह भी हमारी चाल थी, खा गई ना धोखा!

कौशल्या—चलो हटो, अब तुम्हारी बातोंमें न आऊँगी। कहते हैं, चाल थी! कोई उस समय देखता, तो हैरान रह जाता। कैसे भागे भागे गए थे? तन-बदनकी सुध न थी। दरवाज़ा खुला छोड़ गए। कोई चोर उचक्का आ जाता, तो सब जमा-जत्था उठाकर ले जाता। क्यों?

राजाराम—मगर जो चीज़ पा ली वह घरके सारे सामानसे क़ीमती है। बल्कि मेरा ख़याल है, उसके सामने सारे संसारका सामान तुच्छ है।

कौशल्या किसी दूसरी दुनियामें पहुँच गई; बोली—यह प्यार आजतक कहाँ छुपा हुआ था?

राजारामने मुस्कराकर स्त्रीकी तरफ़ देखा, और कहा—तुम्हारे दिलमें।

मास्टर आत्माराम

१

स्वयंसेवकने कहा—वह तो हमारे मास्टर साहब हैं।

मैं चौंक पड़ा। मुझे कभी सन्देह भी न हुआ था कि वह मास्टर हो सकता है। मैं समझता था, कोई नौकर होगा। शायद किसी वकीलका चपरासी हो। इससे ज्यादा मैंने उसे कभी कुछ ख़्याल नहीं किया। कितने आश्चर्यकी बात है कि जो आदमी रातके बारह-बारह बजे तक मेरी और दूसरे उपदेशकोंकी सेवा करता रहता था, जिसे जूते साफ़ करने, बिस्तर झाड़ने, और मैले कपड़े धोनेमें भी सङ्कोच न था, वह स्कूलका मास्टर निकला। मुझे बड़ा अभिमान है कि मैं आदमीको उसका चेहरा देखकर पहचान सकता हूँ। मगर मुलतानके उस उदास, निराश, चुपचाप रहनेवाले अद्भुत आदमीके सामने मेरी यह शक्ति बिलकुल बेकार सिद्ध हुई। मगर मुझे अब भी सन्देह था कि शायद स्वयंसेवक किसी दूसरे आदमीका ज़िक्र कर रहा हो। मैंने पूछा—तुम किस आदमीके विषयमें कह रहे हो? मेरा इशारा उस आदमीकी तरफ़ है, जो रातको हमें दूध देने आया था।

स्वयंसेवक—जी हाँ, मैं भी उन्हींकी बात कह रहा हूँ।

मैं—तुम मेरे रातके व्याख्यानमें थे?

स्वयंसेवक—जी हाँ, था।

मैं—व्याख्यानके शुरू होनेपर जिस आदमीने मेज़पर लेम्प रक्खा था, मैं उसका ज़िक्र कर रहा हूँ।

स्वयंसेवक—वही मास्टर साहब हैं।

मैं—तुम ज़रूर भूल कर रहे हो। मैं ऐसा मूर्ख नहीं कि एक साधारण नौकर और स्कूल-मास्टरको भी न पहचान सकूँ। (थोड़ी देरके बाद) अच्छा, उनका नाम क्या है?

स्वयंसेवक—लाला आत्माराम, बी० ए०, बी० टी०। हमारे ही स्कूलमें सेकेण्ड मास्टर हैं।

मैं—मगर शक्ल-सूरतसे तो मालूम नहीं होता कि वह ग्रेजुएट होंगे। अगर वह मुझसे आप कहते कि मैं ग्रेजुएट हूँ, मैं तब भी न मानता। समझता, झूठ बोल रहे हैं। और मुझे तो अभी तक विश्वास नहीं आता।

स्वयंसेवक—किसीको भी विश्वास नहीं आता कि यह महात्मा ग्रेजुएट होंगे।

मैं—कपड़े बिलकुल कुलियोंके-से पहनते हैं बल्कि मेरा तो ख़्याल है, कुलियोंके कपड़े भी इनसे अच्छे होते हैं।

स्वयंसेवक—घरमें इससे भी बुरे पहनते हैं। हाँ, जब इन्स्पेक्टर आनेवाला हो, उस दिन कपड़े बदल आते हैं।

मैं—और बहुत उदास रहते हैं। मैंने उनकी आँखोंमें कभी रोशनी नहीं देखी। यों कामको हर समय तैयार रहते हैं। मेरा ख़्याल है सदा दिल ही दिलमें कुढ़ते रहते हैं।

स्वयंसेवक—मगर किसीको कुछ बताते नहीं हैं। हेडमास्टर

साहबने कई बार अनुरोध किया, लेकिन कुछ न बताया। केवल इतना ही कहा—मैंने पाप किया है, यह उसका प्रायश्चित्त है।

मैं—अजीब आदमी है।

स्वयंसेवक—आदमी शरीफ़ हैं। आपको कोई काम हो, रातके दो बजे बुला भेजिए—दौड़ते हुए चले आएँगे। एक बार भी 'नहीं' न कहेंगे। और फिर जनाब पुरुषार्थी ऐसे हैं कि सारी रात काम कराते रहिए, आँखें भी न झपकेंगी, न थकेंगे।

मुझे और भी आश्चर्य्य हुआ। स्वयंसेवकके चले जाने पर बार-बार सोचता था, इसकी तहमें ज़रूर कोई ख़ास रहस्य है, कोई छिपी हुई घटना। मगर वह क्या है? इस आदमीने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त करनेके लिए अपने आपको इस तरह लोगोंकी दृष्टिमें गिरा रहा है।

सन्ध्याका समय था, मेरा व्याख्यान शुरू होनेमें केवल एक घण्टा बाकी था। पण्डालमें लोग अभीसे जमा हो रहे थे। उनके चिल्लानेकी आवाज़ें मेरे कानों तक पहुँच रही थीं। मगर मुझे व्याख्यानकी ज़रा भी चिन्ता न थी, मैं ज़रा भी न सोचता था कि आज क्या कहूँगा? मेरे सामने इस समय एक ही सवाल था—यह मास्टर साहब कौन हैं? इनका गुप्त इतिहास क्या है? मैं इसे जाननेके लिए अधीर हो रहा था।

इतनेमें दरवाज़ा खुला और एक आदमी अन्दर आया। यह मास्टर आत्माराम थे। इससे पहली रातको भी मेरा व्याख्यान था। भीड़के अधिक होनेके कारण मेरा गला बैठ गया था। डॉक्टर भल्लाने मेरे लिए गलेकी टिकियाँ भेजी थीं, ताकि व्याख्यान देते समय आवाज़ साफ़ रहे। मास्टर आत्माराम वही टिकियाँ लेकर आए

थे। उन्होंने शीशी मेज़पर रख दी, और धीरेसे पूछा, "आप भोजन कब करेंगे? इस समय या व्याख्यानके बाद? अगर इस समय खाना चाहें तो ले आऊँ?"

मैंने इस प्रश्नका उत्तर न दिया, और उठकर उनका हाथ थाम लिया। वह कुछ घबरा गए। शायद उनको मुझसे ऐसे सुकोमल सुलूककी आशा न थी। मगर मैंने इसका ज़रा भी ख़्याल न किया और कहा, "मास्टर साहब! मुझे आपसे शिकायत है कि आपने मुझे धोखा दिया, वरना मुझसे ऐसी गुस्ताख़ी कभी न होती।"

मास्टर साहबने मेरी ओर आश्चर्यसे देखा और कहा, "आप क्या कह रहे हैं? मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

मैं उनको घसीटकर अपनी चारपाईके पास ले गया, और उन्हें अपने साथ बैठा कर बोला, "मैं अभी समझाए देता हूँ।"

मगर वह उठनेके लिए छटपटाने लगे, "मुझे छोड़ दीजिए। मैं फ़र्शपर बैठूँगा।"

मैं—(हँसकर) चुपचाप बैठे रहिए, नहीं तो मैं ज़बरदस्ती करूँगा।

मास्टर साहब—(मिन्नतें करते हुए) पण्डितजी! परमात्माके लिए मुझे छोड़ दीजिए। मैं यहाँ बैठने योग्य नहीं, आपके चरणोंमें बैठूँगा।

मैं—चरणोंमें बहुत बैठ चुके, अब सिरपर बैठना होगा।

मास्टर साहबने मेरी तरफ़ दीन दृष्टिसे देखा, और बोले, "मुझे मजबूर न करें, मैं आपके साथ कभी नहीं बैठूँगा।"

मैं—मगर क्यों? साथ बैठनेमें आख़िर हर्ज क्या है? आप सभ्य हैं, शिक्षित हैं, एक हाईस्कूलके सेकेण्ड मास्टर हैं। फिर भी........

आत्माराम—मैं इस सम्मानका अधिकारी नहीं हूँ—मैं नराधम हूँ।

मैंने उनका हाथ छोड़ दिया। वह जल्दीसे फ़र्शपर बैठ गए। अब उनका चेहरा फिर शान्त था। थोड़ा-सा हँसकर बोले, "मेरा स्थान यहीं है।"

मैंने उनके कन्धेपर प्यारसे हाथ रक्खा, और अपनी आँखें उनकी आँखोंमें डालकर कहा, "अपनी कहानी सुनाओ। मैं उसे सुने बिना यहाँसे न उठूँगा।"

मास्टर आत्मारामने एक ठण्ढी साँस भरी, और दो गर्म आँसू टपकाकर कहा, "मुझसे एक पाप हो गया है, अब प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। बस यही मेरी कहानी है।"

मैं—नहीं; मैं सारी घटना सुनना चाहता हूँ। और (एक एक शब्द पर ज़ोर देकर) मैं यह पूरी कहानी सुने बिना अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। बोलो, क्या कहते हो?

आत्माराम—(विवशतासे) इससे कुछ लाभ न होगा, उल्टा आप भी दुखी हो जायँगे।

मैं—आपका दिल भी तो हलका हो जायगा।

आत्माराम—मैंने यह घटना आज तक किसीसे भी नहीं कही।

मैं—शायद ऐसी सहानुभूति, और ऐसे आग्रहसे किसीने पूछा भी न हो।

आत्माराम—आप क्षमा नहीं कर सकते?

मैं—मैं प्रतिज्ञा कर चुका।

आत्माराम—(सिर झुकाकर) तो फिर किसी समय कह सुनाऊँगा। अब तो आपके व्याख्यानका समय है। आप सुनते हैं, कितना शोर मच रहा है? पाँच हज़ारसे कम आदमी न होंगे। मेरी दुख-भरी कहानी

सुनकर आपका दिल भर आया तो व्याख्यान ख़राब हो जायगा।

मैं—मास्टरजी! मुझे इस समय व्याख्यानकी ज़रा भी चिन्ता नहीं। आप इनकार करते हैं, मेरा शौक़ और भी बढ़ता जाता है। जब तक सुन न लूँगा, चैन न आएगा।

आत्माराम मेरे मुँहकी तरफ़ देखने लगे।

मैंने झुककर उनके कन्धोंपर दोनों हाथ रख दिए, और कहा, "अब तो आपको कहना ही पड़ेगा। देर करना फ़जूल है।"

आत्मारामने आकाशकी तरफ़ देखकर ठण्ढी साँस भरी, और इसके बाद धीरे-धीरे यों कहना शुरू किया—

२

"पण्डितजी, मैं जालन्धरका रहनेवाला हूँ। मेरे पिताजी वहाँ कपड़ेकी दूकान करते थे। वे बहुत अमीर न थे, पर ग़रीब भी न थे। उनकी गिनती शहरके सुप्रसिद्ध लोगोंमें होती थी। उनकी बात टालनेका किसीमें साहस न था। शहरके गुण्डे भी उनके सामने सिर न उठाते थे। उनकी सचाई और निर्भयताके दृष्टान्त जालन्धरमें आज भी आपको सुनाई देंगे। मगर मेरे भाग्यमें उनकी स्नेह-छाया न लिखी थी। मैं अभी दो ही वर्षका था कि उनका देहान्त हो गया। मुझे उनकी शक्ल-सूरत भी याद नहीं। भगवान् जाने, कैसे थे, कैसे नहीं थे?

मेरा पालन-पोषण मेरी विधवा माँने किया। उसकी एक सहेली शिवा होशियारपुरकी रहनेवाली थी। वह भी विधवा थी। उन दोनोंमें बहुत प्रेम था। उनका प्रेम देखकर सन्देह होता था कि वह सगी बहनें हैं, सखियाँ नहीं हैं। जब कभी मिलनेका अवसर आता, सारी सारी रात बातें करती रहतीं। रात समाप्त हो जाती,

उनकी बातें समाप्त न होतीं। वह प्यार, वह स्नेह, वह विशुद्ध भाव आज भी याद आते हैं, तो दिलसे धुआँ-सा उठने लगता है। उसकी एक लड़की थी, कमला। मुझसे तीन-चार वर्ष छोटी होगी। दोनों सखियोंने मिलकर हमारी सगाई कर दी।

उस ज़मानेमें मैं कॉलेजमें दाखिल हुआ ही था। सगाई होनेपर मुझे हार्दिक आनन्द हुआ। मैंने कमलाको केवल एकाध बार देखा था; वह भी बचपनमें। मुझे उसकी शक्ल-सूरत, रङ्ग-रूप कुछ भी याद न था। मगर इस पर भी मुझे प्रसन्नता हुई। जब एकान्तमें बैठता, कमलाकी ख़्याली मूर्त्ति आँखोंके सामने आकर खड़ी हो जाती। मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे एक हँसमुख, भोली-भाली सुन्दरी बाला लज्जासे सिर झुकाए मेरी तरफ प्रेम-पूर्ण दृष्टिसे देख रही है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वह मुझसे बातें कर रही है। धीरे-धीरे मुझे कल्पना-जगत्‌की इस कल्पित मोहनी मूर्त्तिसे प्रेम बढ़ने लगा। मैंने इस मायाको जीती-जागती सुन्दरी लड़की समझ लिया, जिसे विधाताने मेरे ही लिए पैदा किया है। मगर भाग्यने मेरे लिए कुछ और ही सोच रक्खा था। जब मैं ट्रेनिंग कॉलेजमें भर्ती हुआ, तो एक दिन पता नहीं, किस तरह मेरे दिलमें विचार हुआ कि अगर वह मेरे आदर्शपर पूरी न उतरी, तो क्या होगा? जीवन नष्ट हो जायगा, सारी आशाएँ मिट्टीमें मिल जाएँगी। यह आशङ्का न थी, मेरी तबाहीका श्रीगणेश था। काश वह घड़ी मेरे जीवनसे निकल जाती; काश मैं उस समय सो जाता, अचेत हो जाता, किसी दुर्घटनासे ज़ख्मी हो जाता, तो आज मेरा जीवन ऐसा भयानक, ऐसा निराशापूर्ण, ऐसा शोकमय न होता। उस अशुभ दिनके बाद

मेरे मनको सच्चा आनन्द कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने इस सन्देहको, इस वहमको दिलसे दूर करनेका बहुत यत्न किया, मगर यह सन्देह दूर न हुआ; कुछ ही दिनोंके बाद मैंने स्थिर कर लिया कि कमलासे ब्याह न करूँगा, किसी और लड़कीसे देख कर करूँगा। पर आज सोचता हूँ उस समय मुझे क्या हो गया था? शायद मैं पागल हो गया था। न कुछ देखा, न सुना; और निश्चय कर लिया। आदमी समझते-सोचते हुए भी कैसा अन्धा हो जाता है, यह आज समझता हूँ, उस समय ज़रा भी ख्याल न था।

गर्मीकी छुट्टियोंमें घर गया, तो एक दिन माने कहा, "क्यों बेटा! अब ब्याह कब करेगा? शिवा आई थी, कहती थी, लड़की जवान हो गई है।"

मैं खाना खा रहा था, चुपचाप खाता रहा।

माने थोड़ी देर मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा की और फिर बोली, "समय बड़ा विकट है। लड़कियोंको कुँवारी बैठा रखना आसान नहीं।"

मैं अबके भी चुप रहा।

मा—मैं भी उस दिनके लिए तड़प रही हूँ, जब तू सेहरा बाँधकर घोड़ीपर सवार होगा।

मैंने फिर भी जवाब न दिया।

मा—(मेरे थालमें भाजी डालते हुए) तो इस वैसाखमें ब्याह हो जाए?

अब चुप रहना कठिन था। मैंने धीरेसे कहा, "मैं अभी ब्याह न करूँगा।"

माने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मेरी तरफ़ देखा, और कहा, "तो क्या तू बुड्ढा होकर ब्याह करेगा? ज़रा इस लड़केकी बातें सुनो। कहता

है, अभी ब्याह न करूँगा। पण्डित गोकुलचन्दका लड़का मायाधारी तुझसे तीन महीने छोटा है, उसका ब्याह हुए दो वर्ष बीत गए। लाला कर्ताकिशनका लड़का चुन्नीलाल....”

मैं—(बात काटकर) मुझे औरोंसे क्या मतलब? मैं अभी ब्याह न करूँगा।

मा—अच्छा यह भी न सही। जानता है, तेरे बापका ब्याह कब हुआ था? १३ वर्षकी उमरमें। उस समय मैं आठ वर्षकी थी।

यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गई। उसकी आवाज़ गलेमें फँस गई। उससे और न बोला गया। वह चुपचाप दीवारकी तरफ़ देखने लगी। मेरा भी दिल भर आया, हाथका ग्रास हाथमें ही रह गया।

थोड़ी देर बाद उसने फिर ठण्डी साँस ली और कहा, “आज अगर तेरा बाप जीता होता, तो क्या तू फिर भी अबतक कुँवारा ही बैठा रहता? न बाबा! मैं अब तेरी एक न सुनूँगी। तू तो पागल है। पढ़-लिख गया तो इससे क्या? मगर है तो वही पागलका पागल। ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ा।”

मैंने हँसकर जवाब दिया—“पागल हूँ, तो पागलखाने भेजो, ब्याह क्यों करती हो। इससे तो यह मालूम होता है कि तुम भी पागल हो गई हो।”

अब माको भी हँसी आ गई; ठोड़ीपर उँगली रखकर बोली “बाबा! पता नहीं, तूने इतनी बातें कहाँसे सीख लीं। पर एक बात कहे देती हूँ, तुझे अब ब्याह करना ही पड़ेगा।”

मैंने खानेका थाल परे हटा दिया, और गम्भीरतासे कहा, “मा! मैंने एक बार कह दिया है, अभी ब्याह न करूँगा। यह मेरा अन्तिम निश्चय है।”

शायद माको अबतक यही ख्याल था कि यह इन्कार जीभका नहीं। लड़के माँ-बापके सामने ऐसा ही कहा करते हैं। मगर मेरी दृढ़ता देखकर माँका चित्त उदास हो गया, बोली, "तो क्या जवाब दूँ? लड़की जवान हो गई है।"

मैं—कहो, कहीं और ब्याह दें। हिन्दुस्तानमें मेरे सिवाय और भी बहुत लड़के हैं।

मेरी इस बातसे माके कलेजेमें तीर-सा लगा। स्नेहकी मूर्तिने क्रोधका रूप धारण कर लिया। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, जैसे चन्दनको भी रगड़ा जाय तो उससे आग निकलती है। वह कड़क कर बोली, "क्या कॉलेजमें तूने यही बे-शरमीकी बातें सीखी हैं? अगर मर्द होता तो यह बात मुँहसे न निकालता। अपनी स्त्रीका ब्याह दूसरे पुरुषसे होते देखेगा, और फिर भी सिर उठाकर चलेगा?"

माका यह रूप देखकर मेरे देवता कूच कर गए। मेरे मुँहसे एक भी शब्द न निकला। मुँहमें ज़बान थी, ज़बानमें बोलनेकी शक्ति न थी। मैं चाहता था, मा एक बार फिर उसी तरह प्यारसे अपना अधिकार जता कर कह दे, तुझे ब्याह करना होगा, तो मैं सिर झुकाकर स्वीकार कर लूं, चूँ भी न करूँ। मगर माने यह शब्द न कहे, और उठकर चारपाईपर जा लेटीं। मैं भी बाहर चला आया। अब मैं फिर वह ज़िद्दी, वही महामूर्ख, वही वहमी आत्माराम था, जिसने न कुछ देखा, न सुना, और समझ बैठा कि कमलासे ब्याह करके उसका जीवन अन्धकारमय हो जायगा। पहले पहल यह सन्देह कोमल पौधा था, जिसे उखाड़ना ज़रा भी कठिन नहीं होता, आदमी

चाहे तो पैरसे भी उखाड़ दे। मगर अब वही पौधा वृक्षका रूप धारण कर चुका था, जिसे हाथी हिलाना चाहे, तो वह भी न हिला सके। परमात्मा ही जानता है, संसारमें मेरे जैसे अभागे कितने हैं, जो अपने ही निर्मूल सन्देहके जगतमें भटक-भटककर तबाह हो जाते हैं।

कुछ दिनों बाद होशियारपुरसे पत्र आया कि जल्दी मंजूरी भेजो, तो तैयारियाँ शुरू करूँ। मुझे तो शहरमें मुँह दिखाना भी मुश्किल हो गया है। पत्र पढ़कर मैं सोचने लगा, माको दिखाऊँ या न दिखाऊँ। फिर सिरपर सवार हो जायगी, फिर वही गालियाँ मिलेंगी, और क्या पता, ज़बरदस्ती ब्याह कर दे ? मैं घबरा गया। दो दिन सोचता रहा, तीसरे दिन मार्ग मिल गया। मैंने माकी तरफ़से पत्र लिख दिया। उस पत्रका आशय यह था:—

बहन ! क्या कहूँ, कहते हुए भी शरम आती है। जी चाहता है, कहीं डूब मरूँ। तुम्हें कभी मुँह न दिखाऊँ। मगर मेरा इसमें ज़रा भी दोष नहीं। आत्मारामकी बुद्धिपर पत्थर पड़ गए हैं। कहता है, मैं ब्याह न करूँगा। क्या-क्या आशाएँ थी—सबपर पानी फिर गया। कमलाको अपनी बहू बनाकर मुझे कैसा स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता। अफ़सोस ! !

मुझे आत्मारामसे अब ज़रा भी आशा नहीं। मैं समझा-समझा कर थक गई, मगर उसपर असर नहीं होता। कैसे लिखवाऊँ कि कमलाको कहीं और ब्याह दो। पर विवश हूँ।

तुम्हारी दुखी बहन,

—रामदेवी

पण्डितजी ! यह पत्र लिखकर मैंने समझा, कि सिरसे कोई भार उतर गया, कोई भयानक रोग टल गया। मगर यह रोग न टला था, मैंने अपने जीवनकी सबसे बड़ी बाज़ी हार दी थी। मैं कितना पतित, कितना पापी, कितना हृदयहीन हूँ ! उस समय मुझे ख़्याल भी न आया कि मैं क्या कर रहा हूँ। माको मालूम भी न हुआ, और यह पत्र होशियारपुर जा पहुँचा। मेरा पत्र पाकर शिवाको कितना दुख हुआ होगा? यह मुझसे छिपा न था। इसीसे उसने पत्र लिखना भी बन्द कर दिया। प्रेम जब क्रोधमें आता है, तो चुप हो जाता है, बोलता नहीं है। मगर यह बात ज़्यादा दिन छिपनेवाली न थी, एक दिन खुल गई।

बैसाखकी एक सन्ध्या थी। मैं सैर करके घर लौटा तो मा चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखें रो-रोकर सूज गई थीं। मुझे देखते ही उसकी आँखोंसे फिर आँसू बहने लगे। रोते-रोते बोली, "बेटा! तूने बुरा किया। यह तुझे चाहिए न था। ग़रीब लड़कीका दिल टूट गया है। जबसे तेरा पत्र गया है, दिन-रात रोती रहती है। उसके मामाने एक वर ठीक किया है, मगर वह कहती है, मेरा ब्याह हो चुका। हिन्दूकी लड़की हूँ, दूसरा ब्याह न करूँगी। मगर उसका मामा ब्याह करनेपर तुला हुआ है। भगवान् जाने! क्या हो, क्या न हो। मगर तूने बुरा किया। अब भी कुछ हो सके, तो कर ले, वरना मैं कुछ खा मरूँगी। हाय बेटा, तूने इतना भी न सोचा कि यह मेरी मा है।"

यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। वह रात जिस तरह मैंने गुज़ारी है, यह मैं ही जानता हूँ। दूसरे दिन मैं होशियापुरकी

गाड़ीमें बैठ गया। मैंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जाते ही शिवाके पाँव पकड़ लूँगा। कहूँगा तू मेरी मा है, मुझे माफ़ कर, या सज़ा दे। परन्तु वहाँ पहुँचा, तो द्वारपर ब्याहके चिह्न दिखाई दिए। मेरा कलेजा काँप गया! पर मैंने फिर भी हिम्मत न हारी, और भागता हुआ अन्दर चला गया। उस समय मुझे जो कोई देखता, वह यही समझता कि यह पागल है। और मैं सच-मुच पागल ही था। मेरी विचार-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। मुझे इतना भी मालूम न था कि मैं क्या कर रहा हूँ। आँगनमें पहुँचा तो शिवा सामनेसे आती दिखाई दी। मगर इस दशामें कि उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मुझे देखा, तो उसकी आँखोंसे आगकी ज्वाला निकलने लगी। दाँत पीसती हुई बोली, "अब तू यहाँ क्यों आया है? क्या मेरी बेटीकी हत्या करके भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ?"

यह कहकर वह तो वापस चली गई; मुझे जैसे किसीने काठ मार दिया। जैसे किसी दैवी शापसे मेरे पाँव ज़मीनमें जम गए। घरमें मुहल्ले भरकी स्त्रियाँ जमा थीं, शिवाकी आवाज़ सुनकर उनमेंसे कुछ बाहर चली आईं। एक-दो मुझे पहचानती थीं। एक बोली, "अरे बेटा! तूने तो अनर्थ किया। यह लड़की न थी, हीरा थी। इसे ठुकरा कर तेरा भी भला न होगा। ग़रीबने विष खा लिया।"

मैंने कलेजा थाम लिया। इतनेमें दूसरी स्त्री बोली, "वह तो सती थी, सती। रातको ब्याह था, पहले ही विष खा लिया।"

तीसरी—शायद बच जाए।

मुझे कुछ आशा हो गई।

दूसरी (सिर हिलाकर)—अब क्या बचेगी। डॉक्टर भी जवाब दे गया

मेरा दिल फिर बैठ गया।

तीसरी—डॉक्टर कोई परमेश्वर थोड़ा ही है। परमेश्वर चाहे तो अब भी बचा ले। वह चाहे तो मुर्दा जी उठे।

चौथी—इसमें क्या शक है। वह सब कुछ कर सकता है। परमात्मा करे, बच ही जाय। ग़रीबने दुनियाका देखा ही क्या है?

पाँचवीं—(रोकर) कल मैं पास बैठी रही, मुझसे ज़िक्र भी नहीं किया, हाँ चुप थी। अब मालूम हुआ, उसके मनमें मौत बस चुकी थी।

दूसरी—उदास तो उसी दिनसे थी, जिस दिनसे (मेरी तरफ़ घृणासे इशारा करके) इसका ख़त आया था। उस दिनके बाद उसके मुँहपर किसीने रौनक़ नहीं देखी।

तीसरी—क्यों बेटा! इसमें क्या कीड़े पड़े थे जो तूने मँगनी तुड़ा ली। ऐसी लड़की तो सारे शहरमें न होगी।

चौथी—(घृणासे मुँह फेर कर) बहन! तुम भी किससे बातें करती हो। ऐसे आदमीको तो मुँह न लगाना चाहिए। आदमी काहेको है, राक्षस है।

पहली—(ठण्डी साँस भर कर) वाह कमला! तू भी गई। अरी अभी तेरी उमर ही क्या थी?

मैं अवाक् खड़ा था। क्या कहता, क्या न कहता। अपने आपको धिक्कार रहा था। इतनेमें एक लड़की अन्दरसे दौड़ती हुई आई, और मुझसे बोली, "जल्दी चलो तुम्हें बुला रहे हैं।"

मैं भागता हुआ अन्दर चला गया। वह ज़मीनपर पड़ी तड़प रही थी। इस समय भी वह कैसी सुन्दरी, कैसी मोहिनी थी। ऐसा

मालूम होता था, जैसे किसी निर्दयीने किसी फूलको तोड़कर भूमिपर पटक दिया है। उसने मेरी तरफ़ देखा, और फिर आँखें बन्द कर लीं। उस अन्तिम दृष्टिमें जो प्यार, जो अभिमान, जो दुख तथा उलहना भरा था, उसे आजतक नहीं भूल सका।

उसकी माने रोकर कहा, बेटी कमला! (घबराकर जल्दीसे) अरी बेटी कमला!

मगर कमला कहाँ थी?

स्त्रियोंने जल्दीसे उसके हाथपर आटेका दीपक रख दिया।

तो क्या सचमुच उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई? इतनी जल्दी! इतनी छोटी उमरमें! उसकी माका हृदय-वेधक विलाप वायु-मण्डलमें गूँजने लगा, स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं।

जब मैं बाहर निकला, तो आसमान चक्कर खा रहा था, ज़मीन घूम रही थी। मेरे पाँवतले भूमि न थी। हृदयके अन्दर आग लगी हुई थी। इस घटनाको पाँच वर्ष बीत चुके हैं, वह आग उसी तरह सुलग रही है। न दिनको चैन आता है, न रातको आराम मिलता है। रातको ऐसा मालूम होता है, मानो कोई कन्धा पकड़कर हिला रहा है। जागता हूँ, तो कोई कमरेमें सिसकियाँ भरता हुआ मालूम होता है। सोता हूँ, तो सुपनेमें भयानक शक्लें देख कर चौंक उठता हूँ। उस समय मैं अपने आपेमें नहीं रहता। मेरी गगन-भेदी चीख़ोंसे सारे मुहल्लेके लोगोंकी नींद हराम हो जाती है। अब मुझे कोई किराएपर मकान भी नहीं देता। कहते हैं, कौन मुहल्ले-भरसे लड़ाई मोल ले। तुम पर तो रातको भूत सवार हो जाता है। बड़ी मुश्किलसे शहरसे बाहर एक मकान मिला है। उसीमें अपनी भग्न-हृदया

माताके साथ अपने दुःखमय अश्रूपूर्ण जीवनके दिन काट रहा हूँ। परन्तु आह! वह उसकी अन्तिम प्रेमपूर्ण दृष्टि, वह उसकी जवानी और सुन्दरताकी मौत एक पलके लिए भी नहीं भूलती। कैसी आनवाली थी। उसने मुझे देखा नहीं था, मुझसे बातचीत नहीं की थी और न उसका मुझसे पत्र-व्यवहार था। केवल नामका सम्बन्ध था; उसीपर निछावर हो गई। वह इस स्वार्थमय संसारकी लड़की न थी, कोई प्राचीन समयकी सती थी। आज भी उसके जीवनके अन्तिम क्षण मेरी आँखोंके सामने फिर रहे हैं; वही मकान, वही आँगन, वही स्त्रियोंसे भरा हुआ कमरा, और वही उसमें लेटी हुई स्वर्गकी देवी, जो मुझे देखे बिना मरना भी न चाहती थी। हाय शोक! मैंने क्या कर दिया। आज पूरे पाँच सालसे उसे याद कर-करके रो रहा हूँ। मगर न वह भूलती है, न मौत आती है, जो इस जीवनका अन्त हो। इसीलिए मैले कपड़े पहनता हूँ, गन्दा खाना खाता हूँ, अपने आपको अपनी और दूसरोंकी आँखोंमें गिराता हूँ कि शायद इसी तरह मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जाय।"

यह कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। मेरी ज़बानसे एक भी शब्द न निकला; हाँ, हृदयमें आग-सी लग गई। थोड़ी देर बाद वह उठ कर मेरा जूता ले आए, और मेरे सामने रख कर बोले, "चलिए, व्याख्यानका समय हो गया।"

मैं चुप-चाप जूता पहनने लगा।

साइकिलकी सवारी

१

भगवान ही जानता है कि जब मैं किसीको साइकिलकी सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ तो मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है। सोचता हूँ, भगवानने ये दोनों विद्यायें भी खूब बनाई हैं। एकसे समय बचता है, दूसरीसे समय कटता है। मगर तमाशा देखिए, हमारे प्रारब्धमें बीसवीं सदीकी ये दोनों विद्याएँ नहीं हैं। न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा बजा सकते हैं। पता नहीं कबसे यह धारणा हमारे मनमें बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद १९३२ की बात है कि बैठे बैठे ख़याल आया, चलो साइकिल चलाना सीख लें। और इसकी शुरूआत यों हुई कि हमारे लड़केने चुपचुपातेमें यह विद्या सीख ली, और हमारे सामनेसे सवार होकर निकलने लगा। अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणाके कैसे कैसे ख़याल हमारे मनमें उठे हैं। सोचा, भई, क्या हमीं ज़माने भरमें फिसड्डी रह गये हैं? सारी दुनिया चलाती है; ज़रा ज़रा-से लड़के चलाते हैं; मूर्ख और गँवार चलाते हैं। हम तो परमात्माकी कृपासे फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आख़िर

इसमें मुश्किल क्या है? कूदकर चढ़ गए और तावड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राहमें खड़ा है तो टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोध-पूर्ण आँखोंसे उसकी तरफ देखते हुए निकल गए। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहेके घोड़ेकी सवारीका। अब ऐसा मालूम हुआ कि हम 'बे फ़ज़ूल' ही मरे जाते थे। कुछ ही दिनोंमें सीख लेंगे। बस, महाराज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाय, परवा नहीं। सीखेंगे।

दूसरे दिन हमने अपने फटे-पुराने कपड़े तलाश किए, और उन्हें ले जाकर श्रीमतीजीके सामने पटक दिया कि ज़रा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमतीजीने हमारी तरफ़ अचरज-भरी दृष्टिसे देखा और कहा, "इन कपड़ोंमें अब जान ही कहाँ है, जो मरम्मत करूँ। ये तो फेंक दिए थे। आप कहाँसे उठा लाए? वहीं जाकर डाल आइए।"

हमने मुस्कराकर श्रीमतीजीकी तरफ़ देखा। इसका मतलब यह था कि तुम्हें क्या मालूम, हमारे क्या क्या इरादे हैं! मुँहसे कहा, "तुम हर समय बहस न किया करो। आख़िर मैं इन्हें ढूँढ़-ढाँढ़ कर लाया हूँ तो ऐसे ही तो नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर डालो जल्दीसे!

मगर श्रीमती बोलीं, "पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?"

हम चाहते थे, घरमें किसीको कानोंकान ख़बर न हो, और हम साइकिल-सवार बन जायँ। और इसके बाद जब इस विद्याके पंडित हो जायँ तो एक दिन जहाँगीरके मक़बरेको जानेका निश्चय करें। घरवालोंको ताँगेमें बिठा दें, और कहें, तुम चलो, हम दूसरे ताँगेमें आते हैं। और जब वे चले जायँ तो साइकिल पर सवार होकर

उनको रास्तेमें जा लें। हमें साइकिल पर सवार देखकर उन लोगोंकी क्या हालत होगी! हैरान हो जायँगे; दंग रह जायँगे; आँखें मल-मल कर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है! मगर हम ऐसा जाहिर करेंगे, जैसे कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए मामूली बात है।

मगर श्रीमतीजीने कहा, "पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?"

झक मारकर बताना पड़ा कि रोज़-रोज़का ताँगेका ख़र्च मारे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे।

श्रीमतीजीने बच्चेको सुलाते हुए हमारी तरफ़ देखा और मुस्करा कर बोलीं, "मुझे तो आशा नहीं कि आपसे यह बेल मढ़े चढ़ सके। ख़ैर यत्न कर देखिए। मगर इन कपड़ोंका क्या बनेगा?"

हमने ज़रा रोबसे कहा, "आख़िर बाइसिकिलसे एक-दो बार गिरेंगे या नहीं? और गिरनेसे कपड़े फटेंगे या नहीं? जो मूर्ख हैं वे नए कपड़ोंका नुकसान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान हैं वे पुराने कपड़ोंसे काम चलाते हैं।"

मालूम होता है, हमारी इस युक्तिका जवाब हमारी स्त्रीके पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने उसी समय मशीन मँगवाकर उन कपड़ोंकी मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाज़ार जाकर ज़ैम्बकके दो डिब्बे ख़रीद लिए कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला मैदान तलाश किया, ताकि दूसरे दिनसे साइकिल-सवारीका काम शुरू किया जा सके।

२

अब यह सवाल हमारे सामने आया कि अपना उस्ताद किसे बनाएँ।

पहले तो यह सोचा कि बिना उस्तादके सीखो। हमारे लड़केने क्या किसीकी शागिर्दी की थी? कहता था, मैंने तो ऐसे ही सीख लिया। एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरनेकी नौबत ही नहीं आई। मगर फिर सोचा कि वह लड़का है, हम तो लड़के नहीं हैं। आदमी जो काम सीखना चाहे, क़ायदेसे सीखे; नहीं तो नुकसान उठाता है। इसलिए यह तो निश्चय कर लिया कि किसीको उस्ताद बनाएँ। मगर यह निश्चय न कर सके कि किसे बनाएँ। इसी उधेड़-बुनमें बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गए और बोले, "क्यों भाई! हो जाय एक बाज़ी शतरंजकी। ज़रा आवाज़ दो लड़केको। शतरंज और मुहरे उठा लाए।"

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया "नहीं साहब! आज तो जी नहीं चाहता।"

तिवारीने अपने घुटे हुए सिरसे टोपी उतारकर हाथमें ले ली और चोटीपर हाथ फेरकर बोले, "हम तो इतनी दूरसे चलकर आए हैं कि एक दो बाज़ियाँ खेलें, तुमने कह दिया जी नहीं चाहता।"

"अगर जी न चाहे तो कोई क्या करे?"

यह कहते कहते हमारा गला भर आया। तिवारीजीका दिल पसीज गया। हमारे पास बैठकर बोले, "अरे भाई! मामला क्या है? घरवालीसे झगड़ा तो नहीं हो गया?"

हमने कहा, "तिवारी भैया! क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकिलकी सवारी ही सीख लें। मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी मदद करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़यालमें?"

तिवारीजीने हमारी तरफ बेबसीकी आँखोंसे ऐसे देखा, मानो हमको कोई ख़ज़ाना मिल रहा है, और वे ख़ाली हाथ रहे जाते हैं। बोले, "मेरी मानो तो यह रोग न पालो। अब इस उमरमें साइकिल पर चढ़ोगे? और फिर यह भी कोई सवारियोंमें सवारी है कि डंडेपर उकड़ूँ बैठे हैं, और पाँव चला रहे हैं। अजी लानत भेजो इस ख़याल पर, और आओ एक बाज़ी खेलो। कहने लगे, साइकिल चलाना सीखेंगे! क्या ताँगे टूट गये हैं?"

मगर हमने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। साफ़ समझ गए कि तिवारी ईर्ष्याकी आगमें फुँका जाता है। मुँह फुलाकर हमने कहा, "भई तिवारी! हम तो ज़रूर सीखेंगे। कोई आदमी बताओ।"

तिवारी—आदमी तो ऐसा है एक। मगर वह मुफ्त नहीं सिखाएगा। फ़ीस लेगा। दे सकोगे?

हम—कितने दिनमें सिखा देगा?

तिवारी—यही दस-बारह दिनमें।

हम—और फ़ीस क्या लेगा हमसे?

तिवारी—औरोंसे पचीस लेता है। तुमसे बीस ले लेगा हमारी ख़ातिर।

हमने सोचा—दस दिनमें सिखाएगा, और बीस रुपये फ़ीस लेगा। दस दिन—बीस रुपये। बीस रुपये—दस दिन। अर्थात् दो रुपये रोजाना, अर्थात् साठ रुपये महीना, और वह भी एक-दो घंटेके लिए। ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारीजीसे तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ, मगर जीमें खुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना

आ जाय तो एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दें, और तीन-चार सौ रुपया मासिक कमाने लगें।

इधर तिवारीजी मामला तय करने गए, उधर हमने यह शुभ समाचार जाकर श्रीमतीजीको सुना दिया कि कुछ दिनोंके बाद हम एक ऐसा स्कूल खोलनेवाले हैं जिसमें तीन-चार सौ रुपया महीनेकी आमदनी होगी।

श्रीमतीजी बोलीं, "तुम्हारी इतनी उमर हो गई, मगर यह मुआ ओछापन न गया। पहले आप तो सीख लो, फिर स्कूल भी खोल लेना। मैं तो समझती हूँ कि तुम सीख ही न सकोगे; दूसरोंको सिखाना तो दूरकी बात है।"

हमने बिगड़कर कहा, "यह तुममें बड़ी बुरी आदत है कि हर काममें टोक देती हो। हमसे बड़े बड़े सीख रहे हैं तो हम क्यों न सीख सकेंगे? और पहले तो शायद सीखते, शायद न सीखते, मगर अब जब तुमने टोका है तो ज़रूर सीखेंगे। तुम भी क्या कहोगी!"

श्रीमतीजी बोलीं, "मैं तो चाहती हूँ तुम हवाई जहाज़ चलाओ; यह बाईसिकिल क्या चीज़ है? पर तुम्हारे स्वभावसे डर लगता है। एक बार गिरोगे तो देख लेना, बाईसिकिल वहीं फेंक-फाँककर चले आओगे।" फिर धीरेसे यह भी कह दिया, "भगवान् किसीको स्त्री न बनाए। बात करना भी पाप हो गया—अब हम हर काममें टोकनेवाले हो गए! हमें क्या पड़ी है? सीखोगे, अपने लिए; न सीखोगे, अपने लिए। हमें क्या मतलब?"

इतनेमें तिवारीजीने बाहरसे आवाज़ दी। हमने जाकर देखा,

उस्ताद साहब खड़े हैं। भद्दी-सी शक्ल-सूरत, मोटी गर्दन, गलेमें काला तागा, मैली लुँगी, पाँवमें कसूरी जूता, जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी छोटी आँखें। पहले तो मनमें आया, कह दें, हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं। पर फिर सोचा, हमें साइकिल सीखना है। हमें इनकी शक्ल-सूरतसे क्या काम? यह सोचकर हमने शरीफ़ विद्यार्थियोंके समान श्रद्धा भावसे हाथ बाँधकर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गए।

तिवारीजी—यह तो बीसपर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किलसे मनाया है। पर पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।

हम—अरे भई! हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है, मगर फिर भी भले आदमियोंसे ख़ाली तो नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है? हम अपना धर्म लाखोंके लिए भी न गँवाएँ। बस, एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें हम इनकी क्या क्या सेवा करते हैं।

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले, "फ़ीस पहले लेंगे।"

हम—और अगर आपने नहीं सिखाया तो?

उस्ताद—नहीं सिखाया तो फ़ीस लौटा देंगे।

हम—और अगर फ़ीस नहीं लौटाई तो?

उस्ताद—अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं, मगर इतना कह सकता हूँ कि ऐसी बेइमानियाँ मुझे बदनाम न कर देंगी?

इसपर तिवारीजीने कहा, "अजी साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहरमें रहना हराम कर दूँ, बाजारमें निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर भाग जाना कोई हँसी-खेल है?"

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है तो हमने फ़ीसके रुपये लाकर उस्तादकी भेट कर दिए और कहा, "उस्ताद! कल सवेरे सवेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस कामके लिए कपड़े भी बनवा लिए हैं। और अगर गिर पड़े तो घावपर लगानेके लिए ज़ेम्बक भी ख़रीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोसमें जो मिस्त्री रहता है उससे साइकिल भी माँग लिया है। आप सवेरे ही चले आएँ तो हरिका नाम लेकर शुरू कर दें।"

तिवारीजी और उस्तादने हमें हर तरहसे तसल्ली दी, और चले गए। इतनेमें हमें याद आया कि एक बात कहनी भूल गए। नंगे पाँव भागे, और उन्हें बाज़ारमें जा लिया। वे हैरान थे। हमने हाँफते हाँफते कहा, "उस्ताद! हम शहरके निकट नहीं सीखेंगे, शहरके उधर जो बाग है, वहाँ सीखेंगे। वहाँ एक तो जमीन नरम है, चोट कम लगती है। दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है। हम इन देखनेवालोंसे डरते हैं।

३

अब रातको आरामकी नींद कहाँ? बार बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते तो साइकिलके सुपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिलसे गिरकर ज़ख़्मी हो गए हैं, अस्पतालमें एक अँगरेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है और हमारी स्त्री रो रोकर कह रही है कि मैं विधवा हो गई। दूसरी बार देखा कि हम ज़मीनपर खड़े हैं, और हमारा साइकिल आसमानपर चल रहा है। फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्तादने हमें गोदमें उठाकर उछाल दिया। दूसरे क्षणमें देखा तो हम

साइकिलपर सवार हैं, साइकिल आपसे आप हवामें उड़ा जा रहा है और लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं। एकाएक एक शैतानने आकर हमारे कंधेपर हाथ रख दिया, और हम ज़मीनपर गिर पड़े। इतनेमें हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सुपना था। हम चारपाईपर हैं, और हमारी स्त्री हमारा कंधा हिला हिलाकर जगा रही है।

उठकर देखा, दिन निकल आया था। जल्दीसे जाकर वे पुराने कपड़े पहन लिए, जैम्बकका डिब्बा हाथमें ले लिया और नौकरको भेजकर मिस्त्री साहबसे साइकिल मँगवा लिया। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गए और हम भगवान्का नाम लेकर बाग़की ओर चल दिए। लेकिन अभी घरसे निकले ही थे कि बिल्ली रस्ता काट गई, और एक लड़केने छींक दिया। क्या कहें, हमें कैसा क्रोध आया उस नामुराद बिल्लीपर और उस शैतान लड़केपर। मगर क्या करते? दाँत पीसकर रह गए। एक बार फिर भगवान्का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ारमें पहुँचकर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुस्कराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है? सहसा हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहटमें पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिए हैं, और लोग इसीपर हँस रहे हैं। सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े।

हमने उस्तादसे माफ़ी माँगी, और घर लौट आए। अर्थात् पहला दिन व्यर्थ गया।

दूसरे दिन निकले तो हमारे घरके पास जो लाला साहब रहते हैं वे सामने आ गए और मुस्कराकर बोले, "कहिए, कहाँ जा रहे हैं?"

ये लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी है, लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं उसीसे पूछते हैं, कहाँ चले? कई बार समझाया है कि जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाय तो वह काम कभी नहीं होता और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवालेको गालियाँ देता है। मगर लाला साहबपर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचनेका कितना यत्न किया, किस किस तरफ़ मुँह मोड़ा, मगर उनकी 'कहाँ' की तोपसे कौन बच सकता है? महात्माजीने सामने आकर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुन कर जवाब दिया, "नरकको जा रहे हैं। आप भी चलेंगे क्या?"

लाला साहब—अरे! मैंने तो केवल यह पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं?

हम—और मैंने प्रार्थना की है कि नरकको जा रहे हैं। दो आदमियोंकी जगह ख़ाली है। अगर आप न पूछते तो आपका क्या बिगड़ जाता—दुनियामें कौन-सी कमी रह जाती?

लाला—भगवान् जानता है, मुझे मालूम न था कि आप किसी कामके लिए जा रहे हैं!

हम—मानो हम बेकार घूमा करते हैं।

लाला—अजी जनाब! आप भी क्या बातें करते हैं? मैं आपकी शानमें ऐसी गुस्ताखी कर सकता हूँ? मेरा मतलब यह था—

हम—कि इनसे 'कहाँ' न पूछा तो प्रलय हो जायगा। ज़रा सोचिए, आपसे कितनी बार हमने निवेदन किया है कि हमें

इस 'कहाँ' से डर लगता है। मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। आज ही साइकिल चलाना सीखने जा रहे थे। यह देखिए, पुराने कपड़े और जैम्बकका डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल, लेकिन इस 'कहाँ' ने आजका दिन भी ख़राब कर दिया। आपने तो मुस्कराकर पूछ लिया—कहाँ? हमारा दो रुपयेका ख़ून हो गया।

उधर उस्ताद साहबने साइकिलकी घंटी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले, "मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ। आप ज़रा साइकिलको थामिए।"

लाला साहबने यह अवसर पाया तो प्राण लेकर भाग निकले, वरना हम उनसे उस दिन काग़ज़ लिखा लेते कि अब फिर किसीसे 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

४

उस्ताद साहब जब लस्सी पीने लगे तब हमने साइकिलके पुर्ज़ोंकी ऊपर-नीचेसे परीक्षा शुरू कर दी, और लालाजीसे जो बद-मज़गी हो गई थी उसे मिटानेके लिए मुँहमें गुनगुनाने लगे—

भगवान्ने सैकल भी अजब चीज़ बनाई!

फिर कुछ जीमें जो आया तो उसका हैंडल पकड़कर जरा चलने लगे। मगर दो ही कदम गए होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकिल हमारे सीनेपर चढ़ा आता है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि, यह सब लालाजीके 'कहाँ' की तासीर है, वरना बेजान साइकिलमें यह हिम्मत कहाँ कि हमारे जैसे पुरुष-सिंहपर धावा बोल दे। इस समय हमारे सामने यह गम्भीर

प्रश्न था कि क्या करना चाहिए, युद्ध-क्षेत्रमें डटे रहें या हट जायँ? सोच-विचारके बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहेका घोड़ा और फिर लालाजीका 'कहाँ' इसके साथ! इसके सामने हम क्या चीज़ हैं, बड़े बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दिया, और भगोड़े सिपाही बनकर मुड़ गए। पर दूसरे क्षणमें साइकिल अपने पूरे ज़ोरसे हमारे पाँवपर गिर गया और हमारी राम-दुहाई बाज़ारके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्तादजी लस्सी छोड़कर दौड़े आए और दयावान् लोग भी जमा हो गए। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकिलसे निकाला। भगवान्के एक भक्तने ज़ैम्बकका डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथमें दे दिया। दूसरेने हमारी बग़लोंमें हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूतिसे पूछा, "चोट तो नहीं आई? ज़रा दो-चार क़दम चलिए। नहीं लहू जम जायगा।"

हम बेशर्मोंके समान खड़े हो गए, और हमने अपने शरीरका सारा भार पाँवपर डालकर देखा कि पाँव ज़ोर खाता है या नहीं। उस्तादने साइकिलको अच्छी तरह देखकर कहा, "यह तो टूट गया, बनवाना पड़ेगा।"

और यह हम पहलेसे ही जानते थे। यह लालाजीके ख़ूनी 'कहाँ' की तासीर थी। इस तरह दूसरे दिन हम और हमारा साइकिल अपने घरसे थोड़ी दूरीपर ज़ख़्मी हो गए। हम लँगड़ाते हुए घर लौट आए, साइकिलको ठोंक पीटकर ठीक करनेके लिए मिस्त्रीकी दूकानपर भेज दिया।

मगर हमारे वीर हृदयका साहस और धीरज देखिए—अब भी

मैदानमें डटे रहे। कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए, घुटने तुड़वाए, कपड़े फड़वाए, पर क्या मजाल, जो जी छूट जाय। आठ-नौ दिनमें साइकिल चलाना सीख गए। लेकिन अभी तक उसपर चढ़ना नहीं आता था। कोई परोपकारी पुरुष सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिये चले जाते थे। हमारे आनन्दकी कोई सीमा न थी। सोचते थे, मार लिया मैदान हमने! दो-चार दिनमें पूरे मास्टर बन जायँगे, इसके बाद प्रोफ़ेसर और इसके बाद प्रिंसिपल—फिर ट्रेनिंग कालेज, और तीन-चार सौ रुपया महीना। तिवारीजी देखेंगे, और ईर्ष्यासे जलेंगे।

उस दिन उस्तादने हमें साइकिलपर चढ़ा दिया और सड़कपर छोड़ दिया कि लिये जाओ; अब तुम सीख गए।

अब हम साइकिल चला रहे थे, और दिल ही दिलमें फूले न समाते थे कि आख़िर हमने सिंहगढ़को जीत ही लिया। मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज़के फ़ासिलेपर भी होता तो हम गला फाड़ फाड़-कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब! ज़रा बाईं तरफ़ हट जाइएगा। हम नये सवार हैं, और साइकिल हमारे बसमें नहीं है। दूर फासिलेपर कोई गाड़ी दिखाई देती, और हमारे प्राण सूख जाते। कभी कभी ऐसा ख़याल आता कि यह गाड़ी सिर्फ हमें अपनी लपेटमें लेनेके लिए आ रही है। उस समय हमारे मनकी जो दशा होती उसे हमारा परमेश्वर ही जानता है। जब गाड़ी निकल जाती तब कहीं जाकर हमारी जानमें जान आती।

सहसा सामनेसे तिवारीजी आते दिखाई दिए। हमने उन्हें भी दूरसे ही अल्टीमेटम दे दिया कि ओ तिवारी! बाईं तरफ हो जाओ,

वर्ना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे। तुमसे बड़ा मूज़ी और कौन मिलेगा?

तिवारीजीने अपनी छोटी छोटी आँखोंसे हमारी तरफ़ देखा और मुस्कराकर कहा, "ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैंडलकी तरफ़, दूसरी बार तिवारीकी तरफ़ देखकर जवाब दिया, "इस समय कैसे बात सुन सकते हैं? देखते नहीं हो, साइकिलपर सवार हैं। कहने लगे, एक बात सुनते जाओ। अरे भाई! साइकिल चला रहे हैं, साइकिल!"

"तो क्या जो साइकिल चलाते हैं वे किसीकी बात नहीं सुनते? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़रा उतर आओ।"

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिलको सँभालते हुए जवाब दिया, "उतर आए तो फिर चढ़ायेगा कौन? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारीजी चिल्लाते ही रह गए, हम आगे निकल गए। इस समय हमें उनकी बेबसी पर जो मज़ा आया है उसे क्या बयान करें! जी चाहता था, एक बार लौटकर उनका मुँह फिर देख आएँ।

इतनेमें सामनेसे एक ताँगा आता नज़र आया। हमने उसे भी दूरसे ही डाँट दिया, "बाईं तरफ़ भाई! अभी नया चलाना सीखा है।"

ताँगा बाईं तरफ़ हो गया। हम अपने रास्ते चले जा रहे थे। एकाएक पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा या ताँगेवालेको शरारत सूझी। जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ-पाँव फूल गए। ज़रा-सा हैंडल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते। मगर बुरा

समय आता है तो बुद्धि पहले भ्रष्ट हो जाती है। उस समय हमें खयाल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाताने हमारे साइकिलके लिए वही रास्ता नियत कर दिया है जिसपर ताँगा आ रहा था।

क्षण-भरमें हमारे जीवनकी सारी घटनाएँ हमारी आँखोंमें फिर गई, और दूसरे क्षणमें हम और हमारा साइकिल दोनों ताँगेके नीचे थे।

जब हम होशमें आए तो हम अपने घरमें थे, और हमारी देहपर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं। हमें होशमें देखकर श्रीमतीजीने कहा, "क्यों? अब क्या हाल है? मैं कहती न थी, साइकिल चलाना न सीखो। उस समय तो किसीकी सुनते ही न थे।"

हमने सोचा, लाओ सारा इल्ज़ाम तिवारीजी पर लगा दें, और आप साफ़ बच जायँ। बोले, "यह सब तिवारीजीकी शरारत है।"

श्रीमतीजीने मुस्कराकर जवाब दिया—"यह तो तुम उसको चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस ताँगेपर मैं ही तो बाल-बच्चोंको लेकर घूमने निकली थी कि चलो सैर भी कर आएँगे और तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आएँगे।"

मैंने निरुत्तर होकर आँखें बन्द कर लीं।

उस दिनके बाद फिर कभी हमने साइकिलको हाथ नहीं लगाया।

दो परमेश्वर

१

संध्याका समय था। एक जोगी बाज़ारसे गुज़र रहा था। दूकानोंके दीपक जल चुके थे और उनके बुझ जानेवाले प्रकाशमें लोगोंके नश्वर चेहरे इस तरह चमक रहे थे, जिस तरह यौवन-कालमें सौन्दर्य जगमगाता है।

सहसा किसी विलास-प्रिय अमीर आदमीकी वेश्याने अपना सिर मकानकी खिड़कीसे बाहर निकाला, और जोगीके पवित्र वस्त्रपर पानकी पीक थूक दी।

जोगीने ऊपर देखा, और यह देखकर कि वह स्त्री अपनी मूर्खता-पर लज्जित होनेके बदले अभी तक मुस्करा रही है, उसे आश्चर्य हुआ। उसने जोरसे चिल्लाकर कहा—"ऐ नादान! परमेश्वरके पुत्रोंका यों अपमान न कर। उसकी दृष्टिमें तेरा यौवन, और तेरा सौन्दर्य्य दोनों निर्मूल हैं।"

उस सुन्दरीका लाल चेहरा और भी लाल हो गया। उसने क्रोधसे पीछे मुड़कर अपने यौवनके लोभी, अपने सौन्दर्यके उपासककी तरफ़ देखा और कहा—"तूने सुना! एक तुच्छ भिखमंगा भरे बाज़ारमें खड़ा मेरे अनुपम यौवनका तिरस्कार कर रहा है!"

विलासी अमीर जो रमणीके मर जाने, मिट जाने, बरबाद हो जानेवाले रंग-रूपकी मदिराके नशेमें दोनों लोकोंकी तरफ़से अन्धा हो रहा था, लकड़ी लेकर जल्दीसे नीचे उतरा, और ईश्वर-भक्त जोगीपर पिल पड़ा। और अपने हाथ पाँव और लकड़ीकी पूरी शक्तिसे उसे उसकी 'गुस्ताख़ी'के लिए सज़ा दी।

जोगीका चीत्कार आकाशमें गूँज रहा था; परंतु पृथ्वीवालोंके कान इस तरफ़से बिलकुल बन्द थे।

रातको प्रकृतिका न दिखाई देनेवाला हाथ हिला और दूसरे दिन सौन्दर्यका अन्धा अपने पाप-पूर्ण बिस्तरेपर मरा पड़ा था।

२

स्त्रीने हृदयकी हायका यह जीता-जागता चमत्कार देखा, तो उसका रुधिर उसके शरीरमें ठंडा हो गया। वह नंगे सिर नंगे पाँव शहरके बाहर गई, और जोगीके कठोर पैरोंपर अपना सुन्दर सिर रखकर रोने लगी।

जोगीने उसे देखा, और कहा—माई! उठ। मेरा परमेश्वर अपने किसी प्राणीको ऐसी बेबसीकी दशामें नहीं देखना चाहता।

परंतु स्त्रीने चरण न छोड़े। वह अब अपने किए पर लज्जित हो रही थी, और रो रही थी, और उसके पश्चात्तापके आँसू जोगीके पाँवोंपर गिर रहे थे। उसने रुक-रुककर कहा—महाराज! मैं अन्धी थी, मने भूल की, मुझसे पाप हुआ। मुझे गालियाँ दीजिए, मुझे मारिए, मेरी पीठकी खाल उधेड़ दीजिए मगर मुझे अपनी क्रोधकी आगसे बचा लीजिए।

जोगीने उसके मरे हुए प्रेमीका सारा समाचार सुना, और फूट-फूट-

कर रोते हुए कहा—माई! यह मेरा और तेरा झगड़ा नहीं था, मेरे और तेरे परमेश्वरका संग्राम था। तेरे परमेश्वरको क्रोध आया, उसने मुझे मारा। मेरे परमेश्वरको क्रोध आया, उसने तेरे परमेश्वरको मारा। मेरे परमेश्वरके शस्त्र भारी थे, वह जीत गया; तेरा परमेश्वर निर्बल, और कमज़ोर था, वह हार गया।

जोगी एकाएक एक तीसरे आदमीकी तरफ़ मुड़ा और अपने हाथ उसके कन्धोंपर रखकर बोला—तेरा परमेश्वर कौन है?

वह स्त्री और वह पुरुष दोनों इस सवालपर हैरान थे। वह समझ न सकते थे, कि जोगीका मतलब क्या है।

जोगी उठा, और उनको इसी दशामें छोड़कर कुटियासे बाहर निकल गया।

मज़दूर

१

सारा दिन काटन-मिलमें मज़दूरी करनेके बाद, जब कल्लू शामको सात बजे घर पहुँचा, तो सुखिया बुखारमें उसी तरह बेसुध पड़ी थी, जिस तरह वह प्रातःकाल छोड़ गया था। कल्लू थका-माँदा आया था, घर आकर और भी उदास हो गया। आज पन्द्रह दिनसे यही हो रहा था। सुखियाका जी कुछ भी अच्छा देखता, तो उसका मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठता, उसकी थकन उतर जाती; लेकिन सुखिया आज भी अपने फटे पुराने कम्बलोंमें उसी तरह बेहोश पड़ी थी। कल्लूने उसके माथे पर हाथ रखकर देखा और ठण्डी साँस खींचकर ज़मीन पर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद उसकी विधवा बहन रधिया अपने लड़केको लेकर आई और उसे पुआलपर लेटाकर बोली—भैय्या, आज भी उसी तरह पड़ी रहीं, परमेसर जाने भाग्यमें क्या बदा है।

कल्लू—तुमने औसध तो पिला दी थी?

रधिया—औसध कहाँ है? वह तो रात ही चुक गई थी।

कल्लू—तो बच्चनलालकी दूकानसे क्यों न ले आईं? क्या इतनी दूर जाते हुए पाँव दुखते थे?

रधिया रुखाईसे बोली—वह देता नहीं, कहता है पहले पिछले दाम चुका दो, तब और दूँगा।

कल्लू—तूने कुछ कहा ही न होगा, नहीं वह जरूर दे देता। जबानका बुरा है, मनका बुरा नहीं। उस दिन जाकर मैंने उससे अपने दुःख-दर्दकी दो बातें की थीं, तो रोने लगा था। कहता था—कोई चिन्ता न करो, जब औसधकी जरूरत पड़े, मेरे यहाँ आ जाया करो; मुदा तुम्हें क्या?

रधियाने आँखें नचाकर जवाब दिया—हमसे तो खुसामद नहीं होती! तुम्हारी महेरिया बीमार है, तुम जाकर उसके पैरोंपर गिरो।

कल्लू यह जवाब सुनकर बोला—रामाके लिए गुड़ लेना हो, तो लालताप्रसादकी दूकान पर जाकर घंटों बैठी रहो; मगर सुखियाके लिए औसध लानी हो, तो तुम्हारी इज्जत चली जाती है। इतना भी ख्याल नहीं कि सारे सारे दिन करखन्नेमें काम करता है, लाओ इसकी कुछ मदत ही कर दूँ। भाई मजूरी करता है, बहन रानी बनी फिरती है; पर ठीक—जो तन लागे सो तन जाने। बीमार सुखिया है, तुम्हें क्या?

कल्लूके हाथमें टीनका एक डिब्बा था, जिसमें वह सुबहको सत्तू रख कर अपने साथ ले जाता था। उसपर एक मैला कपड़ा बँधा था। कल्लू उसे खोलने लगा।

रधिया बोली—परारथना करो कि रामा बीमार हो जाए। तुम्हारी खुसी हो जाएगी!

कल्लू डिब्बेको रखने जा रहा था, बहनकी बात सुनकर वहींसे लौट आया और बोला—देख रधिया, सामके बखत ऐसी बात न

कर, नहीं तो मेरे मुँहसे भी कुछ निकल जायगा। तू सुखियाको गैर समझती है, मैं रामाको गैर नहीं समझता।

रधिया—तानोंसे तो कलेजा छेद डालते हो!

कल्लू—और तू ही कौन सरबतकी-सी बातें बोलती है, कि सुनकर जी खुस हो जाय। जब देखो, लड़नेको तय्यार रहती है। भाभी बीमार पड़ी है, तुझे लड़ाई सूझती है। कुछ खाने-दानेकी तो पूछती नहीं, लड़नेको तय्यार हो गई।

रधियाने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सुखियाके सिरपर हाथ फेरने लगी। थोड़ी देर बाद सकुचाती हुई बोली—मुझे उसकी दुकानपर जाते सरम लगती है। जब दीदे फाड़-फाड़ कर देखता है तो यही जी चाहता है, कि उसका खून पी जाऊँ। मुझे और जहाँ कहो चली जाऊँ; पर उसकी दूकानपर न भेजो।

कल्लू सन्नाटेमें आ गया। बचन इतना कमीना है! उसे ऐसा क्रोध आया कि उसी वक्त जाकर बचनलालकी मरम्मत करे। उसे भी मालूम हो जाय—ये गरीब हैं, बेहया नहीं हैं। लेकिन अपनी दशा देख कर ज़ब्त कर गया।

मगर गाँवमें बचनलालके सिवा और कहीं दवा न मिल सकती थी। कल्लू हृदयपर पत्थरकी सिल रक्खे आध घंटे बाद उसी बचन-लालकी दूकानपर गया और खुशामदें करने लगा। आत्माभिमान क्रोधमें आकर लड़नेको तैयार हो गया था, पर ज़रूरतने गला घोंट दिया।

२

सुखियाको दवा मिली, पर उससे कुछ लाभ न हुआ, उलटे बीमारी और बढ़ गई। पहले चुपचाप पड़ी रहती थी, अब रह-रह

कर कराहने लगी। कल्लू और रधिया दोनों देखते थे और ठंडी आहें भरते थे। जब सुखिया चुप हो जाती, तो दोनों लेट जाते; जब कराहने लगती, तो दोनों उठकर बैठ जाते। झोंपड़ेमें रोगकी उदासी छाई हुई थी, जिसे रातके सन्नाटेने और भी भयानक बना दिया था।

रातके दो-ढाई बजेका समय था, सुखिया कराह-कराह कर ज़रा लेट गई थी। कल्लूने कुप्पीकी मध्यम धुएँदार रोशनीमें सुखियाके पीले चेहरेकी तरफ निराश नेत्रोंसे देखा और रधियासे कहा—परमेसर जाने, इसे कितनी तकलीफ होती होगी। पन्द्रह दिन तो हो गए होंगे औसध पिलाते।

रधिया—आज सोलहवाँ दिन है भैय्या!

कल्लू—बड़ा जालिम बुखार है, कभी उतरता ही नहीं।

रधिया—परमेसरकी किरपा हो तो, कल ही उतर जाय।

कल्लू—देखो मूँ कैसा सूख गया है!

रधिया—बुखार उतर जाय, तो फिर ताकत आते देर न लगेगी। चार दिनमें दौड़ती फिरेगी।

कल्लू—मुझे तो अन्देसा है, कि यह न बचेगी। अब तो करवट भी नहीं बदल सकती।

रधियाने प्रेमसे डाँट कर कहा—जी मत छोटा करो भय्या, दवा देते चलो।

कल्लू—बच्चनलाल कहता है, दूध पिलाते जाओ, यह नहीं सोचता कि इन गरीबोंके इहाँ दूध कहाँसे आएगा? सत्तू तक तो मिलता नहीं।

रधिया—किसीसे करजा ले लो भैय्या।

कल्लू—अब और कौन करजा देगा? बाल-बाल तो बँधा हुआ है। जीना होगा, जी जायगी; मरना होगा, मर जायगी। पर अब किसीसे करजा तो न माँगा जायगा। और माँगें भी तो देता कौन है? कोई एक दिन दे, दो दिन दे। हमारा तो रोज-रोज यही हाल है।

रधिया—करज न माँगोगे, तो काम कैसे चलेगा? तलब कब तक मिलेगी तुम्हें?

कल्लू—तलब तो कल मिल जायगी; पर उससे क्या होगा? इधर आएगी, उधर उठ जाएगी। इग्यारा रुपये मिलेंगे बीससे ज्यादा करजा है। उस पर भी लोग कहते हैं दूध पिलाओ। गंगाका रस्ता सभी बताते हैं, खरचा कोई भी नहीं देता।

रधिया—खरचा तो भगवान ही दे सकता है, दूसरा कौन दे?

कल्लू—गरीबोंको भगवान भी नहीं देता है, वह भी अमीरोंको ही देता है। जिनकी बड़ी बड़ी तनखाहें हैं, उनको हरसाल तरक्की मिल जाती है, जो भूखे मरते हैं, उन्हें कोई पूछता भी नहीं। बड़ोंसे अपसर भी डरते है, परमेसर भी डरता है। मजूरोंसे कोई भी नहीं डरता।

सुखिया ज़ोरसे कराहने लगी। दोनों भाई-बहन उसके सिरहाने जा बैठे।

रधिया (स्नेहके स्वरमें)—क्यों भाभी! दर्द होता है?

सुखिया—(कराहकर) उठा ले भगवान! अब नहीं सहा जाता।

३

प्रभातका समय था। सरदीके मारे हाथ-पाँव ऐंठे जाते थे। जी चाहता था, बिस्तरेसे बाहर न निकलें, मगर मज़दूरोंकी किसमतमें आराम

कहां । कल्लू मुँह अँधेरे उठ बैठा । पहले उसने एक पुराना कपड़ा जलाकर चिलम सुलगाई, और कुछ देर तम्बाकू पिया। इसके बाद मोटा कुरता पहना, और कई सालका पुराना कम्बल ओढ़ लिया । इसके बाद उसने धीरेसे ता कि कहीं सुखियाकी आँख न खुल जाए, रधियाको जगाया, और कहा—ले मैं चलता हूँ, कुछ सतुआ है, या नहीं ? ले आ, रात भी कुछ नहीं खाया । जरा गुड़ भी दे देना, सूखा सतुआ गलेसे नीचे नहीं उतरता ।

रधियाने पृथ्वीकी ओर देखते हुए जवाब दिया—तुम गुड़को रोते हो, यहाँ सतुआ भी खतम है । कच्ची दाल है, कहो, वह ले आऊँ, भिगोकर खा लेना ।

कल्लूका उदास चेहरा और भी उदास हो गया, मरी हुई आवाज़में बोला—चलो वही बाँध दो ।

रधियाने दाल एक कपड़ेमें बाँधकर भाईको देते हुए कहा—अब घरमें अनाजका एक दाना भी नहीं है । तलब लाओगे, तो सामको कुछ बन जाएगा, वहीं बाँट आए, तो आज भी चूल्हा गर्म न होगा।

कल्लूने कच्ची दालकी पोटली लौटाते हुए कहा—रधिया ! मैं आदमी हूँ राछस नहीं हूँ । तू और बालक भूखे रहो, और मैं खा लूँ, ऐसा बेसरम अभी नहीं हुआ । लो, रामाको खिला देना । मेरा भगवान है, और क्या ?

रधियाकी आँखें अश्रु-पूर्ण हो गईं । बोली—रात भी भूखे रहे हो, आज भी न खाओगे, तो काम कैसे होगा ? सारा दिन चक्कर आते रहेंगे । भैया ! हमारा गुजारा हो जाएगा, तुम यह दाल ले जाओ !

लेकिन कल्लूने दाल न ली और घरसे बाहर निकल गया ।

रास्तेमें कई मज़दूर मिल गए, वे आपसमें दिल्लगी करते, गाते चले जाते थे। कल्लूकी ज़बान बन्द थी; न बोलता था, न हँसता था। उसके साथी चाहते थे कि वह भी हँसे-बोले। आज तलबका दिन है, शामको सबकी मुट्ठियाँ गर्म होंगी; लेकिन कल्लूको रुपये मिलनेकी ज़रा भी खुशी न थी। रुपये उसके हाथमें आयँगे और वहीं खड़े-खड़े बँट जायँगे। शामको उसी तरह खाली हाथ घर लौट आएगा।

महावीरने आकर कल्लूके कंधेपर हाथ रख दिया और कहा—उदास क्यों हो भैय्या! बोलते-चालते नहीं हो, क्या बात है?

घीसूने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—क्या बोले भाई! बेचारेकी महेरिया बीमार है, कई दिनसे बुखार चढ़ा हुआ है। अब क्या हाल है कल्लू? अभी उतरा या नहीं?

कल्लूने ठंडी साँस खींचकर कहा—अभी तो नहीं उतरा भाई! भगवानकी किरपा होगी, तो उतर जायगा।

कल्लू—इलाज किसका है? उसी बच्चनलालका या किसी औरका?

कल्लू—इलाज क्या है, मनकी दौड़ है! हम मजूर लोग क्या इलाज करेंगे? इलाजके लिए रुपये चाहिए, वह हमारे पास हैं नहीं।

घीसू—आज तो तलब मिलेगी?

कल्लू—तलबसे ज्यादा करजा देना है। सबके सब उसी दम आकर घेर लेंगे।

महावीर—एक पैसा न देना। कहना—मेरी महेरिया बीमार है, अगले महीने दूँगा।

कल्लू—लड़नेको तैयार हो जायँगे।

घीसू—हो जाँय, तुम्हारी बलासे। पहले बीमारीका इलाज, पीछे

लेना-देना। अगर जोरू मर गई तो रोते फिरोगे, मुदा यह समय हाथ न आयगा, रुपये तो फिर भी मिल जायँगे।

कल्लू—बहुत करज है भैय्या, तुम गीत गाते थे, मेरा जी रोनेको चाहता था।

महावीरने कहा—एक बात करो। बाकर साहबके पास एक दरखास भेज दो, सायद उसे दया आ जाय।

घीसू—हाँ, यह तुमने खूब सोचा, छुट्टी पर जा रहा है, जरूर कुछ न कुछ दे मरेगा। साफ साफ लिख देना, कि पन्द्रह बरससे इहाँ काम करते हो गए, अब नहीं निभती। सिर पर बहुत करजा चढ़ गया है। सरकार माँ-बाप हैं, कुछ मदत करें। क्यों अब्दुल! तुम्हारा क्या खयाल है?

अब्दुल अब तक चुप-चाप चला जा रहा था। घीसूकी बात सुनकर बोला—दरखास किससे लिखवाओगे?

कल्लूको कुछ कुछ आशा हो चली थी, बोला—कादिर बाबूसे न लिखवा लें। अँगरेजी, फारसी सब कुछ जानते हैं।

महावीर—बस, बस, बस, ठीक है। उन्हींसे लिखवाओ। हमारे दफ्तरमें ऐसा लैक आदमी और कोई नहीं है।

घीसू—महेरियाकी बीमारीका जरूर बयान करना। अपसर लोगों पर इसका बहुत असर होता है।

अब्दुल—यह बात तो तुमने मेरे मुँहसे छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। कादिर बाबूको समझा देना, कि ऐसी दरखास लिखें कि उसके दिलमें बैठ जाय।

महावीर—लो, अब फिकर-फाका छोड़कर एक गीत सुना दो।

अभी तो आधा फासिला भी खतम नहीं हुआ।

कल्लू—भैया! आज माफ़ कर दो, आज जरा जी नहीं चाहता।

घीसू—वाह! जी कैसे नहीं चाहता? अगर रोनेसे तुम्हारी महेरियाका बुखार उतरता हो, तो हम सब रोनेको तैयार हैं। मुदा इससे होता क्या है। तुम रंज होकर आप भी बीमार हो जाओगे। चलो सुरू करो, कोई सुन्दर-सा गीत।

कल्लूने अब्दुल और महावीरकी तरफ दीन नेत्रोंसे देखा, मानो आँखोंकी ज़बानसे कहा—क्या यह बखत गीत गानेका है? लेकिन अब्दुल और महावीर दोनों घीसूके पक्षपाती निकले और कल्लूको विवश होकर गाना पड़ा। गाते-गाते उसे अपना सारा दुख-दर्द भूल गया। ऐसा मालूम होता था, जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं, जैसे उसे जीवनकी सारी विभूतियाँ प्राप्त हैं? जैसे वह स्वाधीन पंछीके समान प्रसन्न है।

४

दो पहरका समय था। मजदूर दो-दो, चार-चारकी टोलियाँ बनाकर धूपमें बैठे, अपना अपना सत्तू खा रहे थे। जिनके पास सत्तू न था, वह कच्ची दाल और हरी मिर्च उड़ा रहे थे। कल्लूके पास कुछ भी न था, न उसे इसकी परवाह थी। वह कादिर बाबूसे अरजी लिखवा रहा था। उसे आशा थी, कि बाकर साहब उसकी जरूर सुन लेंगे। जब एक बजे वह अपनी मशीनपर आया, तो उसके चेहरेपर आशा झलक रही थी। आज उसका दिल काममें न लगता था। बार-बार दरवाजेकी तरफ देखता था, कि कोई चपरासी बुलाने आ रहा है या नहीं? आखिर तीन बजे बाकर साहबने उसे बुला भेजा। कल्लूका कलेजा धड़कने लगा। आशा उसे इतनी समीप

कभी दिखाई न दी थी। उसने जाते-जाते महावीरको मर्म-भरी आँखोंसे देखा और मुस्कराया, मानो कहा—लो देखो, काम बन गया।

साहबके कमरेके पास पहुँचकर, कल्लूने अपने पाँव साफ किए, काँपते हुए हाथोंसे परदा हटाया और अन्दर चला गया।

साहब बहादुर कुरसी पर बैठे, बिजलीकी रोशनीमें, काग़ज़ोंपर हस्ताक्षर कर रहे थे और उनके सिगारका धुआँ कमरेमें भरा हुआ था। कल्लूने झुककर दोनों हाथोंसे सलाम किया और चुपचाप खड़ा हो गया।

साहबने सलामका कोई जवाब न दिया और काग़ज़ोंपर हस्ताक्षर करते रहे। इतनेमें एकाउण्टेण्टने आकर एक काग़ज़ साहबके सामने रख दिया। यह बाकर साहबके छः महीनेके वेतन और सफर खर्चका हिसाब था। साहबने काग़ज़ पर निगाह डाली और कहा—९५१३) नौ हज़ार पाँच सौ तेरह रुपया?

एकाउण्टेण्टने कहा—जी हजूर।

साहबने कहा—हमारी सीट बुक हुई?

एकाउण्टेण्ट—जी हजूर! हो गई। आज टामस कुकका तार भी आगया है।

साहबने सिगारका कश लगाया और रसीदपर हस्ताक्षर कर दिए। बाबू चला गया। तब साहब कल्लूसे बोले—वेल कल्लू! क्या बोलने माँगटा?

कल्लू—हजूर मैंने दरख़ास दी थी।

साहब—मुँहसे बोलो, क्या माँगटा है?

कल्लू—हजूर मैंने कम्पनीमें पन्द्रह साल चाकरी की है। आज-कल बड़ी मुसीबतमें हूँ—सरकार! मुझपर बड़ा करजा हो गया है,

कुछ मदत मिल जाय, तो जी जाऊँ। माई-बाप, आपकी जानको दुआएँ देता रहूँगा।

यह कह कर कल्लूने दोनों हाथोंसे फिर सलाम किया। साहब (प्रार्थना-पत्रको पढ़ते हुए) तुम्हारा नौकरी पन्द्रह सालका है। रुपये कहाँ खर्च कर डालता है ? ताड़ी पीटा है ? जुआ खेलटा है ? बोलो क्या करटा है ?

कल्लू—सरकार ! मैंने कभी जुआ नहीं खेला, कभी ताड़ी नहीं पी। आजकल मेरी जोरू बहुत बीमार है हजूर !

साहब—ओ ! हमें अफसोस है ! डाक्टरका दवाई दो, नहीं वह मर जायगा। देसी हकीम गधाका माफिक है। वह कुछ नहीं जानता।

कल्लू—डाक्टरका इलाज कहाँसे करूँ हजूर ? बड़ा गरीब हूँ। कुछ मदत मिल जाय, तो कर सकता हूँ। पन्द्रह सालसे हजूरकी चाकरी की है !

साहब—हमको अफसोस है, कम्पनी कुछ नहीं करने सकटा। कम्पनीको कई लाखका लास हुआ है। मैनेजर साहब कहटा है, हम कुछ नहीं कर सकटा। जाओ, अपना काम देखो।

यह कहकर बाकर साहबने एक मोटा-सा फाइल उठाया और उसे देखने लगे। कल्लू बाहर निकल आया। इस प्रार्थना-पत्रपर जो-जो आशाएँ थीं सब पर पानी फिर गया। अब उसके सामने फिर वही निराशा और अंधकार और फिकर था।

बाहर निकला, तो बहुतसे मजदूरोंको घबराए हुए इधर-उधर दौड़ते देखा। चारों तरफ़ सनसनी-सी फैली हुई थी। मालूम हुआ कि कम्पनीने डेढ़ सौ मज़दूरोंको नोटिस दे दिया है। हर एकके प्राण

सूखे हुए थे कि कहीं उसे जवाब न मिल गया हो। सभी परमात्मासे प्रार्थना कर रहे थे कि इस सूचीमें हमारा नाम न हो। ऐसा भय समाया हुआ था कि कोई आगे बढ़कर इतना भी न पूछता था, कि किस किसको जवाब मिला है। हरएकको अपनी अपनी पड़ी थी।

इतनेमें एक चपरासी कमरेमें दाखिल हुआ। सबकी आँखें उसकी तरफ़ उठ गईं। उसके हाथमें लिफ़ाफ़ोंका एक पुलिन्दा था; पर यह लिफ़ाफ़े न थे, ग़रीबोंकी मौतके वारंट थे। यह चपरासी बड़ा हँसमुख था। मजदूरोंको हँसाता रहता था। आज उसकी सूरत यमदूतसे भी भयानक थी। जिसके पास रुककर लिफ़ाफ़ा निकालता, वही काँप उठता। जिसके सामनेसे निकल जाता, उसकी जानमें जान आ जाती। कल्लू और महावीर दोनों साथ-साथ काम करते थे। चपरासी आकर महावीरके पास रुक गया और उसके नामका लिफ़ाफ़ा खोजने लगा। महावीरके हाथ-पाँव फूल गए। सिटपिटाकर बोला—अच्छा! मेरे नामका भी लिफ़ाफ़ा है?

चपरासीने हार्दिक समवेदनासे कहा—भैया! छुरी फिर गई है। डेढ़ सौ आदमी काटकर रख दिए, डेढ़ सौ! भगवान जाने अब ये बेचारे क्या करेंगे?

महावीरने लिफ़ाफ़ा लिया और सिर पर हाथ रखकर वहीं गिर पड़ा। चहकता हुआ पंछी एकाएक गोलीका निशाना बन गया।

इधर कल्लूका दम घुट रहा था, कि देखें हमारी क्या गति होती है। ऐसा भाग्यशाली तो नहीं हूँ, कि कतल आम हो और मैं बचा रहूँ; लेकिन शायद।

उसी समय चपरासीने उसके नामका लिफ़ाफ़ा भी सामने रख

दिया। कल्लूपर बिजली-सी गिर पड़ी। जैसे खड़ा था, वैसे ही खड़ा रह गया। उसके होठोंपर हाय न थी, न आँखमें आँसू था। जैसे किसीने कलेजेमें दूर तक छुरी उतार दी हो। साधारण पीड़ा हो, तो रोगी रोता-चिल्लाता है, असाधारण दर्द हो, तो बेहोश हो जाता है। उस समय चिल्लानेकी शक्ति ही नहीं रहती।

इसके बाद वेतन बँटने लगा; लेकिन आज इस समय वह चहल पहल न थी। सभीके दिल बुझे हुए थे। जिनको जवाब मिल गया था, वह तो उदास थे ही, जो बच गए थे, उनके चेहरे भी उदास थे। कौन जाने कल क्या हो!

५

कल्लूको वेतन मिला ही था, कि एक मज़दूरने आकर कहा—क्यों भैया! वह रुपया देते हो, जो तुमने पिछले महीने लिया था? हमें भी जवाब हो गया।

कल्लूने चुपचाप एक रुपया उसके हवाले किया। किसी दूसरे अवसरपर वह टाल देता; लेकिन अब कैसे इनकार करे?

बाकी रुपये उसने धोतीकी अंटीमें रख लिए और विमन-भावसे मशीनपर काम करने लगा। सहसा एक दूसरा मज़दूर सामने आकर खड़ा हो गया। कल्लूने उसे देखते ही अंटीसे सवा रुपया निकालकर चुपचाप उसको दे दिया और बाकी रुपये मशीनपर ही रख दिए कि शायद कोई और आता हो। बीमार निराश होकर दवा छोड़ देता है। कल्लूने निराश होकर सोचना छोड़ दिया।

छुट्टीकी घंटी बजी। कल्लूने रुपये फिर अंटीमें रख लिए और सिर नीचा किये मंद-गतिसे बाहर निकला। और दिन छुट्टी होती थी,

तो मजदूर उछलते-कूदते बाहर निकलते थे। आज सबके सब मौन थे, जैसे किसी शवकी दाह-क्रिया करके लौटे हों। उसी तरह धीरे-धीरे चलते थे, उसी तरह एक दूसरेकी ओर दीन भावसे देखते थे और उसी तरह एक दूसरेको सब्र करनेकी सलाह देते थे।

एकाएक किसीने कल्लूके कंधेपर हाथ रख दिया। कल्लूने सिर उठाकर देखा, तो उसकी जान ही निकल गई। सामने मौतसे भी भयानक पठान हाथमें लम्बी लाठी लिये खड़ा था।

पठानने कल्लूको गरदनसे पकड़कर कहा—बिरादर! पाँच रुपए लाओ। हम आज कुछ न सुनेगा।

कल्लू हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। सोचा—दे ही दूँ। जब नौकरी ही न रही, तो पाँच रुपये कै दिन चलेंगे? क्यों गाली-मार खाऊँ? जो होगा देखा जायगा। फिर ख़याल आया—सुखियाके लिए दवा भी तो लानी है! बहन और भानजेके लिए भोजन भी तो लाना है! खाली हाथ पहुँचूँगा, तो बेचारे निराश हो जायँगे और फिर वहाँ भी तो बनियेको, हकीमको, साहूकारको, देना है। सब राह देख रहे होंगे। एक एक रुपया भी दे दूँ, तो उनको तसल्ली हो जाय। किसी तरह दस-पाँच दिन तो कट जायँगे। नहीं तो....

कल्लूकी आँखोंके आगे अँधेरा आ गया। पठानने जवाब न पाकर कल्लूको ज़ोरसे झंझोड़ा और कहा—ख़र बच्चा! पाँच रुपए लाओ, पाँच रुपए! पिछले महीना हम इधर खड़ा रहा, तुम धोखा देकर दूसरा दरवाजासे निकल गया। ऐं! बोलो!

कल्लू क्या बोलता? उसके मुँहमें ज़बान ही न थी। उसने हृदय-विदारक नेत्रोंसे पठानकी ओर देखा; लेकिन पठान बेदिलका आदमी था।

उसे ज़रा भी दया न आई। उसने उसे एक बार फिर झंझोड़ा और कहा—ख़र बच्चा! सुनता नहीं। हम अपना सूदका रुपया माँगता है। अभी निकाल, नहीं खुदाका कसम, हम तुझे क़तल कर देगा।

कई आदमी जमा हो गए। उनमेंसे एकने आगे बढ़कर कहा—ओ आग़ा! क्या बात है? तू क़तल क्यों करेगा? इसकी गरदन छोड़ दे।

आग़ा—नहीं बाबू साब! यह भाग जायगा!

बाबू—नहीं भागेगा। मुँहसे बात करो।

यह कहकर बाबू साहबने आग़ाके हाथसे कल्लूकी गरदन छुड़ा दी और बोले—अब कहो क्या बात है? तुम्हारे कितने रुपये इसपर आते हैं?

आग़ा—दस रुपया बाबू साब! दो साल हुए इसने लिए थे। पहले सूद देता था, अब सूद भी नहीं देता। दो महीना हो गया। पिछले महीने भी इसने कुछ नहीं दिया।

बाबू—तुम दस रुपयेपर कितना महीना सूद लेते रहे हो?

आग़ा—सिर्फ़ अढ़ाई रुपया, बाबू साहब! हम बेसी नहीं लेता।

बाबू—यह बेसी नहीं तो और क्या है? दस रुपये देकर तुम दो सालमें साठ रुपया ले चुके हो और क्या इसकी जान लोगे? छोड़ दो इसे।

आग़ा—नहीं बाबू साब! ऐसा बेइंसाफ़ी न करो। हम मर जायगा। हमारा दो महीनोंका सूद है। वह दे दे। हम अपना रक़म नहीं माँगता, सूद माँगता है।

समूहमेंसे एक आदमीने कहा—यह आग़ा लोग महाजनोंके भी चचा हैं। पचीस सैकड़े सूद! तोबा-तोबा!

दूसरा बोला—मगर इनसे लोग लेते क्यों हैं? यह ज़बरदस्ती तो नहीं देते? सौ बार माँगते हैं, तब जाकर वह एक बार देते हैं।

तीसरा—अजी यह मजूर, हिसाब-किताब करना क्या जानें ?

चौथा—तो फिर दें। आग़ा कभी न छोड़ेगा। सूद तो पहले ठीक हो गया था, क्यों आग़ा ?

आग़ा (शह पाकर)—हाँ साब ! पहले बता दिया था। इससे पूछ लो, ओ भैया ! कहा था या नहीं ? हमारे पास इसका दस्तावेज है ! उसपर इसका अँगूठा लगा है।

एक आदमीने कहा—अँगूठेसे क्या होता है ? अदालतमें मुकदमा जाय, तो साफ डिसमिस हो जाय। अदालत कभी इतना सूद नहीं दिला सकती। यह सूद नहीं है खुदाका क़हर है।

आग़ा—(झल्ला कर) खुदाका कहर किस लिए है ? हम किसीके घर जाकर नहीं देता। सौ बार आकर कोई माँगता है, तब देता है। जिसे ग़रज़ होता है, वह आप दौड़ा आता है।

बाबू—लेकिन आग़ा ! यह सूद बहुत ज्यादा है। तुमने इसे दस दिए और साठ ले लिए और क्या माँगते हो ? छोड़ दो ग़रीबको।

आग़ा—(आँखें निकालकर) क्यों छोड़े ? नहीं छोड़ेगा। अपने रुपये लेगा। बड़ा रहम है, तो अपने पाससे दे दो। यह ग़रीब है, तो हम भी ग़रीब हैं।

बाबू—(कल्लूसे) क्यों भैया ! तुम्हारे पास हैं पाँच रुपये ? दे दो इस वक्त। कल मेरे पास आना। मैं चन्दा करा दूँगा।

कल्लूने चुपचाप पाँच रुपये निकालकर दे दिए। आग़ा ख़ुश होकर बोला—अब तुम अच्छा आदमी है। हम अपना रकम कभी न माँगेगा। सूद देता चले।

कल्लूको ऐसा मालूम हुआ, मानो उसने रुपये नहीं दिए, अपने

प्राण निकालकर दे दिए हैं। उसकी जेबमें अब केवल तीन रुपये कुछ आने बच रहे थे। वह सोचने लगा—घरमें जाकर क्या दूँ राधिया जब अपनी भूखी आँखोंसे मेरी ओर देखेगी, तो क्या कहूँग उसकी चाल धीमी पड़ गई। उसके साथके मज़दूर आगे निकल ग वह सबसे पीछे रह गया; लेकिन उसे इसकी चिन्ता न थी। वह खंडहरके पास एक पेड़के नीचे बैठ गया और अपने अँधेरे संस अँधेरे विचारोंमें निमग्न हो गया। आज घरसे चला, तो उसके कुछ न था; पर आशा तो थी। इस समय वह भी न थी। वह अँधेरे एकान्तमें फूट-फूट कर रोने लगा।

रात हो गई थी। ठंडी हवा हड्डियोंमें चुभी जाती थी। आक पर काले बादल मँड़ला रहे थे; पर कल्लूको इसकी चिन्ता न थ उसे केवल एक चिन्ता थी—अब क्या होगा? घर जाऊँ य जाऊँ? और अगर जाऊँ तो किस मुँहसे जाऊँ? तलब उड़ नौकरी छूट गई। कोढ़में खुजली और भी बुरी।

सहसा एक परछाईं-सी उसके सामने आकर खड़ी हो गई। घीसू था। उसने उसे इस वृक्षके नीचे बैठे देखा था। जब इ रात हो गई, और वह घर न पहुँचा, तो उसे खोजने निकला।

कल्लूने पूछा—कौन है?

घीसू—अरे भाई! तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो? चलो चलो। नौकरी छूट गई है, तो क्या हुआ, हमारा परमेसर तो मर गया। जो पसु-पंछियोंको देता है, वह हमें भी देगा। चिन्त फजूल है। चलो। भगवान् एक दरवाज़ा बन्द करता है, दरवाज़े खोल देता है।

कल्लू चुपचाप उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जाकर उसने पूछा—सुखियाका क्या हाल है? तुम तो उधर गए होगे?

घीसूने सोचा, बताऊँ या न बताऊँ। कुछ देर असमंजसमें पड़ा रहा, फिर बोला—वह तो चार बजे मर गई। लास रखी है। तुम्हारी बाट देख रहा था।

कल्लूने कोई जवाब न दिया, अँधेरे और सर्दीमें जल्दी जल्दी चलने लगा। इस वक्त उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके सिरसे बोझ उतर गया है।

अब उसे नौकरी छूट जानेका ज़रा भी दुख न था।

कीर्तिका मार्ग

१

धन और कीर्तिमें चोली-दामनका साथ है। लाहौरके दीवान अमृतलालकी कीर्तिका मूल-कारण उनकी दौलत थी। उनमें और कोई सद्‌गुण न था। अँगरेज़ी जानना तो दूर रहा, उर्दू-हिन्दी भी अच्छी तरह न पढ़ सकते थे। पढ़ते तो ऐसा मालूम होता, जैसे कोई छकड़ा दलदलमें फँसकर बाहर निकलनेकी चेष्टा कर रहा हो। ज़रा कोई कठिन शब्द आया, और महात्माजीपर फ़ालिज गिरा। कई मिनट रुके रहते, मगर पहिया दलदलसे बाहर न निकलता। बात-चीत करनेका भी शऊर न था। शौकीन इतने थे कि बाज़ारसे दो दो आनेकी तसवीरें मोल ले आते, और फिर उन्हें आटेसे दीवारोंपर चिपका चिपकाकर झूमते थे कि दीवारोंकी शोभाका कैसी सफ़ाईसे गला घोट दिया है! सुजनता ऐसी थी कि कोई मिलने आता तो सीधे मुँह बात भी न करते थे। और नौकरों-चाकरोंकी तो अपने श्रीहाथोंसे मरम्मत करनेमें भी सङ्कोच न था। कोई काम न करते थे। न इसकी कोई ज़रूरत थी। उनके पिताने अपने बाहु-बलसे लाखों रुपये पैदा किये थे। चार हज़ारके लगभग केवल ब्याज और किरायेमें आजाते थे। बैठे चैनकी बाँसुरी बजाते थे।

पिताने कमाया था, पुत्र खाता था। मगर उनका नाम दूर दूर तक मशहूर था। समाचार-पत्र लिखते, दीवान साहब ऐसे हँसमुख मिलनसार और सभ्य आदमी हैं कि मिलकर हृदय खिल उठता है। यों देखनेमें बड़े सीधे-नज़र आते हैं, मगर बड़े बड़े पण्डितोंका मुँह बन्द कर देते हैं। इतना ही नहीं, उनकी दान-वीरता-की कल्पित कहानियाँ इस सज-धजसे प्रकाशित करते कि दीवान साहब उनकी कल्पना-शक्तिके क़ायल हो जाते, और देर तक हँसते रहते। यह यशो-गान—यह कीर्ति-वृत्तान्त अकारण न था। दीवान साहब हर सभा-सोसाइटीको आर्थिक सहायता दिया करते थे। और उनका दान मामूली दान न होता था। जब देते थे, दिल खोलकर देते थे। पैसे पैसेको दाँतोंसे पकड़नेवाले कंजूसमें चन्दा देते समय इतनी उदारता कहाँसे आजाती थी, इसे मानव-चरित्रका पण्डित भी न समझ सकता था। इष्ट-मित्रोंमें बैठते तो कहते—देखो, मैंने सारी उमरमें एक ही बात सीखी है। और वह दान है। यह सौ गुणोंका एक गुण है। तुम जो जी चाहे करो, जो खेल पसन्द हो खेलो, पर दान दे दो तो समाज चुप रहेगा। दान इस नागका वशीकरण मन्त्र है। दान इस समाजकी जीभ पकड़नेका एकमात्र साधन है।

२

दोपहरका समय था। दीवान साहब अपनी कोठीके हातेमें आराम-कुरसीपर बैठे ऊँघ रहे थे। इतनेमें एक नव-युवक उनके सामने आकर खड़ा हो गया। दीवान साहबने उसको देखा, तो चौंक पड़े। इसके बाद उन्होंने पीठ कुरसीके साथ लगा ली और पाँव सामने रखे स्टूलपर फैला दिये। बोले—अरे कौन? क्या तू पन्नालाल तो नहीं है?

नवयुवकने श्रद्धा-भावसे दीवान साहबके पैर छूकर कहा—जी हाँ, अपने खूब पहचाना।

"ऐमनाबादसे कब आए?"

"अभी गाड़ीसे उतरा हूँ। सीधा इधर ही आ रहा हूँ।"

"अभी खाना तो न खाया होगा?"

"जी नहीं।"

"मैं तो कभीका खा चुका। जाओ, अन्दर जाकर नौकरसे कहो, तुम्हारे लिए तैयार कर दे। दाल रक्खी है आलूकी भाजी बनवा लो।"

पन्नालालके दिलमें बड़ी बड़ी बातें थीं, सब पानीमें डूबती हुई मालूम हुईं। सोचता था, दीवान साहब अमीर आदमी हैं। मैं उनका सम्बन्धी हूँ। पहली बार उनके घर जा रहा हूँ, सिर आँखोंपर बिठायँगे। मगर उनकी ख़ातिर-तवाज़ेका पहला ही प्रकरण कितना निराशा-जनक था, कैसा अपमान-सूचक! पन्नालालका जी खट्टा हो गया। सोचने लगा, जिस ग्रन्थका प्रथम परिच्छेद ऐसा निस्सार है उसका शेष भाग कितना शोक-मय होगा। ख़्याल आया, यहींसे लौट चलूँ। कैसा असभ्य है! पाँव फैलाए बैठा है, और बातें करता है। इतना भी न हुआ कि उठकर कुरसी ही पेश कर दे। चार पैसे क्या हाथ आये, अदब-आदाबसे भी पाक हो गए। पन्नालालकी आँखें ज़मीनकी तरफ़ लगी थीं, मगर दीवान साहबको इसकी ज़रा भी परवा न थी। थोड़ी देर बाद बोले—घरमें तो सब तरहसे कुशल है न?

"जी हाँ! सब खुश हैं।"

"भाभीका क्या हाल है?"

"वे भी मज़ेमें हैं।"

"मिले हुए कई साल बीत गए। कभी आती ही नहीं। ख़ैर उनकी इच्छा। कभी मिलूँगा तो पूछूँगा। तुमने एन्टेंसकी परीक्षा कब पास की?"

"पिछले साल।"

दीवानसाहबने आश्चर्यसे पूछा—कहीं नौकर हो क्या? सारी तनख़्वाह ख़र्च तो नहीं कर देते? कुछ न कुछ बचाकर रक्खा करो, नहीं आख़िरी उमरमें कष्ट होगा।

पन्नालालने ठण्डी साँस भरकर उत्तर दिया—अभी तो कहीं नौकर नहीं हुआ। जबसे इम्तिहान पास किया है, धक्के खा रहा हूँ।

"अरे! यह क्या? तुमने मुझे क्यों न लिखा? लिखते तो कबके नौकर हो चुके होते। तुम लाख परे भागो, पर नाखूनोंसे मांस कब जुदा हुआ है? आख़िर मेरे चचेरे भाईके बेटे ही हो। तुम्हारा जैसा ख़याल मुझे है, किसी दूसरेका न होगा। कोई न समझे तो और बात है, पर समझनेवाले बेटे और भतीजेको बराबर जानते हैं।"

पन्नालालको बहुत आश्चर्य हुआ, जैसे पत्थरोंसे जलकी धारा बहते देख ली हो। विचार आया, लोकाचार नहीं तो क्या हुआ? परन्तु आदमी खरा है। और दिल तो सहानुभूतिका सोता है। मैंने इन्हें समझनेमें भूल की।

पन्नालालने शरमसे सिर झुकाकर कहा—क्या कहूँ, अपनी मूर्खतापर पछता रहा हूँ। अब तो आपका ही भरोसा है। ख़्वाह मारें, ख़्वाह जिला दें। मुझे कोई दूसरा दिखाई नहीं देता।

यह कहते कहते पन्नालाल अन्दर चला गया। दीवान साहब फिर ऊँघने लगे। पर वे सोते न थे, जागते थे। दिलमें सोच रहे थे, पन्नालाल अकारण नहीं आया। कुछ माँगने आया होगा। मैंने इसी भयसे कभी चिट्ठी नहीं लिखी। कभी मिलने नहीं गया। आदमीको अपने ग़रीब सम्बन्धियोंसे परे परे रहना चाहिए। कुछ न कुछ माँग बैठते हैं। उस समय बड़ा सङ्कोच होता है। दें तो मुश्किल न दें तो मुश्किल। मगर इतनी सावधानी करने पर भी दनदनाते हुए आ जाते हैं। इन्हें कुछ भी शरम नहीं आती। समझते हैं, अमीर आदमी है, कुछ न कुछ दे ही देंगे।

रातको स्त्रीसे बोले—कुछ मालूम हुआ, पन्नालाल कैसे आया है?

स्त्री—तुम्हारा दर्शन करने आया होगा।

दीवान साहब—दर्शन तो क्या करने आया है, कुछ माँगने आया है।

स्त्री—चरणामृत दे देना।

दीवान साहब—बड़ी दिक्कतमें फँसा हूँ।

स्त्री—तुम्हारा प्यारा भतीजा है, देखकर तबीयत तो हरी हो ही गई होगी।

दीवान साहब—तुम तो ताने मारती हो।

स्त्री—अब और क्या करूँ, बैठे बैठे मुसीबत सिरपर सवार हो गई।

दीवान साहब—कुछ माँगेगा तो क्या कहूँगा? हमें जवाब देते शरम आती है। इन्हें माँगते सङ्कोच नहीं होता।

स्त्री—लाज-शर्म तो इन लोगोंने घोल कर पी ली है। मैं इसे एक पैसा न देने दूँगी। अमीर हैं तो अपने घर, ग़रीब हैं तो अपने घर। किसीसे माँगने तो नहीं जाते।

दीवान साहब—और मैं कौन-सी बड़ी थैलियाँ लेकर बैठा हूँ कि आयँ तो ले जायँ। साफ़ टाल दूँगा।

स्त्री—मीठी मीठी बातें कर देना। इसमें अपना क्या बिगड़ता है?

दीवान साहब—देखो तो सही कैसे टालता हूँ।

३

पन्द्रह दिन बीत गए। पन्नालाल घर चलनेको तैयार हुआ। इस समय उसके दिलमें सैकड़ों विचार उठ रहे थे। रह रह कर सोचता था, अब क्या होगा। उसे दीवान साहबसे बहुत कुछ आशा थी। वह समझता था, अमीर हैं, दिन-रात दान करते रहते हैं। मैं उनका भतीजा हूँ, क्या मेरी मदद न करेंगे? जो गैरोंको देता है वह अपनेको क्यों न देगा? मानव-चरित्रका यह एक ऐसा रोमाञ्चकारी दृश्य था जो उसने इससे पहले कभी न देखा था। दीवान साहबने उसे साफ़ जवाब दे दिया। उसने रो रोकर कहा, हम मर रहे हैं। कई कई दिन भूखे रहना पड़ता है। आप-पर परमात्माकी कृपा है। ज़रा-सी भी कृपा-दृष्टि हो जाय तो हमारी नैया पार लग जाय। ये बातें न थीं, खूनके आँसू थे। मगर दीवान साहब चिकने घड़े थे, उनपर ज़रा भी असर न हुआ। ठण्डी साँस भरकर बोले—बरखुरदार, तुम्हारी सहायता करना मेरा धर्म है। पर क्या करूँ, इस साल बहुतसे मकान ख़ाली पड़े रहे। हाथ बड़ा तङ्ग है। अब तुमसे क्या कहूँ? लोग समझते हैं, यहाँ हज़ारों आते हैं, पर किसीको क्या पता। यह सब भरम है।

पन्नालालका कलेजा धड़कने लगा। वह गङ्गाके किनारेसे प्यासा वापस जा रहा था। उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया। बहुत नम्रतासे

बोला—अगर आप थोड़ी-सी भी सहायता कर दें तो बड़ी बात है। हम आज-कल पैसे पैसेको मोहताज हो रहे हैं।

दीवान साहबने उत्तर दिया—आजकल मुश्किल है। हाँ, तुम्हारी नौकरीका प्रबंध मैं जल्दी कर दूँगा।

"आज-कल नौकरीका बड़ा बुरा हाल है। एक जगह खाली होती है, सौ उम्मीदवार पहुँच जाते हैं।"

"यही तो ख़राबी है।"

"आप करेंगे तो हो जायगा।"

"अरे, तो क्या अब तुम्हारे लिए भी न करूँगा?"

पन्नालालने ज़मीनकी तरफ़ देखते हुए जवाब दिया—आपको बहुत बहुत काम रहते हैं, भूल न जाइएगा। नहीं तो हम भूखों मर जायँगे।

"मरना जीना तो अपने भाग्यकी बात है। पर मैं तुम्हें भूलूँगा नहीं। तो क्या अब चले ही जाओगे?"

"जी हाँ, यही ख़याल है। कई दिन गुज़र गए। घरके लोग घबरा रहे होंगे।"

"कुछ दिन और न रह जाओ?"

"अब तो आज्ञा ही दीजिए। फिर कभी आ जाऊँगा।"

"मेरा जी तो न चाहता था कि तुम इतनी जल्दी चले जाओ, पर खैर। अपनी चाचीसे मिल आए?"

"जी हाँ, आज्ञा ले आया।"

दीवान साहब कुर्सीपर टाँगें फैलाए लेटे हुए थे। उठकर बैठ गए और बटुआ खोलकर सोचने लगे, इसे क्या दें? इतना गूढ़ चिन्तन किसी फाइनेंस-मेंबरने अपने प्रान्तका बजट तैयार करते समय

भी न किया होगा। आखिर जानपर खेल कर उन्होंने दो रुपये निकाले, और पन्नालालके हाथपर रखकर बोले—भाभीको मेरा प्रणाम कहना।

पन्नालाल चौंक पड़ा। उसने दीवान साहबकी तरफ़ अचरज-भरी आँखोंसे देखा। मानो कह रहा था, तुम्हें धन इतना प्यारा क्यों है? तब वह धीरे धीरे बाहर निकल आया। वहाँ एक छोटी-सी मेज पड़ी थी। पन्नालालने वे दोनों रुपये उस मेजपर रख दिए, और आप स्टेशनको चला गया।

दीवान साहबने बाहर आकर रुपये देखे, तो उनके तन-बदनमें आग लग गई। सोचने लगे, यह छोकरा मेरा अपमान करता है। रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं गई। समझता होगा, उठा कर थैलियाँ दे देगा। इतना खयाल नहीं कि इसके भी लड़के-बाले हैं, हमें क्या दे? घरमें भाँग पकती है, अहङ्कारसे पाँव जमीनपर नहीं पड़ता। मैं भी कैसा सीधा-सादा आदमी हूँ, जो उसकी मीठी मीठी बातोंमें आ गया। बहुत अच्छा हुआ, कुत्तेकी जात पहचानी गई। देखता हूँ, अब कौन इसे डिप्टीकी नौकरी दिलाए देता है।

४

इतनेमें दरवाज़ेपर हार्न बजा, और एक मोटर अन्दर आया। इसमें लाहौरके मशहूर रईस रायबहादुर लखपतराय सवार थे। उनको देखकर दीवान साहब खड़े हो गए, और मोटरके पास आकर बोले—आज शायद आप रस्ता भूल गए हैं।

धन धनवानोंसे भी सत्कार करा लेता है।

रायबहादुरने मोटरसे उतरकर दीवान साहबसे हाथ मिलाया और

कहा—क्या कहूँ दीवान साहब, दुनियाके धन्धे नहीं छोड़ते, नहीं तो आपके यहाँ रोज़ आता, रोज़।

"छः महीनेके बाद आए हैं आप।"

"शायद। मैं ऐसी बातोंका हिसाब नहीं रखता।"

"मगर मैं तो बराबर रखता हूँ।"

रायबहादुरने क़हक़हा लगाकर कहा—बहुत अच्छा करते हैं। इसीपर किसी दिन ख़िताब मिल जायगा।

यह कहकर रायबहादुरने कनखियोंसे दीवान साहबकी तरफ़ देखा। पर वे ग़मगीनसे थे। वह हँसी, वह प्रसन्नता, वह निश्चिन्तता, पता नहीं कहाँ छिप गई। रायबहादुरने सिगरेट-केससे एक सिगरेट निकालकर दीवान साहबको पेश किया। इसके बाद अपना सिगरेट सुलगाया, और कुरसीसे पीठ लगाकर धूआँ उड़ाने लगे।

मगर दीवान साहबको सिगरेट पीनेकी सुध न थी। उन्होंने अपनी कुरसी रायबहादुरके पास सरका ली और धीरेसे कहा, तो क्यों जनाब, क्या हम ख़ाली ही रहेंगे?

रायबहादुर सिगरेट पीते रहे।

"देखिए, कितने साल गुज़र गए हैं। मामूलीसे मामूली आदमी भी रायसाहब और रायबहादुर बन गए हैं। हमें कोई पूछता ही नहीं।"

रायबहादुर फिर भी सिगरेट पीते रहे।

"मैंने हर सभाको, हर समाजको दिल खोलकर दान दिया है। इतनी भक्ति परमेश्वरकी करता तो परमेश्वर मिल जाता। मगर सरकार-देवता अभीतक प्रसन्न नहीं हुआ।"

रायबहादुर हँसने लगे।

"आप अख़बार तो देखते होंगे। हर साल हज़ारोंका दान करता रहा हूँ। कोई अख़बार उठा लीजिए, आपके सेवककी स्तुतिसे भरा होगा। परन्तु सरकारकी कृपा-दृष्टिसे अभीतक वञ्चित हूँ। ज्यादा न सही, क्या मैं इस लायक़ भी न था कि रायसाहब या रायबहादुर ही बना दिया जाता? आपकी सरकारसे इतनी बनती हो, और हम फिर भी मुँह देखते रह जायँ! यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?"

यह कहते कहते दीवान साहबकी आँखोंमें आँसू लहराने लगे। रायबहादुरका दिल पसीज गया। धीरेसे बोले—दीवान साहब, सरकार खिताब अपने आदमियोंको देती है, लोगोंके आदमियोंको नहीं। बेशक आपने बहुत-सा रुपया ख़र्च किया है, पर इससे सरकारको क्या? मुझे ज़रा बताइए, आपने सरकारके लिए क्या किया है? सरकार आपको क्यों ख़िताब दे?

दीवान साहबकी आँखें खुल गईं। मुसाफिर सोया हुआ था, पानीके चार छींटोंने उठाकर बिठा दिया। दीवान साहबको ऐसा मालूम हुआ मानो वे आजतक उलटे रास्तेपर चलते रहे हैं। किधर जाना था, किधर चलते रहे। परन्तु उनका हरएक क़दम उन्हें उनकी मंज़िलसे दूर लिये जाता रहा। भूला हुआ मुसाफ़िर, खूब दौड़ता है, खूब चलता है, खूब भागता है। समझता है, सफ़र पूरा होनेमें अब विलम्ब नहीं। परन्तु एकाएक मालूम होता है, यह तो मार्ग ही दूसरा है, मैं तो किसी दूसरे नगरको जा रहा हूँ। उस समय उसे कितना दुःख होता है! उसका दिल घबरा जाता है। वह निराश हो जाता है। यही दशा दीवान साहबकी थी। उन्हें किसीने उलटे रास्तेपर डाल दिया

था। समझते थे, अख़बारोंकी तारीफ़ मुझे ख़िताब दिला देगी। इस झूठी आशामें उन्होंने हज़ारों रुपये दान कर दिए थे। इसमें सन्देह नहीं, वे लोगोंकी स्तुतिके भी भूखे थे। पर सरकारके दिए हुए ख़िताबमें कुछ और ही मज़ा है।

दूसरे सप्ताह दीवान साहबने गवर्नर महोदयको अपनी कोठीमें एक शानदार डिनर-पार्टी दी। अख़बारोंमें शोर मच गया। कोई और होता तो यही अख़बार पंजे झाड़कर उसके पीछे पड़ जाते। परन्तु ये दीवान साहब थे, जो उनकी संस्थाओंको दान दिया करते थे। हम दानी आदमीके विरुद्ध नहीं बोल सकते। उसका दान हमारी जीभ पकड़ लेता है। लोग कहते थे, ऐसी पार्टी लाहोरमें आज तक किसीने नहीं दी। सजावट, प्रकाश, खाना सब उच्च कोटिके थे। मेहमान फड़क उठे। गवर्नर साहब बहुत खुश हुए। चलते समय उन्होंने दीवान साहबसे कहा, आपने हमारा खातर बहुत तक़लीफ किया। ये शब्द न थे, देवताका वरदान था। दीवान साहबका सारा परिश्रम, सारा ख़र्च सफल हो गया। हिसाब किया गया तो मालूम हुआ कि डिनरपर तीन हज़ार रुपया उड़ गया है मगर दीवान साहबको इसका ख़याल न था। ख़याल यह था, किसी तरह सरकारसे ख़िताब मिल जाय।

उधर पन्नालाल ऐमनाबादमें बैठा अपने प्रारब्धको रोता था। उसने दीवान साहबको बार बार पत्र लिखे। यह पत्र न थे उसके दुर्भाग्यकी कहानियाँ थीं, और उन कहानियोंमें दिलका दाह था। कोई ग़रीब आदमी उन्हें पढ़कर बिलबिला उठता। पर दीवान साहब अचल रहे। वे ख़िताबकी धुनमें तन्मय हो रहे थे। आज किसी एक

अफ़सरसे मिलते, कल किसी दूसरेसे। उनको अब किसी और चीज़की धुन न थी, केवल ख़िताबका ख़याल था। वह उस दिनके लिए किसी प्रेमीकी भाँति तड़प रहे थे, जब उनका नाम सुनहरी सूचीमें प्रकाशित हो, और उनकी मित्र-मण्डली उनको बधाई देने आए। वह दिन कैसा भाग्यवान् होगा? दीवान साहबने सारा साल सरकारी चन्दोंकी भेंट कर दिया। यहाँ तक कि उनके हिसाबकी किताबमें २९ हज़ार रुपयेकी कमी हो गई।

६

सङ्कटमें समय भी नहीं गुजरता। पन्नालालके लिए एक एक दिन साल हो गया। अब उसे दीवान साहबका नाम सुनकर ज़हर चढ़ जाता था। घायल अङ्गपर हलकी-सी चोट भी बहुत दुखती है। हम उसपर बहुत जल्द झुँझला उठते हैं। पन्नालालने निश्चय कर लिया कि मरता मर जाऊँगा, पर दीवान साहबका मुँह न देखूँगा। अब उसे किसी पराएसे आशा थी, किसी अपनेसे आशा न थी। उसने दीवान साहबकी आशा छोड़ दी और अपने तौरपर यत्न करने लगा कि कोई साधारण-सी भी नौकरी मिल जाय तो कर लूँ। मगर कई महीने बीत गए, और नौकरी न मिली। पन्नालाल घबरा गया। क्या करे? क्या न करे? दो क्वाँरी बहनें थीं, एक विधवा मा। घरमें जो चार पैसे जमा थे वे भी उड़ गए। अब कौड़ी कौड़ीको मोहताज था। कौन देगा? इस स्वार्थी, झूठे संसारमें उनकी सहायता कौन करेगा? दुःखकी इस अँधेरी रातमें उनकी बाँह कौन थामेगा? पन्नालालने चारों ओर देखा, पर कोई सहायक, कोई सज्जन, कोई अपना दिखाई न दिया।

एक दिन एक अख़बार देख रहा था, एकाएक उसमें एक विज्ञापन दिखाई दिया। पन्नालाल चौंक पड़ा। लाहौरके किसी रईसको एक लिखे-पढ़े चपरासीकी जरूरत थी, वेतन बीस रुपये मासिक। पन्नालालकी आँखें चमकने लगीं। वह ख़ानदानी आदमी था। उसे आत्म-सम्मान और मान-मर्य्यादाका बहुत ख़याल था। मगर अब वह यह कमीनी नौकरी करनेको भी तैयार था। जो पंछी आकाशमें उड़ता है, उसीके पंख कट जाएँ, तो ज़मीनपर रेंगने लगता है। पन्नालाल भागा भागा माके पास गया और बोला—यह नौकरी मिल जाय तो कर लूँ?

माने आँखोंमें आँसू भर कर उत्तर दिया—लोग क्या कहेंगे? यह भी कोई नौकरी है? ज़रा सोचो तो सही।

"बहुत सोचा। अच्छी न मिले तो बेकार कब तक बैठा रहूँ।"

"कहीं मुँह दिखानेके लायक़ न रहोगे।"

"पर रोटी तो मिल जायगी।"

"ऐसी नौकरी हमारे वंशमें आजतक किसीने नहीं की।"

पन्नालालने बे-परवाईसे कहा—अब उन बातोंको भूल जाओ।

मा ठण्डी साँस भरकर बोली—मुझे अमृतलालसे यह आशा न थी। आदमी काहेको है, राक्षस है। मरते समय यह धन छातीपर रखकर ले जायगा क्या? हम भूखों मरते हैं, उसे ज़रा चिन्ता नहीं। लहू सफ़ेद हो गया।

"मेरे सामने उसका नाम न लो। कहो, यह नौकरी कर लूँ या ख़याल छोड़ दूँ?"

"कर लो। जब परमात्माने दुःख दिया है तो अहङ्कार कैसा!"

पन्नालाल लाहौर पहुँचा। प्रारब्ध अच्छा था, जाते ही नौकरी मिल गई। पन्नालालने शान्तिकी साँस ली। यह नौकरी न थी, उसके सौभाग्यके द्वार थे। आज तक माँगता था, अब अपने बाहु-बलसे कमाने लगा।

६

जनवरीकी पहली तारीख़ थी। दोपहरके समय रायबहादुर लखपतरायकी कोठीमें एक मोटर दाख़िल हुआ। पन्नालालने दौड़कर दरवाज़ा खोला, और नम्रतासे एक तरफ़ खड़ा हो गया। सहसा उसकी दृष्टि मोटरमें बैठे हुए आदमीपर पड़ी। उसके पैरोंतलेसे ज़मीन खिसकने लगी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।—ये दीवान अमृतलाल थे। पन्नालालकी आखोंमें ज़मीन-आसमान सब हिलने लगे। उसका शरीर, उसका दिल, घृणा, क्रोध और लज्जाकी अग्निमें खौलने लगा। हम दूसरोंके सामने घृणितसे घृणित काम भी कर सकते हैं, पर अपने सम्बन्धियोंके सामने सिर झुकाते हुए भी लज्जा लगती है। हम इसे सहन नहीं कर सकते।

पर दीवान साहबने उसे न पहचाना। वे बड़े आदमी थे। आज उन्हें रायसाहबका ख़िताब मिला था। वे अख़बार हाथमें लिए हुए लखपतरायके पास पहुँचे और बोले—भाई! बधाई हो! मुझे ख़िताब मिल गया।

शामको थानेपर सूचना पहुँची कि रायबहादुर लखपतरायके चपरासीने आत्म-हत्या कर ली है। यह समाचार ऐमनाबाद पहुँचा, तो वहाँ कुहराम मच गया। पन्नालालकी मा और बहनें पछाड़ें खाती थीं। लोग कहते थे, लड़का क्या मरा सारा घर ही अनाथ हो

गया। अब इनका कोई सहारा नहीं रहा। इधर लाहौरमें दीवान अमृतलालके यहाँ जलसा हो रहा था, और लोग उन्हें हँस हँसकर बधाई दे रहे थे। जब जलसा समाप्त हुआ तो दीवान साहबने ख़िताबकी खुशीमें पंजाब-हिन्दू अनाथालयको एक हज़ार रुपया दान दिया।

और दूसरे दिनके प्रान्तके सारे अख़बार उनकी स्तुतिसे भरे थे।

धर्मकी वेदीपर

१

सोलह सौ साल गुज़रे, सिसलीमें रोमन कैथोलिक लोगोंका राज्य था। ईसाई होना उस ज़मानेका सबसे बड़ा अपराध था। चोरों, डाकुओं, और हत्यारोंके लिए क्षमा थी, मगर ईसाईयोंके लिए क्षमा न थी। राज्य-कर्मचारियोंके अधिकार इतने अधिक थे कि जिसे चाहते, इस अपराधमें पकड़कर गोली मार देते, कोई पूछनेवाला न था। ईसाई अपनी जान बचाते फिरते थे। उनको खुल्लम-खुल्ला यह कहनेका साहस न था कि हम ईसाई हैं, पर वे छिप-छिपकर सभाएँ करते थे। दिलोंमें दम था, मुँहमें साहस न था। हाँ पकड़े जाते, तो झूठ न बोलते थे, न मौतसे डरते थे। उस समय उनके धर्म-प्रेमको देखकर लोग दंग रह जाते थे। कर्मचारी कहते, तुम केवल इतना कह दो कि हम ईसाई नहीं हैं, छूट जाओगे। प्राण-रक्षाकी कितनी सरल विधि थी! मगर वे सूरमा थे, प्राण दे देते थे, प्रण न दे थे। जब उनके सिर हथौड़े मार-मारकर चूर-चूर किए जाते थे, जब उनकी आधी देह भूमिमें गाड़कर उनपर ख़ूनी कुत्ते छोड़े जाते थे, तो दुश्मनोंकी आँखें भी सजल हो जाती थीं, मगर उन धर्म-वीरोंका उत्साह भंग न होता था, न मुँहपर मलाल

आता था। हँसते हँसते मरते थे। यह शरीरकी शक्ति न थी, मनकी महत्ता थी। यह दुनियाकी दिलेरी न थी, धर्मका धीरज था।

इस अन्धेर और अन्यायकी अमलदारी यों तो सिसलीके सारे इलाक़ेपर थी, मगर सिसलीकी राजधानी अकतानियाकी दशा तो अकथनीय थी। उसका अनुमान करना भी आसान नहीं। उस समय वहाँका गवर्नर कैंतयानस था। सिसलीके आसमानने ऐसा अन्यायी, ऐसा पाषाण-हृदय, ऐसा विलासी गवर्नर कम देखा होगा। वह खड़े-खड़े आदमियोंकी खाल उतरवा लेता था, जीते-जागते आदमियोंको ज़मीन-में दबवा देता था। लोग तड़पते थे, और वह मुस्कराता था। मानों वे मनुष्य न थे, मिट्टीके लोंदे थे। और ईसाईयोंके लिए तो वह जमदूत था। उसने अकतानियामें आते ही एक घोषणा की, जिसमें साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं इस शहरके ईसाइयोंको चुन-चुनकर मौतके घाट उतारूँगा। मुझसे पहला गवर्नर बहुत दयावान् था, उसके राज्यमें तुमने बड़े बड़े ऐश किए हैं। मगर अब वह ज़माना नहीं है। अब कैंतयानसकी हुकूमत है। इस हुकूमतमें साँपों और बिच्छुओंके लिए जगह है, ईसाइयोंके लिए नहीं। मैं अकतानियाकी पुण्य-भूमिसे इस पाप-कालिमाका चिह्न मिटा दूँगा। यह केवल धमकी नहीं थी, अकतानियाकी भविष्य-नीतिकी घोषणा थी। ईसाई-प्रजा सहम गई। अब पुलीस जहाँ-तहाँ छापे मारने लगी। पहले आग कहीं-कहीं सुलगती थी, अब उसकी ज्वाला चारों ओर फैल गई।

२

कैंतयानसमें इससे भी बड़ा ऐब यह था कि वह विषयासक्त भी था। सदा सौन्दर्य और यौवनको ढूँढ़ा करता था। उसके राज्यमें किसी

सुन्दरीका सतीत्व सुरक्षित न था, जिसे चाहता, महलमें पकड़ मँगवाता। उसके सामने सिर उठानेकी किसीमें हिम्मत न थी। वह गवर्नर था और उसके पास सेना, घोड़े, शस्त्र, शक्ति सब कुछ था।

रातका समय था, अकतानियाके गली-कूचोंमें अँधेरा छाया हुआ था। परन्तु कैंतयानसका राज-भवन चंद्रमुखी युवतियोंकी ज्योतिसे जगमगा रहा था। कैंतयानस राज्य और मदिराके मदमें मस्त था, और सौन्दर्य और प्रकाशसे चमकते हुए कमरेमें बैठा अपने रसिक मित्रोंमें डींग मार रहा था—सच कहना! क्या मैंने अपनी इस आधी रातकी सौरभ-सभामें अकतानियाकी सबसे सुंदर कामिनियोंको एकत्रित नहीं कर लिया?

सब दोस्तोंने गर्दन झुका दी और कहा—ठीक है। मगर सैलोनियस चुप रहा। यह चुप्पी न थी, कैंतयानसके अभिमानका अपमान था। कैंतयानसकी देह क्रोधकी आगमें जलने लगी। बोला—क्यों सैलो-नियस! तू चुप क्यों है? क्या तुझे मेरी बातमें शक है?

सैलोनियस बोला—महाराज! मुझे आपके कथनमें शक नहीं, न मुझमें यह साहस है। मैं स्वीकार करता हूँ कि आपके सामने इस सुन्दर शहरकी सबसे सुन्दर युवतियाँ हाज़िर हैं। मगर अभी यह चुनाव अधूरा है। तारे हैं, पर चाँद नहीं है।

कैंतयानस—तो क्या अकतानियामें कोई ऐसी सुन्दरी है, जो चन्द्रमाकी इन बेटियोंसे खूबसूरत है?

सैलोनियस—हाँ सरकार! है।

कैंत०—कौन?

सैलो०—अगथा।

कैंतयानस चौंक पड़ा। उसे इसपर विश्वास न आया कि अगथा उन परियोंसे सुन्दर होगी। उसने अपने माथेपर हाथ फेरा और कहा—मगर मैंने यह नाम आजसे पहले कभी नहीं सुना। साफ़-साफ़ कहो, क्या वह सचमुच ऐसी सुन्दरी है?

सैलोनियस—बस! कुछ न पूछिए, अकतानियाका चाँद है।

कैंतयानस—मुझे मालूम ही न था।

सैलोनियस—ये औरतें उसके सामने कोई चीज़ ही नहीं। यहाँ आ जाय, तो यह जगह जगमगाने लगे।

कैंतयानस—तो उसे कल यहाँ बुलवाओ।

सैलोनियस—आप देखकर दंग रह जायँगे। स्त्री नहीं, परी है। आपका हृदय खिल उठेगा। पर आसानीसे बसमें न आएगी। ऊँचे-कुलकी कन्या है, माता-पिता मर चुके हैं, अब अकेली रहती है और चाँदी-सोनेको मिट्टी समझती है।

विषय-वासनाकी आगपर तेल पड़ गया। कैंतयानस कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—मैं आप उसके पास पहुँचूँगा।

३

यह कहकर कैंतयानसने मित्र-मण्डलीको उठनेका इशारा किया, और जाकर पलंगपर लेट गया। परन्तु उसे नींद न आई। सारी रात अगथाकी कल्पित मूर्ति उसकी आँखोंमें फिरती रही। सोचता था, कब दिन चढ़े और कब जाकर उसे देखूँ! आज उसका राजसी बिस्तर अंगारोंकी भाँति गरम हो रहा था। उसपर लोटता था और तड़पता था। बार-बार उठता था और आकाशके तारोंको देखकर झुँझलाता था। अगर उसके बसकी बात होती, तो वह इस चिन्ताकी रात

और रातकी चिन्ता, दोनोंको क्षण-भरमें समाप्त कर देता। परन्तु प्रकृति अपने नियमोंको किसीकी ख़ातिर कभी नहीं बदलती।

आख़िर दिन निकला। कैंतयानसने अपने शाही वस्त्र पहने और अपने अस्तबलके सबसे ख़ूबसूरत घोड़ेपर सवार होकर राजमहलसे बाहर निकला। थोड़ी देर बाद वह अगथाके शांति-भवनके सामने खड़ा दिलमें सोच रहा था, उसे कैसे देखूँ ? वह गवर्नर था, अगथा उसकी प्रजा थी, वह उसके मकानके अन्दर जा सकता था, वह उसे बाहर बुला सकता था, यह सब कुछ उसके लिए ज़रा भी मुश्किल न था। मगर वह फिर भी सोच रहा था, क्या करूँ ?

सहसा दरवाजा खुला और एक भोली-भाली लड़की फूल चुननेकी टोकरी लिए हुए बाहर निकली। उसके मुँहपर चाँदकी चाँदनी, फूलोंकी कोमलता, और प्रभातकी प्रतिभा थी, और उसके साथ वसन्तकी शोभा थी। कैंतयानसने उसे देखा और सब कुछ समझ गया। यही अगथा थी, रूपवती, लज्जाशील, मनको मोह लेनेवाली। यह स्त्री नहीं थी, देवी थी। उसके यौवनमें बदल जानेवाली, मर जानेवाली, नष्ट हो जानेवाली पार्थिव शोभा न थी, स्वर्गकी सुन्दरता थी, जो कभी नाश नहीं होती। यह मोहिनी मूर्ति उन पाप-लिप्सित वासनाकी बेटियोंसे कितनी ऊँची और पवित्र थी। उनके साथ इसकी तुलना भी नहीं की जा सकती थी। कैंतयानस हत-बुद्धि-सा हो गया। वह आगे न बढ़ सका। उसने बोलना चाहा, उसने बोलनेकी कोशिश की, मगर उसकी जीभ गूँगी हो गई, और उसके शब्द उसके ओंठोंपर जम गए। जीतने आया था, हारकर लौट गया।

अब कैंतयानसको ज़रा चैन न था, हर समय हारा हारा रहता

था। न वह दिनकी दिलचस्पियाँ थीं, न वह रातकी रंगरेलियाँ। राग ख़रीदने निकला था, रोग ख़रीद लाया। भाग्यके खेल निराले हैं।

एक दिन सैलोनियसने पूछा—यह आपको हो क्या गया? अब वह पहली-सी बात ही नहीं रही!

कैंतयानसने ठंडी आह भरकर जवाब दिया—बड़े निर्दयी हो! आप ही आग लगाते हो, आप ही गिला करते हो, कि यह धुआँ काहेका है?

सैलोनियसको उस आधी रातकी बातका ध्यान न भी न था, हैरान होकर बोला—यह आप क्या कह रहे हैं? मुझे तो ख़याल ही नहीं।

कैंतयानस—अरे तो क्या तुम बिलकुल भूल गए?

सैलोनियस—अब सरकार, क्या बोलूँ!

कैंतयानस—उस रात तुमने कहा था, कि इस शहरमें एक लड़की है, जिसके बिना हमारा परिस्तान सूना है।

सैलोनियस—(याद करनेका यत्न करते हुए) मैंने कहा था?

कैंतयानस—हाँ तुमने कहा था तुमने!

सैलोनियस—आश्चर्य है, मुझे ज़रा भी याद नहीं।

कैंतयानस—तुमने उसका नाम भी बताया था।

सैलोनियस—खूब रही! क्या नाम बताया था?

कैंतयानस—बूझ जाओ! (मुस्कराकर) अगथा।

सैलोनियस—(चौंककर) सरकार! नशेमें था, मगर नाम ठीक बताया था। ऐसी सुन्दरी हमारे सारे सिसलीमें नहीं। सरकार! सुन्दरी क्या है, चन्द्र-लोककी परी है। आप एक बार देखें तो सही।

कैंतयानस—मैं देख भी आया, तुम्हारा कहना ठीक है।

सैलोनियस—मैंने ऐसी लड़की सारी उम्रमें नहीं देखी।

कैंतयानस—अब आँखें उसे भूलती ही नहीं हैं।

सैलोनियस—तो आज्ञा कीजिए, आ जाएगी। आपका कहना कैसे टाल सकेगी? आख़िर आपकी प्रजा है।

कैंतयानस—तुम मेरा मतलब नहीं समझे। मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ।

सैलोनियस—बड़ा शुभ विचार है। उसके तो भाग जाग उठे, बैठी राज करेगी।

कैंतयानस—तुम एक काम करो। कोई स्त्री बुलाओ, जो उसे मना ले। वह मुझसे डरती है। जब तक उसका डर न निकलेगा यह काम बनना मुश्किल है।

सैलोनियस—ऐसी स्त्री कौन हो सकती है?

कैंतयानस—अब यह भी हम ही बताएँ! अफ़रोडेसियाको बुलाओ।

सैलोनियस—(उछलकर) वाह साहब! खूब सोचा। अब परी शीशेमें उतरी समझिए। अफ़रोडेसिया सब कुछ ठीक कर लेगी।

मगर अगथाने कह दिया, मैं ब्याह न करूँगी।

इसके बाद छह महीने तक कैंतयानस वह सब कुछ करता रहा, जो एक प्रेमी कर सकता है। पत्र लिखे, संदेसे भेजे, प्रलोभन दिए, दीनता प्रकट की, आत्म-हत्याकी धमकी दी। मगर अगथापर किसीका असर न हुआ। उसने कहा—मैं ब्याह नहीं करूँगी। और इस निश्चयसे वह जरा भी विचलित न हुई। आख़िर प्रेमने शत्रुताका रूप धारण कर लिया। कैंतयानस हाकिम था। एक लड़कीकी इतनी

मजाल कि वह इस तरह उसकी उपेक्षा कर सके! और वह भी ईसाई लड़कीकी! हाँ, वह ईसाई थी और उसे नीचा दिखाना जरा भी मुश्किल न था।

वह अबला इस समय उस दीपकके समान थी जिसके चारों तरफ़ कोई दीवार या कोई ओट न थी। ऐसा दीपक वायुके तेज़ झोकोंसे कबतक बच सकता है?

४

आखिर एक दिन अगथा गिरफ्तार हो गई। अकतानियाके लोग हैरान रह गए। किसीको मालूम न हुआ कि अगथाका अपराध क्या है। बहुतसे लोग कचहरीपर टूट पड़े। उनके दिलमें सहानुभूति थी, पर साहस न था। क्या करते, क्या न करते! अगथा उनके शहरकी शोभा थी। उसने कभी किसीसे बुरा सलूक न किया था, किसीका दिल न दुखाया था। ग़रीब-अमीर सब उसके शुभचिन्तक थे, वैरी कोई भी न था। उसे इस संकटमें देखकर, लोग लोहूके आँसू रोते थे, पर कुछ कर न सकते थे।

अगथा कचहरीमें पहुँची। कैंतयानसने पूछा—तू कौन है? तेरे मा-बाप कौन हैं? तेरा धर्म क्या है?

दर्शकोंके दम रुक गए। वे सोचते थे, कहीं यह लड़की ईसाई तो नहीं। अगर ऐसा हुआ, तो ग़ज़ब हो जाएगा। कैंतयानस कसाई है, वह कभी दया न करेगा। सब आँखें भोली बालिकाके चेहरेपर थीं, मगर वहाँ कोई चिन्ता, आत्मिक वेदनाकी कोई रेखा न थी। उसने गरदन उठाकर उत्तर दिया—मेरा नाम अगथा है। मेरे मा-बाप अकतानियाके निवासी थे। मैं ईसा मसीहकी दासी हूँ।

कैंतयानसके दिलकी मुराद पूरी हो गई। अब जाती कहाँ है? प्रकटमें बोला—क्या तुझे मालूम है कि हमारे देशमें इस अपराधके लिए मौतका दंड दिया जाता है?

अगथाने निःसंकोच-भावसे जवाब दिया—मुझे मालूम है।

कैंतयानस—और तू फिर भी कहती है, मैं ईसाई हूँ? जानती है, इसका परिणाम क्या होगा?

अगथा—सब समझती हूँ, नादान नहीं हूँ। मगर क्या करूँ, धर्म छोड़ना मुश्किल है। जान दूँगी, धर्म न दूँगी।

कैंतयानस—यह निर्भयता मौतको सामने देखकर स्थिर न रहेगी।

अगथा—इसकी भी परीक्षा हो जायगी। अगर मैं मरनेको तैयार नहीं, तो मैं ईसाई होनेके योग्य नहीं।

कैंतयानस—ज़रा समझ-सोचकर जवाब दे, यह जीवन और मौतका सवाल है।

अगथा—सब सोच चुकी। वीरात्माओंके लिए जीवन और मौत दोनों समान हैं।

कैंतयानसको क्रोध चढ़ गया। अगथाके वाक्य बाण थे। उनमें गवर्नरके लिए कितनी घृणा थी, कैसी अवहेलना? कैंतयानसके दिलमें भाले चुभ गए। उसने क्रोधसे होंठ काटे, और सिपाहियोंसे कहा—कैदख़ानेमें ले जाओ, कल फ़ैसला करूँगा।

सारे शहरमें शोर मच गया। लोग कहते थे, यह न्याय नहीं, अंधेर है। कितनी धर्मात्मा लड़की है! उसे देखकर आँखें खुश हो जाती हैं। बोलती है तो मुँहसे फूल झड़ते हैं। क्या अब इसे भी मृत्यु-दंड दिया जायगा?

रातको जब सब लोग सो गए और अकतानियाके गली-कूचे सुनसान हो गए, तो कैंतयानस अपने राज-महलसे निकला और बंदी-गृहको चला, जहाँ उसका जीवन, उसका आत्मा, उसका भावी संतोष बंद था। उसे देखकर, कैदख़ानेके पहरेदारोंने दरवाज़ा खोल दिया, और एक तरफ़ खड़े हो गए। कैंतयानस अन्दर चला गया, और कैदख़ानेके दारोग़ासे बोला—मैं अगथासे मिलना चाहता हूँ।

थोड़ी देर बाद, वह उसकी कोठरीमें था। उस समय कोमलांगी अगथा कैदख़ानेकी वज्र-भूमिपर बेसुध पड़ी सो रही थी, पर उसके चेहरेपर चिन्ता और मलिनताका कोई चिह्न न था। वस्त्र क़ैदियोंके थे, शक्ल-सूरत राजकुमारियोंसे भी बढ़कर थी। सुन्दरताको बुरे कपड़े भी नहीं छिपा सकते। कैंतयानसने कुछ क्षणोंतक लोभी आँखोंसे उसके मुख-कमलकी ओर देखा, और तब आगे बढ़कर और उसके कंधेपर हाथ रखकर धीरेसे कहा—अगथा!

६

अगथा चौंककर उठ बैठी। उसने घबराकर इधर-उधर देखा, और समझ न सकी कि मैं कहाँ हूँ! सहसा उसे उस दिनकी सारी घटनाएँ याद आ गईं। उसने अपने बिखरे हुए बालोंको बाँधा, अव्यवस्थित वस्त्रोंको सँभाला, और वह खड़ी होकर बोली—तुमको क्या अधिकार है कि अकतानियाकी किसी क्वाँरी कन्याके पास इस रातके समय आ सको?

शब्द कठोर थे, पर कैंतयानसको कठोर मालूम न हुए। धीरेसे बोला—मैं तुम्हारे प्रेमका पुजारी हूँ, और पुजारी अपनी उपास्य-देवीके मंदिरमें जब चाहे, आ सकता है।

अगथा यह शब्द सुनकर सहम गई। उसका मुँह पीला पड़ गया। उसकी आँखें निस्तेज हो गईं। वह कोई उत्तर न दे सकी।

कैंतयानसने फिर कहा—अगथा! मैंने तुमसे कितनी बार बिनती की, मुझसे ब्याह कर लो, मगर तुमने हरबार जवाब दे दिया। मैं अकतानियाका गवर्नर हूँ। सिसलीका सम्राट् मुझपर मेहरबान है। मेरे पास धन है। मैं बीमार नहीं हूँ, बदसूरत नहीं हूँ, फिर तुम क्यों नहीं मान जातीं? अगथा! मैं झूठ नहीं कहता, मैं अपने आपको बहुत कुछ समझता था, मगर जिस दिनसे तुम्हें देखा है, उस दिनसे मेरी धारणा बदल गई है। मैं समझता था, मैं गवर्नर हूँ, मेरे हाथमें शक्ति है, जो चाहूँ, कर सकता हूँ। मगर तुम्हारे सामने आता हूँ, तो सारी सत्ता नष्ट हो जाती है। अब मुझपर दया करो, और मुझसे ब्याह कर लो। और मैं आकाशके अमर देवताओंकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि मुझसे कोई ऐसा कर्म न होगा, जिससे तुम्हारा मन दुखनेकी संभावना हो—मैं तुम्हारी पूजा करूँगा, तुम्हारी हरएक आज्ञाका पालन करूँगा।

अगथाने उसकी इस बातको सुना, और उत्तर दिया—मैं इसका जवाब बहुत देर पहले दे चुकी हूँ और आज भी जब कि मेरी स्थिति बदल गई है, और मेरी स्वाधीनतापर तुम्हारे हाथों वज्राघात हो चुका है, मेरा जवाब वही है। तुम्हें जो कुछ कहना था, कह चुके, अब मेरा मंतव्य सुन लो। मुझे मौत मंजूर है, पर तुम्हारे साथ ब्याह मंजूर नहीं। तुम जो कुछ चाहो, कर लो, और तुम देखोगे, मैं किसी भी दशामें तुम्हारे खूनी हाथोंको चूमनेके लिए तैयार नहीं। रातका समय खुदाने आराम और विश्रामके लिए बनाया है। जाओ, आराम

करो, और आराम करने दो। राज्यके अपराधीसे इस समय तुम्हारा क्या काम है?

कैंतयानसका सिर चकराने लगा। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह आत्माभिमानी था। वह हाकिम था। उसने शासन किया था। वह आज्ञा देनेके लिए उत्पन्न हुआ था। उसकी आज्ञाओंका पालन होता था—और आज उसने अपना सिर एक साधारण लड़कीके पाँवपर झुकाया, और उसने उसे घृणासे ठोकर मारकर परे हटा दिया। यह कैसा अनादर था? वह इसे सहन न कर सका। उसने अपना पाँव ज़ोरसे ज़मीनपर मारा, और कड़ककर कहा, तू अपनी मौत बुला रही है। तेरी सुंदरताको मेरी आँखें देखती हैं, जल्लादकी तरवार न देखेगी।

यह कहकर कैंतयानस बाहर निकल गया, और अपने पीछे उस काल-कोठरीका दरवाज़ा बंद कर गया। यह एक झूठे पुरुषका झूठा प्रेम था, जो परीक्षा-अग्निकी एक आँच भी नहीं सह सकता, और क्रोधका विकराल रूप धारण कर लेता है। विशुद्ध प्रेम कभी क्रोध नहीं करता, न बदला चाहता है। वह आप कष्ट उठाता है, मगर अपनी प्रेमिकाकी आँखमें आँसू नहीं देख सकता। कैंतयानसने दूसरे दिन हुक्म दिया—अगथाको कष्ट दिया जाए।

६

लोगोंके होश उड़ गए। सारे शहरमें कोलाहल मच गया। अब तक पुरुष मरते थे, अब स्त्रियोंकी बारी आगई। कचहरीके बाहर खुले मैदानमें अकतानियाके निवासी इकट्ठे थे कि देखें क्या होता है? चारों तरफ़ पुलिसके आदमी थे कि कहीं बलवा न हो जाय। बीचमें अगथा

खड़ी थी, और लोगोंसे कह रही थी—मैं भाग्यवान हूँ, जो मुझे यह मौत नसीब हो रही है! हरएकको यह सुनहरा अवसर प्राप्त नहीं होता। यह साधारण मौत नहीं, शहीदोंकी मौत है, जो जीवन और जीवनके सुखोंसे भी बढ़कर है। इससे जातियाँ उन्नत होती हैं, धर्म अमर-पथपर चलते हैं। आदमी अपनी मौत हर रोज़ मरते हैं, शहीदोंकी मौत कोई कोई भाग्यवान् ही मरता है। क्या तुम जानते हो, मैंने कोई पाप किया है?

लोगोंने एक स्वरसे चिल्लाकर कहा—तू निर्दोष है।

अगथा—तो इससे बढ़कर खुशी और क्या हो सकती है कि मैं अपने धर्मकी वेदीपर कुरबान हो रही हूँ और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी मौत मेरे धर्मके भाईयोंमें कभी भी न मरनेवाला जीवन छिड़क देगी।

एकाएक जन-समूहमें हलचल मच गई। कैंतयानस आ रहा था। लोगोंके दिल दहल गए। कैंतयानसने अगथाके निकट जाकर कहा—अगर तू अब भी ईसाई-धर्मका त्याग कर दे, और हमारे जिन्दा देवताओंके सामने चलकर प्रायश्चित्त कर ले, तो मैं तुझे बरी कर दूँगा।

लोग डर गए, मगर अगथा उसी तरह अभय खड़ी थी। उसने ऊँची आवाज़से कहा—मैं अकतानियाके इस महान् जन-समूहमें ऊँचे स्वरसे कहती हूँ, कि मैं ईसाई हूँ, और चाहे तुम मेरे एक हाथपर चाँद और दूसरेपर सूरज रख दो, मैं तब भी अपना धर्म बदलनेको तैयार नहीं।

जो ईसाई थे, वे खुश हुए; जो ईसाई नहीं थे, वे हैरान हुए;

मगर कैंतयानस क्रोधसे पागल हो गया। उसने अपने सिरको ज़ोरसे हिलाया, और हुक्म दिया—शिकंजा लाओ।

शिकंजा लाया गया। यह लोहेका नहीं, मौतका शिकंजा था। उसे देखकर, दर्शकोंके दिल धड़कने लगे, मगर अगथा बेपरवा खड़ी हुई उस यन्त्रकी ओर देखती रही। फिर वह हँसती हुई आगे बढ़ी, और अपने कोमल हाथ-पाँव मौतके मुँहमें डाल दिए। कैसा साहस था, कैसा हृदय, जो मौतके सामने भी भय-भीत नहीं हुआ! उसे यन्त्रणाकी चिन्ता न थी, मरनेकी चिन्ता न थी। उसे केवल धर्म-रक्षाकी चिन्ता थी। यह एक अबलाकी परीक्षा न थी, यह अगथाकी परीक्षा न थी, यह धर्मकी परीक्षा थी, जिसकी कसौटी मृत्युकी आगके सिवाय और कोई नहीं है। शिकंजा कसा गया, उसके अगणित कील अगथाके कोमल शरीरमें चुभ गए। हड्डियाँ टूट रहीं थीं, रुधिर बह रहा था, लोग रो रहे थे, मगर अगथाकी आँखमें पानी न था, न जीभपर आहका शब्द था। वह उसी तरह सतेज, उसी तरह दृढ़ खड़ी थी।

कैंतयानसने यह अभूत-पूर्व धैर्य देखा, तो उसे और भी आग लग गई। उसने हुक्म दिया—शिकंजा खोल दो, और इसे ज़िंदा आगमें जला दो। यह जादूगरनी है।

आग जलाई गई, और इसके साथ ही अकतानियाके हज़ारों दिलोंमें आगकी ज्वाला उठने लगी। कैंतयानस बाहरकी आग देखता था, और खुश होता था, मगर उसकी अन्धी आँखें दिलोंकी उस आगको न देखती थीं, जो विधाताने उसकी आगके मुक़ाबिलेमें जलाई थी। आग प्रचंड हुई, तो अगथाके गोरे सुन्दर हाथ-पाँओंको

लोहेकी जंजीरोंसे बाँधा गया। अब दर्शकोंके दिलकी आग उनकी आँखोंमें आ गई थी, मगर कैंतयानसकी आँखें इस ओरसे अभीतक बंद थीं। वह दुनियाको दिखाना चाहता था कि आदमी अन्धा होकर कितना नीचे जा सकता है? उसने कुछ सोचा, और फिर कहा—इस पापिनीको इस आगके ऊपरसे घसीटो।

कितना भयानक दंड था, जिसकी कल्पनासे ही देहका ख़ून सर्द हो जाता है! मगर अगथा अब भी शान्त थी। एकाएक जल्लादोंने उसे आगके ऊपरसे घसीटना शुरू कर दिया। आगकी ज्वाला उठी, जैसे कोई किसीका स्वागत करनेको खड़ा हो जाय। उसके कपड़े देखते-देखते जल गए। अब वह नंगी थी। अकतानियाकी सबसे ख़ूबसूरत, सबसे लज्जावती क्वाँरी कन्याकी यह बेपरदगी देखकर लोग सहन न कर सके। उनका ख़ून खौलने लगा, वे होंठ काटने लगे। अगथा जल रही थी, शीशेके छोटे छोटे टुकड़े उसके सुकोमल शरीरमें चुभ रहे थे, ख़ूनके क़तरे आगपर गिरकर जल रहे थे, और परमात्माका न्याय यह सब कुछ चुपकी आँखसे देख रहा था।

सहसा एक आदमीने आगे बढ़कर कहा—अकतानिया-निवासियो! तुमको लज्जासे डूब मरना चाहिए। यह राक्षस कैंतयानस, यह नर-पिशाच कैंतयानस, तुम्हारे शहरके गौरवको पाँवतले मसलता है, तुम्हारी युवती क्वाँरी कन्याको भरे मैदानमें नंगा करता है, उसे बिना किसी अपराधके ज़िन्दा आगमें जलाता है, और तुम सामने खड़े मुँह देखते हो। अगर तुम मर्द हो, अगर तुम्हारी नसोंमें लहू, और लहूमें जीवनकी आग है। अगर तुम्हारे सीनोंमें दिल, और

दिलमें जातीय प्रेम है। अगर तुम सभ्य हो, और सभ्यताका लेश-मात्र भी तुममें बाक़ी है, तो इस ख़ूनी भेड़िएको ज़िन्दा न जाने दो।

दर्शक आगे बढ़े। कैंतयानसने हुक्म दिया—पकड़ लो, यह विद्रोही है।

मगर समय पूरा हो चुका था, सिपाही भी बाग़ी हो गए। उन्होंने हथियार फेंक दिए और कहा—हमसे यह न होगा।

लोगोंका उत्साह बढ़ गया। अब पुलीस भी उनके साथ थी। उन्होंने पुलीसके फेंके हुए हथियार उठा लिए, और ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगे—कैंतयानसको जला दो। अगथाको आगसे निकाल लो। ईसाई होना पाप नहीं है।

कैंतयानस यह देखता था, और ठंडी साँस भरता था। वह जान छिपाता फिरता था। कहाँ जाय? किधर भागे? उसे कोई आश्रयका स्थान नज़र न आता था। समय कितनी जल्दी बदलता है! अभी हाकिम था, अभी मुजरिम बन गया। वह डरता था कि अगर पकड़ा गया, तो लोग बोटियाँ नोच लेंगे। वह ख़ुद दया-हीन था, उसे किसीसे दयाकी आशा न थी। वह अपने महलकी ओर नहीं गया, किसी यार-दोस्तके पास नहीं गया। वह नदीकी ओर भागा और एक मल्लाहकी नावमें बैठकर उससे बोला—मुझे पार उतार दे, मैं तुझे मालामाल कर दूँगा।

मल्लाहने उसे पहचान लिया और डर गया। उसे शहरका हाल मालूम न था। उसने नाव पानीमें डाल दी, और खेने लगा। कैंतयानसने शान्तिकी साँस ली, और समझा कि प्राण बच गए। लोग किनारेपर खड़े देखते थे कि उनका शिकार हाथसे निकला जाता

है, और मल्लाहको गालियाँ देते थे। मल्लाह समझता न था कि मामला क्या है। और कैंतयानस खुश हो रहा था। लोग किनारेसे निराश होकर लौट गए। मगर कर्म-फलने उसका पीछा न छोड़ा। उसकी राहमें कोई नदी न थी।

साँझका समय था। चारों ओर सन्नाटा था। कोई शब्द सुनाई न देता था, कोई शक्ल-सूरत दिखाई न देती थी। ऊपर नीला आसमान था नीचे नदीका मैला पानी, और इन दोनोंके बीचमें एक नाव पापका भार उठाए धीरे-धीरे उस पार जा रही थी। मगर पापके लिए जीवनका तीर कहाँ है? उस नावपर दो घोड़े भी थे, वह दुलत्तियाँ झाड़ने लगे। देखते-देखते नाव उलट गई, और कैंतयानस उसकी मृत्यु-तुल्य लहरोंमें समा गया। मल्लाह और घोड़े बच गए। नाव भी पानीपर तैर रही थी, केवल कैंतयानसकी लाशका पता न था। वह सोचता था, नदी पार उतरकर घोड़ेपर सवार हो जाऊँगा। मगर उसे क्या पता था कि उनमेंसे एक घोड़ा ही उसका काल बन जायगा। वह अकतानियाकी आगसे निकल आया था, परंतु परमात्माके पानीके प्रवाहसे न बच सका। कितना बड़ा आदमी था, और कैसी शोचनीय मृत्यु, जिस पर कोई शोक मनानेवाला भी न था।

उधर अकतानियाके लोग अगथाके गिर्द जमा थे, और श्रद्धाके आँसू बहा रहे थे। परंतु अगथा कहाँ थी? उसे लोगोंने आगके मुँहसे बचा लिया था, मगर मृत्युके मुँहसे न बचा सके। बहुत देर बेसुध रहनेके बाद उसने आँखें खोलीं और एक बार अपने चारों ओर इस तरह देखा, जैसे कोई देवी अपने भक्तोंको देखती है, और फिर सदाके लिए आँखें बंद कर लीं।

जीवन और मृत्यु

१

हसन इकबाल

कितना ज़माना गुज़र गया मगर आज भी वे दिन कलकी तरह याद हैं। जवानीके वे सुनहरे दिन, बहारके वे खुशरंग फूल, उम्मीदोंके वे दिलकश नज़ारे आज जाने कहाँ छिप गए! दुनियाके तौर-तरीक़े उसी तरह जारी हैं, उमंगोंके बाग़ आज भी अपनी जादू-भरी हवाओंसे जवानीके खूनको गरमा रहे हैं। मगर मेरे लिए, और मेरे दिलके लिए उनमें कोई गरमी, कोई संदेसा नहीं।

मैं और जहानआरा बचपनमें एक साथ खेले हैं। कैसे अजीब दिन थे, जब शरम-हयाकी बेड़ियाँ पाँवमें न पड़ी थीं। जहानआरा हुस्न और नज़ाकतकी पुतली थी; उसे देखकर मेरा दिल खुशीसे नाचने लग जाता था। मैं चाहता था, उसे कलेजेमें बिठा लूँ। मैं उसे सदा देखना और देखते रहना चाहता था। अकेला होता, तब भी उसीका ध्यान रहता। मुझे उससे मुहब्बत थी। यह मुहब्बत दुनियाकी हिर्स और हवाकी मुहब्बत न थी, न यह मुहब्बत कुछ दिनोंके बाद बदल जानेवाली, मिट जानेवाली मुहब्बत थी, जो बर्साती नालेकी तरह कभी उमड़ आती है, कभी बिलकुल खुश्क हो जाती

है। यह खरी असली, सच्ची, मुहब्बत थी, जिसके चश्मे बारह महीने जारी रहते हैं, और जिसे सूरजकी सारी गरमी भी सुखाना चाहे, तो नहीं सुखा सकती। यही सबब है कि जहानआरा आज भी, जब कि दुनियाकी अनजान आँखें उसे देखनेसे क़ासिर हैं, अपने जोबनकी पूरी शान-शौकतसे मेरे सामने है, और मेरी नींद और बेदारी दोनोंपर हुकूमत कर रही है।

२

बचपनका ज़माना था, दुनियादारीकी दोनोंको ख़बर न थी। ईर्द-गिर्दके हालसे बेख़बर, मा-बापकी मरज़ीसे बेपरवा, प्यार-मुहब्बतकी घाटियोंमें बढ़े जाते थे, और हमें इस बातका ज़रा ध्यान भी न था कि यह यात्रा कहाँ खतम होगी। उस मुसाफ़िरकी तरह, जो आँखों-पर पट्टी बाँधकर दौड़ता जाय, और यह न सोचे, न सोचनेकी ज़रूरत समझे कि रास्तेमें नदी-नाले पड़ते हैं, या काँटोंवाली झाड़ियाँ खड़ी हैं। मगर मैं ग़रीब था, और मेरी जहानआरा अमीर बापकी बेटी थी। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ने लगी, यह ख़लीज, जो बचपनके पहाड़ोंमें पानीकी पतली-सी लकीर थी, फैलने लगी। यहाँ तक कि जवानीके मैदानमें पहुँचते-पहुँचते यही पानीकी मामूली धार एक दरियाकी सूरतमें तबदील हो गई। इधर मैं खड़ा था, उधर जहान-आरा खड़ी थी, और बीचमें गहरे पानीकी खौफ़नाक मौजें गरजती थीं। अब हमारी आँखें खुलीं, अपनी हिमाक़तपर पछताने लगे। पहले पता होता, तो यहाँ तक नौबत न पहुँचती। पहले प्यार बढ़ा था, अब प्यारकी चिंता बढ़ने लगी।

प्यार और खाँसी छिपाए नहीं छिपते। जब तक बच्चे थे, किसीने

ख़याल न किया। जवान हुए, तो हमारी अपनी ही आँखोंने राज़ खोल दिया। कुछ दिनों यह मज़मून लड़के-लड़कियोंका दिलपसन्द मशग़ला बना रहा, इसके बाद बड़े-बूढ़ोंके कानों तक जा पहुँचा। नतीजा यह हुआ कि जहानआराका बाहर निकलना बंद हो गया। मुझपर पहाड़ टूट पड़ा। चारों तरफ़ घबराया-घबराया फिरता था। न दिनका आराम रहा, न रातकी नींद। अब नाउम्मीदी थी, या ठंडी आहें थीं, या गरम आँसू थे। कुछ ही दिनमें सेहत ख़राब होने लगी। पानी न मिलनेसे पौधे मुरझाएँगे न तो और क्या होंगे?

मेरे मा-बाप मुझसे नाराज़ थे। कहते, तूने हमें कहीं मुँह दिखानेके लायक़ नहीं रक्खा। ख़ूबसूरती देखी, अपनी हैसियत न देखी। ब्याह-शादियोंके रिश्ते बराबरवालोंमें हुआ करते हैं। हमारा उनका क्या मेल? इसलिए जब मेरी सेहत बिगड़ने लगी, तो उन्होंने परवा न की। मगर जब हालत ज़्यादा ख़राब होने लगी, तो उनको भी फ़िक्र हुई। मा-बाप बच्चेके रोने और रूठनेकी परवा करें या न करें, लेकिन उसे घरसे बाहर निकलते देखकर उनका दिल ठिकाने नहीं रहता। एक दिन मेरा बाप बहुत देरतक मुझे समझाता रहा। मगर पागल और प्रेमीको कौन समझाए? मेरे दिलपर ज़रा भी असर न हुआ। आख़िर हारकर बोले—अच्छा, तू यह मानता है या नहीं कि हम ग़रीब हैं?

मैंने आहिस्तासे सिर झुकाकर जवाब दिया—हाँ, मानता हूँ।

बाप—और उसका बाप अमीर है, चाहे तो हमें ख़रीद ले।

मैं—पता नहीं।

बाप—पता नहींका बच्चा! देखता है, और फिर भी अन्धा

बन रहा है ? हमारी उनके रूबरू हक़ीक़त ही क्या है ? अपनी तरफ़ नहीं देखता, चला है इश्क़ करने । नासिरअली बड़ा ज़ालिम आदमी है । अगर उसे .गुस्सा चढ़ गया, तो कोई इलज़ाम लगाकर सारे घरको बँधवा देगा । वह तो जानो, पड़ोसी होनेका लिहाज़ कर रहा है । भला चाहे, तो उसका ध्यान छोड़ दे ।

मैं—आप तो यों ही .गुस्सेमें आ जाते हैं । मुझे उसका ज़रा भी ख़याल नहीं ।

बाप—ख़याल कैसे नहीं ? सारे शहरमें मिट्टी उड़ रही है । बेईमान कहींका ! कहता है, मुझे उसका ख़याल नहीं ।

मैं—अब आप न मानें, तो मै क्या कर सकता हूँ ?

बाप—उसका ख़याल दिलसे निकाल दे, और समझ ले कि यह रिश्ता कभी न होगा, झगड़ा ख़तम ! (पुचकारकर) बेटा ! तूने मेरा कहा आजतक नहीं टाला । मुझे तुझपर हमेशा नाज़ रहा है । तू यह झगड़ा क्या ले बैठा ?

मैं—बहुत बेहतर ! मै आजसे उसका नाम भी लूँ तो जूते मारकर घरसे निकाल देना ।

बाप—शाबाश ! मुझे यही उम्मीद थी । मगर कोई ख़त-वत न लिख बैठना । पकड़ा गया, तो बड़ी बुरी बात होगी । उसका बाप बड़ा ज़ालिम है ।

मैं—हुआ करे । यहाँ फ़ैसला कर चुके कि उसका नाम भी न लेंगे ।

बाप—तो मैं अब बेफ़िक्र हो जाऊँ ?

मैं—पूरे तौरपर ।

बाप—बेटा ! ऐसे कामोंमें हमेशा बदनामी होती है ।

मैं—आप बजा फ़र्माते हैं।

बाप—ख़ुदा तुझे हिदायत दे।

मैं—अब आपको शिकायतका मौक़ा न मिलेगा।

मेरे बापने मुझे गलेसे लगा लिया, और रोने लगा। मेरी आँखोंमें भी आँसू आ गए; मगर जहानआराका ख़याल दिलमें उसी तरह मौजूद था।

३

जहानआरा

अब कई-कई दिन बीत जाते हैं, और मुलाक़ात ही नहीं होती। ख़ुदा इस दौलतको ग़ारत करे, मुहब्बतके बीचमें खड़ी है, और हँसती है। मगर मुझे इसपर रोना आता है। मैं चाहती हूँ, कोई इस रुपए-पैसेको आग लगा दे, फिर तो अमीरी-ग़रीबीका सवाल ही न उठेगा। अम्माजानने भी ग़ज़ब किया, अब्बाजानसे साफ़-साफ़ ही कह दिया। अब वह उनकी जानके दुश्मन बने फिरते हैं। मालूम होता है, उनको भी ख़बर मिल गई है, इसीसे इधरसे गुज़रना छोड़ दिया है। पहले हर रोज़ आते थे, अब कई दिनसे नहीं आए। सोचते होंगे, कहीं बात न बढ़ जाय। थुड़ी-थुड़ी होने लगेगी।

लेकिन यह जुदाई कैसे सहूँ? मुहब्बत और सब कुछ सह सकती है, पर जुदाई सहनी मुश्किल है। मेरी आँखोंमें दुनिया अँधेरी हो गई। कोई भी चीज़ अच्छी मालूम न होती थी; न मीठी, न नमकीन। बीमारीमें मुँहका ज़ायका ही बदल जाता है।

सोच-सोचकर मैंने चोरीसे मिलनेका इरादा किया। कोई मुझे बुरा-भला न कहे, यह क़ुदरती था। पानी सीधा रास्ता बंद पाता है, तो इधर-उधरका रुख़ अख़्तियार कर लेता है। मैंने अपने दिलके साथ

कई दिन तक कशमकश की, मगर मुहब्बतने मा-बापके खौफ़ और बदनामीके भूत, दोनोंका पछाड़ दिया। मैंने अपनी सहेली ख़दीजासे कहा—जैसे भी हो, अपने यहाँ मुलाक़ात करा दो; नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

ख़दीजाके ख़ाविंद मियाँ हलीम और मेरे बापसे बहुत अच्छे ताल्लुक़ात थे। ख़दीजाका भी हमारे यहाँ काफ़ी आना-जाना था। उसपर हमारे घरवालोंको कभी शक न हो सकता था। ख़दीजाने मेरी तज़वीज़ सुनी, तो डर गई। उसे अन्देशा था कि अगर किसीको इस मुलाक़ातका हाल माल्रूम हो गया, तो मैं भी बदनाम हो जाऊँगी। लेकिन मेरे आँसुओंने उसका मुँह बन्द कर दिया, हारकर रज़ामन्द हो गई। दूसरे दिन उसके मकानपर हमारी मुलाक़ात हुई।

मैंने उन्हें देखा, तो डर गई। आदमी इतनी जल्दी इतना बदल सकता है, यह मैंने कभी न सोचा था। न आँखोंमें वह शोख़ी थी, न होठोंपर वह हँसी। मुद्दतोंके बीमार माल्रूम होते थे। उन्होंने आते ही मुझे गलेसे लगा लिया, और फूट-फूटकर रोने लगे। मेरा दिल भी बे-अख़्तियार हो गया; मगर मैंने अपनी आँखोंको बे-अख़्तियार न होने दिया, और प्यार-भरे लहजेमें कहा—वाह! क्या शक्ल-सूरत निकाली है!

उन्होंने मेरी तरफ़ देखा, और ठंडी आह भरकर जवाब दिया, जहानआरा! यह सवाल मुझसे न पूछो, अपने दिलसे पूछो। मुझे ख़्वाबमें भी ख़याल न था कि हम इस तरह बेगाने हो जायँगे। शुकर है, तुम्हारी सूरत तो नज़र आई।

मैं—बड़ी दिक़्क़तोंसे आई हूँ। अगर अब्बाजानको माल्रूम हो

जाय, तो गरदन ही उड़ा दें।

इक़बाल—बस-बस। ऐसी मनहूस बात मुँहसे न निकालो। मैंने भी बापसे वादा किया कि इधरको रुख भी न करूँगा। और देख लो (हँसकर) वादा पूरा कर रहा हूँ!

मैं—तुम्हारा रंग-रूप ही बदल गया, पहचाने नहीं जाते। कुछ बीमार हो क्या? किसी हकीमको दिखाओ, बेपरवाही ठीक नहीं।

इक़बाल—मेरी दवा सिर्फ़ एक आदमीके पास है; मगर वह देता नहीं।

मैं—अरे ऐसा संगदिल कौन है?

इक़बाल—खानसाहब नासिरअलीका नाम तो तुमने सुना ही होगा?

मैं—(शर्माकर) जाओ तुम तो मज़ाक करते हो! मैं कहती हूँ, तुम्हें हो क्या गया है?

इक़बाल—पहले अपना मुँह शीशेमें देख लो, फिर मुझे कहना।

मैं—तुम इतनी फ़िक्र काहेको करते हो?

इक़बाल—यही सोचता हूँ कि अब क्या होगा?

मैं—जो .खुदाको मंजूर है, हो जायगा। इस तरह रोने-धोनेसे हासिल ख़ाक न होगा, सेहत भी खो बैठोगे।

इक़बाल—जहानआरा, मुझे अपना आइंदा ज़माना बिलकुल अँधेरा दिखाई देता है। मेरे दिलमें कोई कह रहा है, हमारी मुहब्बतका अंजाम अच्छा न होगा। तुम अमीर बापकी बेटी हो, मैं ग़रीब आदमीका लड़का हूँ।

मैं—अगर कोई मुझसे पूछे, तो साफ़ कह दूँ कि मुझे रुपये-पैसेकी ज़रा भी परवा नहीं, मुझे तुम्हारी परवा है।

इक़बाल—और तुम्हारे बापका बस चले, तो मुझे आज ही गोलीसे उड़ा दे।

मैं—दुनिया अंधी है, रुपया-पैसा देखती है, मुहब्बत नहीं देखती। अच्छा, मुझे यह तो बताओ, क्या बूढ़े कभी जवान न थे, जो जवानोंके दिलको नहीं समझते?

इक़बालने बेबसीसे कहा—जहानआरा, तुम मुझसे छीनी जा रही हो। मैं सामने खड़ा अपने दिलकी यह बरबादी देखता हूँ, और कुछ कर नहीं सकता। जी चाहता है ज़हर खा लूँ।

मेरे सीनेमें जैसे किसीने तीर मार दिया, आँखोंमें पानी आ गया। लेकिन मैंने हौसलेसे कहा—तुम मर्द होकर ऐसी बातें करोगे, तो मेरा क्या हाल होगा? यों जान देना बुज़दिली है। बहादुर बनो।

उन्होंने मेरी तरफ हैरानीसे देखा, और कहा—जहानआरा, तुम्हारा क्या मतलब है?

मैं—कमर कसो, रुपया पैदा करो, फिर देखती हूँ, हमारे रास्तेमें कौन खड़ा होता है?

इक़बाल—मगर तुम्हारा बाप मेरा इन्तज़ार न करेगा। तुम जवान हो, तुम्हारा बाप अमीर है, और दुनियामें अमीर बापकी .ख़ूबसूरत बेटीसे ब्याह करनेवालोंकी कमी नहीं।

मैं—मैं साफ़ कह दूँगी कि मुझे यह ब्याह मंज़ूर नहीं। कोई बाँधके थोड़े ही कर देगा।

इक़बाल—तुम बड़ी भोली हो! क्या तुम्हारा बाप यह बर्दाश्त करेगा कि वह तुम्हारा ब्याह करना चाहे, और तुम इनकार कर दो?

मैंने आँसू-भरी आँखोंसे उनकी तरफ़ देखा, और पूछा, "क्या

ज़बरदस्ती ब्याह देंगे ?"

इक़बाल—अगर ब्याह दें, तो उनको कौन रोक सकता है ? कोई भी नहीं।

मैं रोने लगी। मैं चारों तरफ़ देखती थी, मगर मुझे बचावका कोई तरीक़ा नज़र न आता था। इस अथाह अँधेरेमें रोशनीकी किरन कहाँ थी ? मैंने उनकी तरफ़ देखा। वह भी रो रहे थे। मेरा रहा-सहा सब्र-क़रार भी जाता रहा।

४

इतनेमें दरवाज़ा खुला, और ख़दीजा और उसका शौहर हलीम अन्दर आए। हम दोनों घबरा गए। मैं बुर्क़ा ओढ़कर एक कोनेमें दबक गई, उनके चेहरेपर पसीना आ गया। मगर हलीमने हमें तसल्ली देते हुए कहा, मैं तुम्हारा ख़ैरख़्वाह हूँ, दुश्मन नहीं। हौसला रक्खो।

हमारी जानमें जान आई। हलीमने उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—औरतोंकी तरह रोना बेफ़ायदा है। तुम इधर रोते रह जाओगे, उधर ब्याह हो जायगा। इश्क़बाज़ी बच्चोंका खेल नहीं, जानबाज़ीका मैदान है। कोशिश करो, कुछ करके दिखाओ, फिर देखता हूँ, किसमें हिम्मत है कि जहानआराकी तरफ़ आँख उठाकर भी देख जाय।

ना-उम्मीदीमें उम्मीदका नाम भी बहुत कुछ होता है। मियाँ हलीमकी बात सुनकर उनका चेहरा चमकने लगा। बोले—क्या करके दिखाऊँ ?

हलीमने मुस्कराकर कहा—अमीर बाप अपनी बेटी किसी

ग़रीबको क्यों दे? ब्याह-शादियोंके रिश्ते बराबरवालोंमें होते हैं। इस वक़्त दो सूरतें तुम्हारी शादीकी हैं। एक तो यह कि नासिरअली ग़रीब हो जाए, दूसरी यह कि तुम अमीर हो जाओ। पहली सूरत तुम भी पसन्द न करोगे, दूसरी सूरतका तुमपर दार-मदार है। जहानआरा हसीन लड़की है, उसके हाथका हक़दार वही हो सकता है, जो बहादुर हो, और कुछ करके दिखा सके। क्या तुममें हिम्मत है?

उन्होंने सिर ऊँचा करके जवाब दिया, हिम्मत तो है, मगर ख़तरा यह है कि कहीं खानसाहब ब्याह ही न कर दें। सारी उम्र रोता रहूँगा। कैसी आफ़त है, मैं मौक़ा चाहता हूँ, मुझे मौक़ा नहीं मिलता।

हलीम—मौक़ा मैं दिला दूँगा।

इक़बाल—क्या मतलब?

हलीम—वे मेरा कहना कभी न टालेंगे। मैं रज़ामन्द कर लूँगा।

उम्मीदके ख़यालने उनका चेहरा रोशन कर दिया, बेसब्रीसे बोले, कितनी मुद्दतके लिए?

हलीम—अब यह क्या कह सकता हूँ? दो-तीन सालसे ज़्यादा न मानेंगे। तुम कितनी मोहलत चाहते हो?

इक़बाल—तीन साल दिला दीजिए। इस बीचमें कुछ न कुछ करके दिखा दूँगा।

हलीम—मगर तुमने कुछ सोचा भी है, या यों ही पागलोंकी तरह हवामें क़िले बना रहे हो? फिर कहोगे, तीन सालमें होता ही क्या है? पहले सोच लो, फिर बोलो। मैं अभी जाकर फ़ैसला किए आता हूँ।

उनका चेहरा उम्मीदकी रोशनीसे रोशन था, बोले—जो सोचता

था, सोच चुका। तीन साल बहुत हैं, आदमी चाहे तो पहाड़ उलट दे। आप इतनी मोहलत दिला दें, तो सारी उम्र दुआएँ देता रहूँगा।

हलीम चला गया। थोड़ी देर बाद लौटा, तो चेहरा कामयाबीकी खुशीसे चमक रहा था। आते ही बोला, खाँसाहब बड़े .गुस्सेमें थे। कुछ मानते ही न थे। पर मैंने रज़ामंद कर लिया। कहते हैं, तीन साल तक शादी न करेंगे।

ख़दीजाने झुककर मेरे कानमें कहा—शीरनी खिलाकर जाना, मैदान फ़तह हो गया।

मैंने दोनों हाथ उसकी पीठपर मारे, और कहा—बड़ी बुरी हो तुम! मज़ाक़ करते शरम नहीं आती?

हलीम—मगर एक शर्त भी है।

इक़बाल—फ़रमाइए।

हलीम—ख़त-किताबत न हो सकेगी।

इक़बाल—बड़ी टेढ़ी शर्त है। मेरा दिल न मानेगा। ख़त आता-जाता रहता, तो हिम्मत बनी रहती। मगर ख़ैर, यह भी मंज़ूर।

हलीम—कहते हैं, अगर मेरे कानमें भनक भी पड़ गई कि यह शर्त टूटी है, तो मैं जहानआराको फ़ौरन् ब्याह दूँगा।

इक़बाल—बहुत अच्छा, न लिखेंगे। जहाँ और सदमे हैं, एक यह भी सही।

मगर मुझे पूरी उम्मीद थी कि वह ख़त लिखना कभी बंद न करेंगे।

५

दूसरे दिन वह चले गए। कहाँ? यह किसीको भी मालूम न था। मुझपर पहाड़ टूट पड़ा। अब दुनियामें मेरा कोई भी न था।

यहाँ तक कि मेरे मा-बाप भी अपने न थे। अकेली बैठी रोया करती थी। जवानीके वे रंगीन नग़मे, बहारके वे क़हक़हे न-मालूम नाउम्मीदीके किस गोशेमें गुम हो गए! मेरे लिए गरमीकी दुपहरियाँ और सरदीकी रातें थीं, जो काटे नहीं कटतीं। इसके सिवा मेरे लिए कुछ भी न था। इस उम्रमें लड़कियोंको कितनी ही खुशियाँ होती हैं, मुझे एक भी न थी। अक्सर सोचा करती, वह कहाँ होंगे? क्या करते होंगे? इस लंबी-चौड़ी दुनियामें उनका अपना कौन है? कब लौटेंगे? और किस हालमें लौटेंगे? अपने अज़ीज़ोंके बारेमें हमारे दिलमें बुरे-बुरे ख़याल आया करते हैं। मेरे दिलमें ख़याल आता, परदेसमें बीमार न हो जाएँ, कौन इलाज करेगा? कौन दवा देगा? बेपरवा हैं, अपना ख़याल ही नहीं किया करते। फिर क्या होगा? इसके आगे मैं न सोच सकती। नाउम्मीदीके अँधेरेमें ख़यालकी आँखें भी नहीं देख सकती।

इसी तरह फ़िक्र चिन्ताके छः महीने बीत गए, उनका कोई ख़त न आया। न मालूम हुआ कि कहाँ हैं, और क्या करते हैं? उनके मा-बाप भी रोया करते थे; मगर मैं तो पागल-सी हो गई। हररोज़ सोचती, आज ख़त आएगा, मगर कोई ख़त न आता। ख़दीजा कहती थी, तू तो पागल हो गई है। अगर चिट्ठी नहीं आई, तो क्या हुआ? तुझे भूल थोड़े गया है। सोचता होगा, चिट्ठी पकड़ी गई, तो सारी मेहनतपर पानी फिर जायगा। मगर इन बातोंसे मुझे इतमीनान न होता था। अन्दर ही अन्दर घुलने लगी।

यरक़ानकी तरह इश्क़ भी पोशीदा नहीं रहता। उसका रंग बोलता है। मेरी हालत भी किसीसे पोशीदा न थी। मा-बाप दोनों देखते

थे, और कुढ़ते थे; पर मुझसे कुछ कहते न थे। शायद डरते थे कि कुछ कहा, तो सामने बोलने लगेगी। जवान लड़की है, कहीं आँखोंका पानी न मर जाय। मगर वे ग़ाफ़िल न थे। एक दिन मालूम हुआ, मेरे निकाहका फ़ैसला हो गया है; कोई इंजीनियर हैं, उनके साथ। मैं सन्नाटेमें आ गई। मुझे यह गुमान भी न था कि मेरे मा-बाप मुझसे दग़ा करेंगे। मैं चारपाईपर लेट गई, और फूट-फूटकर रोने लगी।

लेकिन रोनेसे क्या होता था? मैं दौड़ी-दौड़ी ख़दीजाके घर गई, और उससे बोली—देखती हो, क्या अंधेर होनेवाला है! वह कहीं दुनियाके धक्के खाते फिरते होंगे, यहाँ निकाहकी तैयारियाँ हो रही हैं! तीन सालका इक़रार किया था, अभी तो छः ही महीने गुज़रे हैं।

ख़दीजाने ठंडी आह भरकर सिर झुका लिया।

मेरी आँखोंसे आगके शरारे निकलने लगे, तलमलाकर बोली—तो क्या तुम बिलकुल ही चुप रहोगी? जाकर उनसे कहो, अब्बाजानसे मिलें और यह फ़ितना यहीं दबा दें।

ख़दीजाने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—उन्होंने सब कुछ कहा है, मगर तुम्हारा बाप नहीं मानता। कहता है, मैंने इक़रार न किया था, उसे टाला था। अब यह मौक़ा मिला है, इसे न खोऊँगा।

मैं तीरकी तरह तनकर खड़ी हो गई, और बोली—तो अब मुझे ही बोलना पड़ेगा। निकाहके वक़्त मुँह फाड़कर कह दूँगी, मुझे यह रिश्ता मंज़ूर नहीं। समझते होंगे, लड़की है, क्या कर लेगी? यह मालूम नहीं, मुहब्बत और गुस्सा सब कुछ कर सकते हैं। किसीको मुँह दिखानेके क़ाबिल न रहेंगे।

मगर कहने और करनेमें बड़ा फ़र्क़ है, मुझसे कुछ भी न हो सका। वह नाजुक वक्त आया और गुज़र गया, और मेरी ज़बान न खुल सकी।

निकाह हो गया।

६

हसन इक़बाल

मैं कलकत्ते पहुँचा। इस वक्त तक मैंने ज़रा भी न सोचा था कि वहाँ जाकर क्या करूँगा। सोचता था, पहले कलकत्ते पहुँच लें, फिर देखेंगे, क्या होता है। इतना बड़ा शहर है, क्या मेरे ही नसीबोंको आग लगी है? मैं नहीं कह सकता; इसकी वजह क्या थी; मगर मेरा दिल उम्मीदोंसे भरा था। मुझे यक़ीन हो गया था कि मैं कामयाबीके रास्तेपर चल रहा हूँ। पर कलकत्ते पहुँचकर दिल बैठ गया। ख़याल आया, इस पुर-रौनक़ शहरमें सभी बेगाने हैं, अपना कोई भी नहीं। सारे दिन शहरमें घूमता रहा, पर बिजलियों और रोशनियोंके इस बड़े शहरमें मेरे लिये अँधेरेके सिवाय कहीं जगह न थी। यहाँ तक कि रातके नौ बज गए। अब मैं घबराने लगा, कहाँ जाऊँगा? रातको कहाँ रहूँगा? मेरा दिमाग़ काम न करता था। परदेसमें सबसे परेशानीकी चीज़ रात होती है, और ख़ासकर एक बे-ज़र, बे-घरके लिए, जिसे पड़ रहनेको भी ठिकाना न हो। दिन इधर-उधर चल-फिरकर भी गुज़र जाता है, मगर रात कैसे कटे? मैंने जेबमें हाथ डाला, सिर्फ़ पौने दो रुपए थे। और यह वह असासा था, जिसके बल-बूतेपर मैं कलकत्तेके बाज़ारोंमें कामयाबी जीतने आया था।

यकायक मेरे हाथपर किसीने एक इश्तिहार रख दिया। मैंने एक

दूकानके सामने खड़े होकर देखा, खापरडे-सरकस-कंपनीका इश्तिहार था, जिसमें एक ऐक्टर शेरोंको खुला छोड़कर उनके साथ खेलनेवाला था। मैं परेशान था। मेरे पास खाने-पीनेको सिवा ग़मके कुछ न था। लेकिन तफ़रीहकी ख़्वाहिश आदमीको हमेशा रहती है। मैं सरकस देखने चला गया। सुबह क्या होगा, यह ख़याल न था, ख़याल यह था, इस वक़्त तमाशा देख लो। यह कंपनी बड़ी भारी कंपनी थी; बंदरों, रीछों, कुत्तों, घोड़ों, हाथियोंके तमाशे देखकर लोग वाह-वाह करते थे। मगर जब एक नौजवान मराठा ख़ूँख़्वार और वहशी शेरोंको खुला छोड़कर उनके साथ खेलने लगा, तो तमाम तमाशाइयोंके रोंगटे खड़े हो गए। शेर ग़ुर्राते थे, और नौजवान मुस्करा-मुस्कराकर उनको छेड़ता था, और तुर्रा यह कि नौजवानके पास सिवा होश-हवासके कुछ भी न था। देखते देखते नौजवानने अपना सिर एक शेरके मुँहमें दे दिया। लोगोंके दम रुक गए। चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। किसी तरफ़से भी आवाज़ सुनाई न देती थी। यह जिस्मकी चुस्ती-चालाकीका नज़ारा न था, मौत और ज़िन्दगीका तमाशा था। लोग समझते थे, शेर इसे चबा जायगा। मगर शेरने उसे ज़रा भी नुक़सान न पहुँचाया। ज़िन्दगी मौतके मुँहसे बचकर लौट आई। नौजवानने शेरोंको इशारा किया, वे पालतू कुत्तोंकी तरह पिंजरेमें दाख़िल हो गए। लोगोंने तालियोंसे आसमान सिरपर उठा लिया।

अब सबकी ज़बानपर उसीका ज़िक्र था। लोग कहते थे, टिकटके दाम वसूल हो गए। वाह-वाह! कैसा जाँबाज़ है, शेरके मुँहमें सिर दे दिया। एक पुराने ख़यालका आदमी बोला—सब जादूका खेल है,

शेर-वेर कुछ भी न थे, ख़याली तसवीरें थीं; इसीको नज़रबन्दीका तमाशा कहते हैं। दूसरेने कहा, जादू न था, मगर ये शेर भी न थे, शेरकी खालमें आदमी थे। तीसरा बोला, वाह जनाब! आदमी हों, तो इतनी तनख़्वाह कौन दे? कुछ मालूम भी है, इसकी तनख़्वाह तीन हज़ार है, तीन हज़ार! आज नौकरी छोड़ दे, कल कंपनीमें उल्लू बोलने लगें। ये कुत्तों और बिल्लियोंके तमाशे कौन देखने आता है, सब इसीकी दिलावरी देखने आते हैं। ग़र्ज़े कि जितने मुँह थे, उतनी बातें थीं।

तमाशा ख़त्म हुआ, तो मैं भी लोगोंके साथ बाहर निकला; पर अब मैं वह मायूस परदेसी न था, मुझे नौजवान मराठाने कामयाबीकी राह दिखा दी थी। ख़याल आया, रुपया कमानेका यही तरीक़ा है। आदमी जानकी परवा न करे, तो दौलत पैरोंमें लोटती है। लोग अपने-अपने घरोंको चले गए; मगर मैं कहाँ जाता? मेरा कोई घर न था। मैंने सरकसके गिर्द फिर फिरकर रात गुज़ार दी, और सुबहको नौजवान मराठासे मिलने चला।

उसने मेरी कहानी बड़े ग़ौरसे सुनी, और फिर मुस्कराकर कहा— मेरी भी यही जीवनी है। लड़की सुंदरी थी, और उसका पिता अमीर था। परन्तु मैंने इन बातोंका ध्यान न किया। परिणाम वही हुआ, जो हुआ करता है। परन्तु मैंने प्रतिज्ञा की, मैं रुपया कमाऊँगा, और मैंने कमाकर दिखा दिया—अब वह मेरी स्त्री है।

मैंने लजाजतसे कहा—मैं परदेसी हूँ, मेरा यहाँ सिवा परमेश्वरके और कोई नहीं। अगर आप दस्तगीरी करें, तो शायद मुझे भी कामयाबी हो जाय।

मराठा मेरी बात काटकर बोला—भगवान्पर भरोसा रक्खो, वह सब कुछ कर देगा। परन्तु एक बात हृदयमें बाँध लो। रुपया कमाना आसान नहीं। जोखममें पड़ना होगा।

मैं—मैं आगमें कूदनेको भी तैयार हूँ।

मराठा—तुमने देखा, मैं शेरके मुँहमें जाता हूँ। तब जाकर रुपया मिलता है।

मैं—ख़ूब देखा, देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मराठा—लोग तनख़्वाह देखते हैं, काम नहीं देखते। सिंहका नाम सुनकर मृत्युका चित्र सामने आ जाता है, मैं उसके मुँहमें सिर दे देता हूँ।

मैं—मैं सुनकर कभी विश्वास न करता कि आदमी यह भी कर सकता है।

मराठा—मगर मेरी स्त्री कहती है, अब यह धंधा छोड़ दो। शेर फिर भी शेर है, राम जाने, किस समय आँखें बदल ले। स्त्री है, डर जाती है। बड़ी कठिनाईसे आता हूँ। मगर अब ज़्यादा दिन यह काम न कर सकूँगा। मुझे डर है, कहीं कंपनीको नुक़सान न पहुँच जाय। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कोई मन-चला मुझसे यह विद्या सीख ले; मगर प्राण हरएकको प्यारे हैं, सब कानोंपर हाथ धरते हैं।

मैं—मैं तैयार हूँ। मुझे प्राण प्यारे नहीं हैं। शायद मैं—

मराठा—नहीं, तुम सीख लोगे। प्यार बुरा होता है। जो आदमीसे कभी न हो, वह इस वक्त हो जाता है।

मैं—मैं आपकी जानको सारी उम्र दुआएँ देता रहूँगा।

मराठा—मुझे अब रुपएकी भी चाह नहीं। बहुत कमा लिया; और कमा कर क्या करूँगा? अब तुम आगे आओ, और दौलत और शोहरत कमाओ।

मेरी .खुशीका ठिकाना न था। कामयाबीकी सरज़मीन बहुत क़रीब, बिलकुल पास, दिखाई देती थी। कैसे अच्छे समय घरसे निकला था, आते ही काम बन गया!

७

छः महीने बाद कंपनीमें मेरे नामके डंके बजने लगे। कंपनी वही थी, कंपनीकी शोहरत वही थी, सिर्फ़ शेरोंका पहलवान बदल गया था। पहले मराठा नौजवान था, अब पंजाबी मुसलमान। इश्तिहार निकलते, प्रोफ़ेसर इक़बालकी जाँबाज़ीके लासानी करतब जिसने न देखे, उसने कुछ न देखा। मैं यह पढ़ता था, और .खुश होता था। मैं वही था, जो आजसे छः महीने पहले शेरोंका यही तमाशा देखकर दंग रह गया था; आज खुद मुझे देखकर लोग तालियाँ पीटते थे। जब मैं अपनी चमकीली वरदी पहनकर शेरोंके सामने जाता था, तो लोग मुझे मुहब्बत, और अक़ीदतसे देखते थे। कई दफ़ा मुझे अंदेशा होता था कि शायद आज रात मेरा आख़री तमाशा हो। अगर शेरने ज़रा भी मुँह दबा लिया, तो क्या होगा? मैं सहम जाता। मेरी रगोंका ख़ून सर्द हो जाता। मेरा दिल मौतके ख़ौफ़से काँप उठता था। मैं चाहता था, नौकरी छोड़ दूँ, और घर लौट जाऊँ। मगर जहानआराकी मुहब्बत गिरे हुए हौसले सँभाल लेती थी। दुनियामें हुस्न और इश्क़ कितना काम करते हैं, इसका अंदाज़ा लगाना भी आसान नहीं।

इस बीचमें हमारी कंपनी कई रियासतोंमें भी गई। वहाँ मुझे राजों-महाराजोंसे बड़ी-बड़ी रकमें मिलीं। महाराजा सतगढ़ने दस हजार दिया, महाराज सिकंधीरने आठ हज़ार। मेरी तनख्वाह इसके अलावा थी। मगर मैं ख़र्च न करता था, रुपया सँभाल-सँभालकर रखता था। यह रुपया मेरे लिए न था, मेरी जहानआराके लिए था, जिसका बाप चाँदीका भूखा था।

ख़ुदा ख़ुदा करके दो साल ख़तम हुए, और मैं अस्सी हज़ारके क़रीब रुपया लेकर अपने वतनको रवाना हुआ। इस वक़्त मेरे पाँव ज़मीनपर न पड़ते थे। उम्मीदोंके ख़यालमें उड़ा चला जाता था। मैंने हलीमको सब कुछ लिख दिया था। सोचता था, शहरके लोग सुनेंगे, तो हैरान रह जायँगे। और, जहानआराके तो जानमें जान आ जायगी। मेरे आनेका हाल सुनेगी, तो उछल पड़ेगी। पता नहीं, वियोगका यह ज़माना ग़रीब दुखियाने कैसे गुज़ारा है! रो-रोकर आधी भी न रही होगी, चेहरेका रंग बदल गया होगा। पर अब ख़ुश हो जायगी। जाकर हलीमसे कहूँगा, उसके बापसे कहे, इक़बाल कुछ बन गया है। अब आपको क्या एतराज़ है?

पंजाब-मेल अपनी पूरी रफ़्तारसे उड़ा चला जाता था; मगर मैं बार-बार झुँझला उठता था कि गाड़ी जल्द-से-जल्द रावलपिंडी क्यों नहीं पहुँच जाती। मैं चाहता था, उसका तमाम फ़ासला एक मिनटमें तय हो जाए। इन्तिज़ारकी आख़री घड़ियाँ बहुत लम्बी होती हैं, उनका गुज़रना मुश्किल हो जाता है। लेकिन वक़्तने किसीकी परवा कब की है? गाड़ी अपनी रफ़्तारसे चलती रही। आख़िर रावलपिंडीका स्टेशन आ गया। मैं स्टेशनसे बाहर निकला, स्टेशनपर कोई भी न

था। न हलीम न कोई और। मैं स्टेशनसे बाहर निकला, और मोटर लेकर घर पहुँचा। इस वक्त मेरे दिलकी जो कैफ़ियत थी, उसे बयान नहीं किया जा सकता। मेरी माको बेहद .खुशी हुई। बार-बार मेरी बलाएँ लेती थी, और पूछती थी—बेटा, तूने हमें एक ख़त भी न लिखा। मैं तो रो-रोकर अन्धी हो गई। मैं हँसता था, और कहता था—मा, मैंने अस्सी हज़ार रुपया कमा लिया। अब हम बड़े अमीर हैं।

मेरी माकी आँखें .खुशीसे चमकने लगीं। मेरे सिरपर हाथ फेरकर बोली—नासिरअली कहता था, परदेस गया है, तो क्या हो जायगा? क्या परदेसमें हुन बरसता है, जो उठा लावेगा।

मैं—मा, बरसता ही है, वर्ना मैं इतना रुपया कहाँसे उठा लाता?

मा—मगर बेटा, तू शेरके मुँहमें सिर कैसे दे देता था? क्या तुझे माका ख़याल न आता था?

मैं—शेर सधे हुए थे।

मा—पर शेर तो थे। मैं अब न जाने दूँगी।

मैं—मेरा अपना भी इरादा जानेका नहीं है। ख़ानसाहबका क्या हाल है?

मा—मेरे सामने उसका नाम न लो, बड़ा बेईमान है।

मेरे दिलमें यकायक अन्देशा पैदा हुआ। क्या कहीं....मेरा दिमाग़ खौलने लगा। शामका वक्त था, अँधेरेमें मेरी माने मेरे चेहरेकी कैफ़ियत न देखी, और बोली—उसने इक़रार करके पूरा न किया और तुम्हारे जानेके छः माह बाद बेटीका ब्याह कर दिया।

मेरा सर घूमने लगा। आँखोंके सामने शामके वक्त आधी रातका

अँधेरा छा गया । अब मेरे लिए दुनियामें कोई दिलचस्पी कोई रंगीनी न थी । मैं कैसा बद-किस्मत था ! मैंने बाज़ी जीतकर हार दी ! मुझे नासिरअलीपर ग़ुस्सा था; मगर इससे भी ज़्यादा ग़ुस्सा जहानआरापर था । मैंने सर्द आह भरी, और पूछा—जहानआराका क्या हाल है ?

मा—उस बदनसीबका हाल क्या बताऊँ ! जब तक ब्याही रही, उसके होठोंपर किसीने हँसी नहीं देखी, हर घड़ी रोती रहती थी । आख़िर आज उसके दुखोंका ख़ात्मा हो गया । तुम्हारा बाप और हलीम उसीके जनाज़ेके साथ गए हैं ।

मैं जहाँ बैठा था, वहीं बैठा रह गया । पहले बाज़ी हारी थी, अब उम्मीद भी हार गया । मेरे मुँहसे कोई आवाज़ न निकली, न आंखसे पानी निकला; मगर दिलमें आग लग गई । मैं जोशसे उठ खड़ा हुआ । माकी ममता रोकती ही रह गई; मगर मेरे पागलपनके कान न थे । थोड़ी देर बाद मैं क़ब्रिस्तानमें जहानआराकी क़ब्र उखाड़ रहा था । अब मैं ख़ुद नहीं बता सकता कि उस वक़्त मेरे सिरपर कौन-सा भूत सवार था, न मुझे मालूम था कि मैं क्या कर रहा हूँ । दीन-दुनियासे बेख़बर, क़ानूनसे बेपरवा, रातके अँधेरेमें एक पागल क़ब्र खोद रहा था, और उसे देखनेवाला सिवाय आसमानके तारों और ज़मीनके दरख़्तोंके और कोई न था ।

मैंने लाश बाहर निकाली, और उसका मुँह चूमकर कहा—जहानआरा ! तूने यह बेवफ़ाई क्यों की ? तूने तो मुझसे वादा किया था कि तुम्हारा रास्ता देखूँगी ? अब वह प्यार-मुहब्बतके क़ौल

क़रार क्या हुए ? देख, तेरा प्यारा इक़बाल रुपया कमाकर लाया है। मगर तू यहाँ अँधेरेमें आ लेटी है !

यकायक मुझे लाशमें हरकत-सी मालूम हुई। मैंने सीनेपर हाथ रखकर देखा, वह गर्म था, नब्ज़ टटोली, वह चल रही थी। मैं डर गया। मौतसे पागल भी डरता है। मैंने लाशको ज़मीनपर रख दिया, और आप दूर भाग गया। सरकस-कंपनीमें शेरोंके साथ हँस-हँसकर खेलनेवाला बहादुर इस वक़्त एक औरतकी लाशसे डर रहा था। हम ज़िंदोंकी निसबत मुर्दोंसे कहीं ज़्यादा डरते हैं। इतनेमें जैसे अँधेरेमें बिजली कौंध गई। ख़याल आया, मुमकिन है, इसके दिलकी हरकत थोड़ी देरके लिए बंद हो गई हो, मरी न हो और अब फिर वह हरकत शुरू हो गई हो। हिकमतकी किताबोंमें ऐसे बीमारोंका ज़िक्र आया है। अब मेरी ख़ुशीका ठिकाना न था। मैंने जल्दीसे आगे बढ़कर जहानआराको गोदमें उठाया और सड़कपर आकर खड़ा हो गया। इतनेमें उधरसे एक मोटर गुज़री, मेरी मुश्किल हल हो गई। चंद दिनके बाद मैं और जहानआरा काबुल चले गए।

८

राहत हुसैन

जहानआराकी मौत एक ऐसा दिल-ख़राश हादिसा है, जिसने मेरी ज़िन्दगी तबाह कर दी है। दुनियामें सब कुछ है, मगर मेरे लिए कुछ भी नहीं है। हर घड़ी उसीका हसीन चेहरा आँखोंमें फिरा करता है। क्या ख़बर थी कि मौतका फ़रिश्ता इतनी जल्दी उसकी ज़िंदगीपर छापा मार लेगा। सुबह दफ़्तर गया, तो बिलकुल तंदुरुस्त थी; शामको लौटा, तो घरमें वह न थी, उसकी लाश थी। इतना भी तो न हुआ

कि मरते वक़्त दो बातें ही कर लूँ। उसके दिलमें कोई ग़म था, हर वक़्त सहमी सहमी रहती थी; लेकिन मेरे सामने अपना ग़म उसने कभी ज़ाहिर नहीं किया। ऐसी वफ़ा-शुआर, ऐसी नेकनीयत, ऐसी ख़ूबसूरत औरत और कहाँ पाऊँगा? जब याद आती है, आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। अलबत्ता उसकी बेटी इसमतआराको देखकर दिल बहल जाता है। वह न सही, उसकी निशानी ही सही। यही बहुत है।

१९२० का सन् हिन्दुस्तानकी तारीख़में ख़ास साल है। यह वह साल है, जब हिन्दुस्तानके मुसलमानोंमें हिजरतकी तहरकी शुरू हुई। हज़ारों मुसलमान अपना वतन छोड़कर अफ़ग़ानिस्तान चले गए। मैं पहले ही रंजीदा था, नौकरी छोड़ दी, और हिजरतकी तैयारियाँ करने लगा। ख़ानसाहबको मुझसे बहुत मुहब्बत हो गई थी। मेरा इरादा सुनकर उनके होश उड़ गए। कई दिनतक समझाते रहे कि यह जोश सोडावाटरका उबाल है। तुमको क्या हो गया? भले-चंगे बैठे हो, बैठे रहो। ख़ुदा जाने, वहाँ कैसी पटे, कैसी न पटे। दाना आदमी ऐसी ग़लती कभी नहीं करते। बुढ़ापेमें जहानआराकी मौतने कमर तोड़ दी है, और कोई लड़का है, न लड़की। अब तुम भी छोड़ जाओगे, तो हम बे-मौत मर जायँगे। और कुछ नहीं, तो इसमतआराका ही ख़याल करो, परदेसमें जाकर उदास हो जायगी।

मगर जब मेरे इरादेमें ज़रा फ़र्क़ न आया, तो हारकर वह भी तैयार हो गए। शहरमें शोर मच गया। लोग हैरान रह गए, उनको कभी ख़्याल भी न हो सकता था कि ख़ानसाहब-जैसा चापलूस आदमी भी हिजरत जैसी तहरीकमें शरीक हो जायगा। लेकिन

असली राज़की किसीको भी ख़बर न थी। रुपयोंका माल कौड़ियोंमें निकल गया; पर हमने परवा न की, और काबुल जा बसे। वहाँ सैकड़ों हिन्दुस्तानी थे। उनको उम्मीद थी कि हुकूमत हमें सिर-आँखोंपर उठा लेगी। हुकूमतने उनकी मेहमान-नवाज़ी की; मगर उनका इतमीनान न हुआ। अलबत्ता हमारे साथ ख़ास सुलूक रक्खा गया। दौलत घरमें भी काम आती है, बाहर भी। ग़रीबको कोई कहीं भी नहीं पूछता।

वहाँ रहते हुए अभी तीन या चार ही महीने गुज़रे थे कि एक दिन कुदरतका हैरत अंगेज़ करिश्मा देखनेमें आया। शाम हो गई थी। मैं इसमतआराके लिए मिठाई लिए घरको लौट रहा था कि एक मकानकी खिड़कीमें एक चेहरा दिखाई दिया। मैं चौंक पड़ा। मेरे बदनका बाल-बाल काँप गया—यह जहानआराका चेहरा था, वही रंग, वही आँखें, वही नक़्श-नगार। उसने मुझे देखा, और फ़ौरन ही पीछे हट गई। मगर मेरे पाँव वहीं गड़ गए। दिमाग़ मानता न था, अक्ल तस्लीम न करती थी। वह मर चुकी थी मेरे सामने दफ़न हुई। मैंने अपने हाथसे मिट्टी दी। रावलपिंडीमें आज भी उसकी लाशपर पक्की क़ब्र बनी है, और यह इस जगह ज़िंदा मौजूद है! नहीं, मुझे धोखा हुआ है। यह वह न होगी, उसीके जैसी कोई दूसरी औरत होगी। मैं घर लौट गया; मगर इस बातका ख़याल ज़हनसे न उतरा। सारी रात परेशान रहा, ज़रा नींद न आई। दूसरे दिन मैं फिर उधरसे गुज़रा; लेकिन आज झरोखा बन्द था। मैंने कई चक्कर काटे; मगर झरोखा मेरी क़िस्मतकी तरह बंद था। मेरा शुबह बढ़ने लगा। शायद सचमुच

जहानआरा ही हो, जभी मुझे देखकर चौंक पड़ी थी। उसका रङ्ग बदल गया था। उसके मुँहसे, याद आता है, हलकी-सी चीख़ भी निकल गई थी! कपड़े भी पंजाबियोंके-से थे, अफ़ग़ानोंके-से न थे। फिर ख़याल आता, तेरा दिमाग़ चल गया है, वर्ना तुझे यह ख़याल भी न आता। मुहब्बतने तेरी निगाहोंको धोखा दिया है। जहानआरा तेरे घरमें मरी, तेरे सामने मरी, और आज तू कहता है, वह ज़िन्दा है! यह जनून नहीं, तो और क्या है? दिमाग़का इलाज कर।

चन्द दिन इसी कशमकशमें गुज़रे। इसके बाद एक दिन फिर वह झरोखा खुला, और मैंने उसे देखा। वह शायद किसीकी राह देख रही थी। उसे मालूम न था कि कोई मुझे देख रहा है। मैं उसे जितना देखता था, मेरा शक उतना ही बढ़ता जाता था। यकायक मेरी आँखें उसकी तरफ़ उठ गईं। डर, हैरानी और शर्मिंदगीकी ग़ैर-मामूली लहर-सी पैदा हुई, और वह बिजलीकी तेज़ीसे पीछे हट गई। अब मुझे यक़ीन हो गया कि यह वही है, कोई दूसरी नहीं। मैं एक दूकानदारके पास गया, और उससे पूछा—क्यों बिरादर, यह मकान किसका है?

दूकानदारने मुझे सिरसे पाँवतक देखा, और फिर कहा—तेरा हिन्दुस्तानी भाई है, रावलपिंडीका रहनेवाला। मुहम्मद इक़बाल या हसन इक़बाल नाम है।

९

अब शककी ज़रा भी गुँजायश न थी। मैंने उसी वक़्त जाकर ख़ान साहबसे कहा—एक अजीब ख़बर सुनाऊँ?

ख़ानसाहब—ज़रूर सुनाओ।

मैं—आप हैरान रह जायँगे।

ख़ान साहब—ऐसी ख़बर है वह?

मैं—आप यक़ीन ही न करेंगे। कहेंगे, तुम पागल हो गए हो।

ख़ान साहब—अच्छा! तो तारीफ़ रहने दो, पहले ख़बर सुनाओ।

मैं—मुझे अंदेशा है, आप यक़ीन न करेंगे।

ख़ान साहब—अरे भई! बात क्या है? कुछ कहो तो सही।

मैं—जहानआरा ज़िंदा है।

ख़ान साहब चौंककर खड़े हो गए। उनको यक़ीन हो गया कि यह पागल हो चुका है। मेरी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे।

मैं—ख़ुदाए-बरतरकी क़सम! मैंने उसे अपनी आँखोंसे देखा है।

ख़ान साहब—अरे मियाँ! मुर्दे क़यामतसे पहले कभी न उठेंगे।

मैं—मगर वह ज़िन्दा है।

ख़ान साहब—मालूम होता है, तुम्हारा सिर फिर गया है।

मैं—अगर आप देख लें, तो आपका सिर भी फिर जाय।

ख़ान साहब—मैंने अपने हाथसे दफ़न किया, तुम्हारी बात कैसे मान लूँ? तुमने ख़्वाब तो नहीं देखा है? कहाँसे आ रहे हो?

मैं—बाज़ारसे आ रहा हूँ। आप ज़रा मेरी आँखें देखिए, पागल नहीं हूँ।

ख़ान साहब—मगर तुम्हारी बातें पागलोंसे भी बढ़कर हैं। जानते हो क्या कह रहे हो?

मैं—ख़ूब जानता हूँ।

ख़ान साहब—क्या?

मैं—यह कि जहानआरा ज़िन्दा है, और उसे मैंने अपनी इन

दोनों आँखोंसे, अभी आध घण्टेसे ज़्यादा नहीं गुज़रा, देखा है। रावलपिंडीके किसी मुहम्मद इक़बाल या हसन इक़बालके पास है।

ख़ान साहब चौंक पड़े—हसन इक़बाल ! वही हमारे पड़ोसी रहीमबख़्शका बेटा !

मैं—यह .खुदा जाने ! नाम कुछ ऐसा ही है।

ख़ान साहब किसी गहरे ख़्यालमें ग़र्क़ हो गए। मैंने कहा—मेरी रायमें वह मरी न थी, यह गहरी चाल थी। क्या अजब है, उसे कोई दवा देकर बेहोश कर दिया गया हो, और दफ़न होनेके बाद फ़ौरन खोदकर निकाल लिया गया हो।

ख़ान साहब—यह तो अलिफ़लैलाके क़िस्सोंकी-सी बात हो गई। मगर मुझे अब भी यक़ीन नहीं आता। वह जहानआरा न होगी कोई उसकी हमशक्ल होगी। तुमने दूरसे देखा है।

मैं—अपने दूरहीसे पहचाने जाते हैं। मुझे ज़रा भी शुबह नहीं। एक दिन पहले भी देखा था; मगर आज तो पूरा यक़ीन हो गया। आख़िर उसके चेहरेका रंग क्यों उड़ गया ? .ज़रूर वही है।

ख़ान साहब—(सोच-सोचकर) बड़े ही ताज्जुबका मामला है।

मैं—अब आपकी क्या राय है ?

ख़ान साहब—मैं क्या कहूँ ? मेरी तो अक़्ल काम नहीं करती। मगर जहानआरा ऐसी लड़की न थी।

मैं—क़ाज़ी साहबके पास जाऊँ ? जैसा कहेंगे, वैसा करूँगा।

ख़ान साहबने ठंडी आह भरी, और हवामें देखने लगे।

१०

मैं भागा भागा क़ाज़ी साहबके मकानपर पहुँचा। वह बहुत हमदर्दीसे

पेश आए। हिन्दुस्तानी हाकिमोंमें ऐसी मुहब्बत और ख़ुलूसदिली मैंने कम देखी है। मेरा क़िस्सा सुनकर उनको भी हैरानी हुई। बहुत देर सोचते रहे, इसके बाद बोले—इज़्ज़तका सवाल है, म नहीं चाहता कि यह मुक़दमा खुली अदालतमें पेश हो। बड़ी बदनामी होगी। अगर तुम चाहो, तो घरपर बुलाकर फ़ैसला कर दिया जाय। तुम्हारी क्या राय है?

मैंने सिर झुकाकर जवाब दिया—आपका ख़याल बजा है।

क़ाज़ी साहबने पहले ख़ान साहब और उनकी बीवीको बुलाकर एक कमरेमें बिठा दिया। इसके बाद हसन इक़बाल और उसकी बीवीके पास आदमी भेजे।

थोड़ी देर बाद दोनों आ गए। हसन इक़बाल निहायत ख़ूबसूरत नौजवान था। चेहरेसे शराफ़त टपकती थी। उसपर किसी साज़िशका गुमान भी न होता था। उसने बड़े तपाकसे हम दोनोंको सलाम किया, और बैठ गया। औरत बुर्क़ा ओढ़े हुए थी। वह सिमटकर एक कोनेमें बैठ गई।

क़ाज़ी साहबने कहा—यह साहब कहते हैं, यह ख़ातून मेरी बीवी है। आपके पास इसका क्या जवाब है?

हसन इक़बालके चेहरेपर ख़फ़गीके आसार ज़ाहिर हुए। उसने मेरी तरफ़ ऐसी निगाहोंसे देखा, जिनका मतलब यह था कि तुम्हें यह हिम्मत कैसे हो गई? इसके बाद क़ाज़ी साहबसे कहा—बिलकुल नहीं, यह एक शरीफ़ मुसलमान और उसकी बीवीकी बदतरीन तौहीन है। और मुझे अफ़सोस है कि यह तौहीन करनेवाला एक मुसलमान है।

मैं घबरा गया। हसन इक़बाल ऐसी दिलेरीसे जवाब देगा, यह मुझे ख़याल न था। मगर क़ाज़ी साहबने इसकी परवा न की और उस औरतसे पूछा—क्यों बेटी, क्या मामला है?

औरतने मुँहसे जवाब न दिया, सिर्फ़ सिर हिला दिया।

क़ाज़ी साहब फिर बोले—जवाब दो।

आहिस्तासे एक बारीक आवाज़ आई—मैं इनको नहीं जानती, यह कौन हैं?

आवाज़ बारीक थी; मैंने पहचान ली। यह वही थी। आदमी शक्ल बदल सकता है; मगर आवाज़ नहीं बदली जा सकती। मेरे बदनसे पसीना छूटने लगा। मैंने जोशसे चिल्लाकर कहा—क़ाज़ी साहब, मेरा ख़ुदा गवाह है, यह वही है। मैं आवाज़ पहचानता हूँ।

क़ाज़ी साहब—मगर कोई सुबूत? यह तो इनकार करते हैं।

मैं—(औरतसे) क्या तुम जहानआरा नहीं हो? क्यों झूठ बोलती हो?

औरत—(जल्दीसे) मैं रूहा हूँ, जहानआरा नहीं हूँ।

क़ाज़ी साहब—बुर्क़ा उतार दो। अभी मालूम हुआ जाता है।

हसन इक़बालके चेहरेपर हवाइयाँ छूटने लगीं। घबराकर बोला—क़ाज़ी साहब, एक शरीफ़ औरत किसी ग़ैर मर्दके सामने मुँह कैसे खोलेगी?

क़ाज़ी साहब—मैं मजबूर हूँ। बुर्क़ा उतारना होगा।

औरतने बुर्क़ा उतार दिया, मैं चौंककर पीछे हट गया। अब ज़रा भी शक न था, यह वही थी। वही जहानआरा, जो मर चुकी थी, और जिसकी ज़िन्दगीका राज़ हमारी समझसे बाहर था। पर

उसके चेहरेपर कोई घबराहट न थी। औरत ऐसे मौक़ेपर अपने दिलपर ऐसा क़ाबू रख सकती है, यह मेरे लिए नया तजुर्बा था। मैं समझता था, बुर्क़ा उतरते ही राज़ फ़ाश हो जायगा। जहानआरा मेरे सामने सिर न उठा सकेगी। मगर ऐसा न हुआ। वह मेरी तरफ़ देख रही थी और ऐसे, जैसे वह मुझे जानती भी न हो। मेरा दिल धड़कने लगा। क्या मैंने दो सालमें अपनी औरतको भी नहीं पहचाना?

इस मौक़ेपर ख़ान साहब अंदर आ गए। वह रो रहे थे। उनकी दाढ़ी उनके आँसुओंसे तर थी। उन्होंने आगे बढ़कर उसके सिरपर हाथ रख दिया, और कहा—बेटी, तू जहानआरा है। झूठ न बोल, हम तेरी ख़ता माफ़ कर देंगे। यह राज़ हम नहीं जानते। लेकिन तू मेरी बेटी है। तू बापकी आँखोंको धोखा नहीं दे सकती। वह देख तेरी मा है, जो रो-रोकर आधी भी नहीं रही।

औरतने पहले ख़ान साहबकी तरफ़ देखा, फिर उनकी बीवीकी तरफ़, और इसके बाद मिन्नतें करके बोली—ख़ुदाके लिए मुझे पागल न कर दो। मैं तुम्हारी बेटी हूँ, मगर जहानआरा नहीं हूँ।

और, उसके चेहरेपर इस वक़्त भी कोई परेशानी न थी। अब मुझे भी शुबह होने लगा कि शायद यह जहानआरा न हो, कोई और ही हो। मैं अपनी जल्दबाज़ी और हिमाक़तपर पछता रहा था, और न जानता था कि उनसे किन लफ़्ज़ोंमें माफ़ी माँगूँ?

इसमतआरा नई जगह और नए आदमियोंको देखकर कुछ सहम-सी गई थी, इसलिए नानीके पीछे छिपी खड़ी थी। ख़ान साहब और उनकी बीवीको रोते देखकर वह आगे बढ़ी।

शायद सोचती हो कि यह रोते हैं, मैं चुप करा दूँगी। इतनेमें उसकी निगाह उस औरतके चेहरेपर पड़ी, जिसे हम सब जहानआरा समझ रहे थे। इसमतआरा वहीं रुक गई। उसने बड़े ग़ौरसे उसकी तरफ़ देखना शुरू किया। तब उसकी आँखोंमें एक अजीब-सी चमक पैदा हो गई। उसका चेहरा .खुशीसे चमकने लगा। उसने अपने माथेपर बिखरे हुए लम्बे बालोंको हाथसे पीछे हटाया, और लपककर उसकी तरफ़ बढ़ी।

अब उस औरतसे ज़ब्त न हो सका। देखते-देखते उसके चेहरेपर सुर्ख़ी दौड़ गई, और आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने इसमतको उठाकर गलेसे लगा लिया, और उसके मुँहको, गालोंको, आँखोंको सिरके बालोंको चूमने लगी। इसमत माके पागल प्यारसे घबरा गई, और उसके मुँहको अपने नन्हें-नन्हें हाथोंसे पकड़कर अलग हटानेकी कोशिश करने लगी।

क़ाज़ी साहब माकी मुहब्बतका यह पाक नज़ारा देखकर बहुत मुतासर हुए, और भर्राई हुई आवाज़में बोले—जिस सचाईको हम मालूम न कर सके थे, वह इस लड़कीने कर ली। अल्लाह तआलाका शुक्र है कि मेरी छत तले बेइंसाफ़ीका फ़ैसला नहीं हुआ, वर्ना क़यामतके रोज़ मेरा दामन मज़लूमोंके हाथमें होता।

११

हसन इक़बाल

अब हमारे लिए सिवाय इक़बाल-जुर्मके कोई चारा न था। जहान-आराको मैंने जैसा समझाया था, उसने वैसा ही किया। उसने शौहरकी तेज़ निगाहोंका मुक़ाबिला किया, और झिझकी नहीं। उसने

मा-बापकी आँखोंके आँसू देखे, और अपने आपको सँभाले रही। मगर बेटीको देखकर बेक़ाबू हो गई। वह अब रो रही थी। क़ाज़ी साहब सब कुछ समझ गए। उन्होंने मेरी तरफ़ क़हरकी निगाहोंसे देखा और कहा—ख़ुदाने फ़ैसला कर दिया कि तू झूठा है, और इसका इलज़ाम ठीक है। अब ख़ुदा और उसके ग़ज़बसे डर, और जो कुछ बीती है, साफ़-साफ़ कह दे।

मैं इनकार न कर सका। मैंने तमाम वाक़यात सिलसिलेवार बयान कर दिए, और आख़िरमें कहा—क़ाज़ी साहब! मा-बाप, शौहर और दुनियाके लिए यह मर चुकी। उन्होंने इसे दबा दिया था, वह इसका मातम कर चुके थे। अगर मैं दीवानगीकी हालतमें जाकर क़ब्र न उखाड़ लेता, तो यह दुनियाकी हवा और रोशनीमें कभी साँस न ले सकती। इसे मैंने ज़िंदा किया है। लाश इनकी थीं, ज़िंदा जहानआरापर मेरा हक़ है।

मगर क़ाज़ी साहबने सिरके इशारेसे कहा—नहीं।

मैं—तो अब मुझे एक बात और कहना है। जब यह होशमें आई, तो मुझे देखकर बहुत घबराई। यह मुझे चाहती थी, मेरे आनेकी ख़बर सुनकर ही इसके दिलकी धड़कन बंद हो गई थी। मगर इसके बावजूद कहती थी, मेरे लिए दुनिया तुम्हारे वजूदसे ख़ाली है, मेरा निकाह हो चुका है, और मेरा शौहर ज़िंदा है। लेकिन इसके साथ ही शौहरके यहाँ जाते हुए भी इसकी रूह काँपती थी। इसका दिल एक तरफ़ जाता था, दिमाग़ दूसरी तरफ़। यह पसोपेशमें थी। इसे दोनों तरफ़ तबाही नज़र आती थी, एक तरफ़ दीनकी, दूसरी तरफ़ दुनियाकी। आख़िर हमने फ़ैसला किया, कि यह

मेरे पास रहे, मगर हम अपने आपेसे बाहर कभी न हों। मैं ख़ुदाकी और उसके रसूल पाककी क़सम खाकर कह सकता हूँ कि हम आज तक अपने इक़रारपर क़ायम हैं, और जहानआरा आज भी वैसी ही पाक-साफ़ है, जैसी क़ब्रमें थी।

मेरी तक़रीर सुनकर सबके चेहरे ख़ुशीसे चमकने लगे। क़ाज़ी साहबने इतमीनानकी साँस लेकर कहा—तू गुनहगार है, मगर तू फ़रिश्ता है। किसीकी क़ब्र उखाड़ना शरियतकी रूसे गुनाह है, और इसकी सज़ा बड़ी सख़्त है। लेकिन चूँकि तू जुनूनकी हालतमें था, और इससे एक औरतकी ज़िंदगी बच गई है, इसलिए मैं इससे दरगुज़र करता हूँ। मगर तुझे औरत नहीं मिल सकती। यह इनकी है, (राहतहुसैनकी तरफ़ इशारा करके) इनको मिलेगी।

ख़ान साहब और राहत हुसैनने मेरी मदद और शराफ़तका शुक्रिया अदा किया, और जहानआराको अपने साथ ले गए। उसके क़दम सुस्त थे, मगर वह जा रही थी। उसी दुनियामें, जहाँ फ़र्ज़की पाबंदियाँ थीं; पर मुहब्बतकी रोशनी न थी। मैं देखता रह गया। कितनी दूर भागकर आए थे, मगर हमारी बद-क़िस्मतीने यहाँ भी पीछा न छोड़ा।

वह अब राहत हुसैनकी थी। मेरा उससे कोई वास्ता न था। मगर मेरे दिलने न माना, और मैं उनके पीछे पीछे चला। यहाँ तक कि वे अपने मकानके पास पहुँच गए। मैंने ठंडी आह भरी, और वापस मुड़ा। यकायक मुझे कुछ शोर-सा सुनाई दिया। मैंने पीछे मुड़कर देखा, जहानआरा दर्वाज़ेमें गिर पड़ी थी, और राहत हुसैन उसके ऊपर झुककर उसे सँभाल रहा था।

मैं दौड़कर उनके क़रीब चला गया, और घबराकर बोला—क्यों क्या हुआ?

राहत हुसैन—इक़बाल! दौड़कर किसी हकीमको बुलाओ। जहानआरा बेहोश हो गई है।

हकीमने आकर देखा, और मायूसीसे सिर हिला दिया। जहानआरा मर गई, मगर उसने दीन और दुनिया दोनों बचा लिए। लड़की रोती थी, माका पता न था।

राहत हुसैनने मुझसे मुख़ातिब होकर कहा—तुमने लाश ली थी, लाश ही दी। तुमने कहा था, इसका हक़ जहानआरापर नहीं, जहानआराकी लाशपर है, तुम्हारा कहा पूरा हो गया।

मैंने सिर झुका लिया, और आँखोंके आँसू पोंछने लगा।

दिल जागता है

१

स्यालकोटके मशहूर वकील प्रभुदत्तजी आधे आर्यसमाजी थे, आधे सनातनधर्मी। उनकी मित्र-मंडलीमें भी दोनों ख़यालके आदमी थे। उनको मूर्ति-पूजापर अथाह श्रद्धा थी। कहते, इससे मनकी चंचलता दूर हो जाती है; हम पत्थरको नहीं, परमात्माको पूजते हैं। पंडितजी अवतारवादी भी थे। तीर्थ-यात्राका तो उन्हें इतना शौक़ था कि हरसाल कहीं न कहीं ज़रूर हो आते थे। राम और कृष्णका पवित्र नाम सुनते, तो उनका चेहरा खिल जाता था। प्रातःकाल उठकर गीताका पाठ किए बिना भोजन न करते थे। मगर इसके साथ ही वह विधवा-विवाहके पूरे पक्षपाती और अछूतोंके दोस्त थे। वह इस पहलूमें हिन्दुओंको गुनहगार समझते और आर्यसमाजके सुधार और प्रचारकी दिल खोल कर प्रशंसा करते थे। स्त्री-शिक्षाके संबंधमें आपका यह मत था कि इसके बिना हिन्दुओंकी गति नहीं है। मगर उनकी अधिक श्रद्धा अछूतोद्धारमें थी। कचहरीसे आते, तो साइकिल लेकर संधाले चले जाते। यह गाँव स्यालकोटसे कोई चार मीलकी दूरीपर है। यहाँ ब्राह्मण-क्षत्रिय नहीं बसते; मेघ बसते हैं। प्रभुदत्तको देखकर उनके मुख-मंडलपर रौनक़ आ जाती थी।

वहाँका बच्चा-बच्चा उनको जानता था। प्रेममें भेद-भाव कहाँ? जहाँ कहीं बैठते, उनसे घर-बाहरकी बातें करते; कहीं उपदेश देते, कहीं उनके झगड़े मिटाते, कहीं मुक़दमे सुनते। उन गँवारोंकी सीधी सादी बातें सुनकर पंडितजीको आत्मिक प्रसन्नता होती थी। सोचते, ये लोग कैसे सच्चे हैं, कैसे सादे! इनको दुनियाके छल-कपट नहीं आते, न बात-बातमें ये झूठ बोलते हैं। दिलके भावोंको ये छिपाना नहीं जानते, साफ़ और खरी बात मुँहपर कह देते हैं। कोई ख़ुश हो चाहे नाराज़। इन्हें शहरका पानी न लगा था, न इन्होंने झूठी दुनियादारीकी झूठी नीति सीखी थी। पंडित प्रभुदत्त उनके इन गुणोंपर लट्टू थे। प्रायः अपने इष्ट-मित्रोंसे कहा करते, ये सच्चे साधु हैं; इनके दिलोंमें धोखा नहीं है। धन-दौलतके ग़रीब हैं तो क्या? मगर इनके पास प्रेम और पवित्रताकी पूँजीका अभाव नहीं। मुझे तो हिन्दुओंकी बुद्धिपर रोना आता है, जो इन्हें दूर हटाते हैं। खरे सोनेको पीतल समझना बदनसीबी नहीं, तो और क्या है?

इन मेघोंमें एक लड़का बिसाखी था, बहुत नेक और ख़ूबसूरत। पंद्रह सोलह सालकी उम्र होगी, उर्दू-हिंदी पढ़ सकता था। उसकी इच्छा थी कि अवसर मिले, तो अँगरेज़ीके चार अक्षर भी पढ़ ले। लेकिन मा-बाप ग़रीब थे; उनमें यह शक्ति न थी। पंडितजीने सुना, तो उसके लिए महीना बाँध दिया, मगर अभी एक ही दो महीने गुज़रे थे कि गाँवमें प्लेग फूट पड़ा। बिसाखीके मा-बाप दोनों चल बसे। अब बिसाखी इस असार संसारमें अकेला रह गया। क्या करे, क्या न करे। उसकी सहायता करनेवाला कोई न था, न घरमें रुपया-पैसा था। हारकर पंडितजीके पास जाकर रोने लगा। पंडितजी

नरम दिलके आदमी थे। उनसे ग़रीब लड़केका रोना न देखा गया। बोले—तेरे मा-बाप मर गए हैं, तो क्या हुआ? हम तो जीते हैं, तुझे भूखों न मरने देंगे।

दूसरे दिनसे बिसाखी उन्हींके यहाँ रहने लगा।

२

पंडित प्रभुदत्तकी स्त्रीका नाम विद्यावती था। वह पंडितजीपर प्राण देती थी। उन्हें दो-चार घंटे भी न देखती, तो बावली हो जाती थी। मगर इसे मूर्खता कहो, या झूठे संस्कार, उसे पतिकी ये बातें पसंद न थीं। प्रायः सोचती, यह करते क्या हैं? क्या हमारे बाप-दादा बिलकुल मूर्ख ही थे, जो इनको छूना भी पाप समझते थे? कलजुगका ज़माना है, लोग आर्यसमाजी हो गए हैं। पहले तो ऐसा अन्धेर कभी न होता था। अब तो धरम-करमका दुनियाको ख़याल भी नहीं रहा। मेघ-चमार भी कहते हैं, हम आरिये हैं। कहा करें, यहाँ उनकी सुनता ही कौन है? एक दिन पंडितजीने कहा—विद्या, तुम यह बताओ, वे हिन्दू क्यों नहीं? उनके सिरपर मुझसे लम्बी चोटी है; उनके दिलमें राम-कृष्णके लिए श्रद्धा है। वे रामायण-महाभारत पढ़ते हैं; उनके ब्याह पुरोहित पंडित कराते हैं। फिर उनसे घृणा क्यों करती हो?

विद्याने जवाब दिया—अब इन बातोंका क्या जवाब दूँ? मगर इतना जानती हूँ कि वे हिन्दू नहीं हो सकते। तुम मेरी जीभ पकड़ सकते हो, पर मन नहीं पकड़ सकते। और क्या वेद-सासतर सब झूठे ह?

पंडितजी हँसकर बोले—तो पंडितानीजी! वेद-शास्त्र क्या कहते हैं?

विद्या—जाओ! तुम तो मज़ाक करते हो।

प्रभुदत्त—नहीं विद्या, मैं मज़ाक नहीं करता। ज़रा समझ-सोचकर बताओ। बिसाखीमें क्या कीड़े पड़े हैं, जो उसे हम घरमें न घुसने दें? कितना पाक-साफ़ है, कितना नित-नेमका ख़याल रखनेवाला! स्नान किए बिना खाना नहीं खाता। अब अपने मुहल्लेमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक देख आओ, और तब बताओ कि इसके मुक़ाबिलेमें कौन-सा ब्राह्मण-खत्री है, जिसे पवित्रताकी इतनी परवा हो? मेरा ख़याल है, कोई भी नहीं।

विद्या—परन्तु उन्होंने अपना धर्म तो बचा रखा है। तुम्हारी तरह किरानी तो नहीं हो गए?

प्रभुदत्त—बस, बस, यही तो तुम्हारी मूर्खता है। तुम धर्म किसे समझती हो?

विद्या—धर्म वही, जो अपना धर्म हो।

प्रभुदत्त—मगर धर्मके लक्षण क्या हैं?

विद्या—(हाथ जोड़कर) बाबा, मुझे क्षिमा करो। तुमसे बहस कौन करे? चलो भोजन कर लो, कचहरीका समय हो गया है। फिर कहोगे, देर हो गई!

प्रभुदत्त—बिसाखी खा चुका या नहीं?

विद्या—अभी नहीं। तुम्हारे बाद खायगा।

प्रभुदत्तको कुछ संदेह हुआ। विद्याकी आँखोंसे आँखें मिलाकर बोले—तुम उससे नाराज़ तो नहीं रहती हो? देखना, अनाथ लड़का है। उसका दिल न दुखाना, पाप लगेगा।

विद्याको तीर-सा चुभ गया। उसने क्रोध-पूर्ण स्वरसे पूछा—यह बिसाखी मेघका लड़का है, या तुम्हारा देवता?

प्रभुदत्त—देवतासे भी बढ़कर।

विद्या—तुम्हारे लिए होगा। मेरे लिए तो मामूली अछूत है।

प्रभु०—मगर आजसे अछूत न रहेगा।

विद्या—कैसे न रहेगा?

प्रभु०—अभी देख लोगी। आजसे वह मेरे साथ चौकेमें बैठकर भोजन करेगा।

३

विद्या चौंक पड़ी। उसे विश्वास न आता था कि पंडितजीका सचमुच यही मतलब है। वह समझती थी, मुझे बनाते हैं। अब यहाँतक थोड़े बढ़ जायँगे? इतनेमें पंडितजीने ज़ोरसे पुकारा—बिसाखी!

बिसाखी अपने कमरेमें बैठा किताबें सँभाल रहा था। आवाज़ सुनते ही बाहर आ गया।

प्रभु०—चलो, खाना खा लें।

बिसाखीने इसका मतलब नहीं समझा। सोचने लगा, आज क्या है? वह कभी पंडितजीकी तरफ़ देखता, कभी विद्याकी तरफ़। कुछ समझता न था।

प्रभु०—तुमने सुना या नहीं? चलो, मेरे साथ बैठो।

बिसाखी—पहले आप खा लें। मुझे स्कूल जानेमें बहुत देर है।

प्रभु०—स्कूल जब जी चाहे, जाना, खाना पहले खा लो। चलो!

बिसाखी समझ गया, पंडितजी अब न मानेंगे। वह यह भी समझ गया कि आज कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा हो जायगा। मगर वह बोल न सकता था। ग़रीबकी हर तरफ़ मौत है। बिसाखी धीरे-धीरे रसोई घरकी तरफ़ बढ़ा। सहसा विद्याने उसका रास्ता रोक लिया, और

कड़ककर कहा—ख़बरदार ! जो पाँव आगे बढ़ाया, तो पाँव ही तोड़ दूँगी। यह ब्राह्मणका घर है, चमारका नहीं।

बिसाखीकी आँखें सजल हो आईं। उसने बेबसीसे पंडितजीकी ओर देखा, और तब सिर झुकाकर कहा—पंडितजी, आपकी कृपा मुझपर पहले ही कम नहीं। आप माताजीको नाराज़ न करें। इनको नाराज़ करके मेरा भला न होगा।

यह कहते-कहते बिसाखीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उधर विद्यावती रो रही थी कि कैसे तोता-चश्म हैं। पराए बेटेका ख़याल करते हैं, मेरी परवा नहीं करते! क्या मैं ऐसी तुच्छ हो गई हूँ कि बिसाखीके सामने मुझे इस तरह ज़लील करें? स्त्री आख़िर स्त्री है, इतना भी नहीं सोचते।

मगर पंडितजीको इन दोनोंकी परवा न थी। आसपास नदियाँ फुंकारें मारती थीं, बीचमें पहाड़ खड़ा था, और इस तरह कि उस पर पानीके इन हमलोंका ज़रा भी असर न होता था। थोड़ी देर बाद उन्होंने आग-भरी आँखोंसे विद्याकी तरफ़ देखा; मगर नम्र शब्दोंमें कहा—विद्या, मुझे तंग न करो। यह बिसाखीका सवाल नहीं मेरे सिद्धान्तका सवाल है। मैं सच कहता हूँ, इससे मेरा दिल टूट जायगा।

यह कहते-कहते उनकी आँखोंमें भी आँसू आ गए। क्रोध पानी होकर बहने लगा। जैसे लोहा आगमें पड़कर पहले गरम होता है, फिर पिघल कर पानी हो जाता है। उस समय उसमें कैसी जलन होती है, कैसी तरलता! वही दशा इन आँसुओंकी थी। यह पानी न था, पिघली हुई आग थी। यह मीठे जलका सोता न था, लावेकी नदी थी।

इसके सामने ठहरनेकी शक्ति किसमें है? कमसे कम स्त्रीके प्रेममें तो नहीं। विद्याने पतिकी बातोंको सोचा, और तब सामनेसे हट गई। प्रभुदत्त बिसाखीको लिए हुए रसोईघरमें चले गए, और बैठकर खाने लगे। नौकर पकाता था, पंडितजी और बिसाखी खाते थे, और विद्या ठंडी आहें भरती थी।

इतनेमें ब्राह्मणी रोटी लेने आई। मगर बिसाखीको रसोईमें बैठे देखकर चौंक पड़ी, और कतराकर निकल गई। विद्याने पंडितजीकी आँखोंसे अपनी आँखें मिलाई, मानो कहा—अभी तो पहला ही दिन है, आगे आगे देखना। परंतु पंडितजीने ब्राह्मणीके इस खुल्लमखुल्ला अपमानपर ज़रा भी ध्यान न दिया, और उठकर कचहरी चले गए। बिसाखी कुछ देर वहीं बैठा रहा। इसके बाद सिर झुकाए हुए धीरे-धीरे स्कूल चला गया। मगर विद्या उसी तरह चुपचाप बैठी रही। आज वह कितनी उदास थी, कैसी परेशान! आज उसकी आन मर गई थी, आज उसकी मर्यादा टूट गई थी, आज उसके पतिने उसकी परवा न की थी।

दोपहर होते होते यह बात सारे मुहल्लेकी ज़बानपर थी। स्त्रियोंको शोशा मिल गया। कहती थीं—घोर कलजुग आ गया, ऐसा कभी न होता था। ज़रा ख़याल करो, मेघ ब्राह्मणकी रसोईमें जा बैठा और ब्राह्मण उसे खिलाता रहा! एक और स्त्रीने कहा—अब दुनिया उलट जायगी, पृथ्वीसे पापका यह भार न उठाया जायगा। एक बुड्ढी स्त्रीने माला फेरते फेरते कहा—सासतरमें यह बखान है कि जब ऐसे ऐसे पाप होंगे, तो निसकलंक औतार आवेगा। सो अब उसके आनेमें देर नहीं। सब लोग बरन-संकर होते जाते हैं।

ये बातें विद्याने सुनीं, तो उसके दिलमें तीर-सा चुभ गया। मगर उसे पतिपर .ग़ुस्सा न था, .ग़ुस्सा बिसाखीपर था। .ग़ुस्सा भी पानीके समान नीचेकी तरफ़ बहता है। विद्या दिलमें सोचती थी, यह कम्बख़्त कहाँसे आ मरा! अब मुहल्लेमें उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। अगर उसका बस चलता, तो बिसाखीकी गर्दन मरोड़ देती। पहले स्त्री-पुरुष दोनों प्रेमसे रहते थे। प्यार-मुहब्बतकी वह चाँदनी आज वियोगके अँधेरे पाखमें कहीं दिखाई न देती थी। दोनों एक ही मकानमें रहते थे, एक ही छत-तले सोते थे; मगर ठीक उसी तरह, जैसे दो परदेसी धर्मशालामें आकर ठहरे हों। आँखें वही थीं, लेकिन निगाहें वे न थीं।

४

एक महीना बीत गया। मुहल्लेके लोग पंडितजीसे परे परे रहने लगे। कोई उनके घरकी चीज़ न लेता था, न उनसे खुलकर मिलता था। वह मुहल्लेके अंदर रहते हुए भी मुहल्लेसे बाहर रहते थे। और, स्त्रियाँ तो विद्याकी छायासे भी भागती थीं। पंडितजी दिन भर घरके बाहर रहते थे। उनको इस सुलूककी परवा न थी। मगर विद्याकी जानपर आ बनी। वह पंडितजीकी अनुपस्थितिमें प्रायः रोती रहती, और भगवान्से प्रार्थना किया करती कि यह संकट कटे। लेकिन भगवान् सुनता न था, संकट कटता न था।

रातका समय था, आसमानपर तारोंका चमन खिला हुआ था। पंडितजीने भोजन किया, और खाटपर लेट गए। विद्या आज बहुत उदास थी। पंडितजीको उसकी दशापर दया आ गई। प्यारसे बोले —विद्या, आज तुम्हारा दिल उदास है क्या?

विद्याकी आँखोंमें आँसू आ गए। यह तो वही आवाज़ है, वही शब्द, वही प्यार। उसे बिखरे हुए दिन याद आ गए। बीता हुआ समय आँखों-तले फिर गया। उसके प्यारकी सूखी हुई बेल हरी हो गई। उसने अपनेको सँभालकर जवाब दिया—नहीं।

जवाब साधारण था; मगर इससे पंडित प्रभुदत्तका हृदय हिल गया। हमारा सोया हुआ प्यार प्रायः मामूली बातसे जाग उठता है। पंडितजी लेटे थे, यह सुनकर उठ बैठे और विद्याकी ओर प्यार-भरी आँखोंसे देखकर बोले—विद्या, क्या यह लड़ाई कभी समाप्त न होगी? आओ, अब हम तुम सुलह कर लें। लड़ाई और लाल मिर्च, दोनोंमें स्वाद है; मगर उसी समय तक, जबतक इनकी मात्रा अधिक न हो। तुम स्त्री हो; स्त्रियाँ लाल मिर्च बहुत खाती हैं। मगर मेरा तो मुँह जलने लगा। परमात्माके लिए आज मीठी चीज़ खिलाओ, तो मन शान्त हो।

प्यारकी यह रँगीली और रसीली बातें सुनकर विद्यावतीके हृदय-सागरमें तरँगें उठने लगीं। मगर वह नारी थी, और नारी-हृदय आसानीसे विवश नहीं होता। उसने पतिकी ओर देखा, और होंठ चबाकर बोली—मैं तो तुमसे कभी नहीं लड़ी। और, स्त्री लड़ ही क्या सकती है? पति बुला ले, तो रानी; न बुलाए, तो दासी। मालिक-नौकरकी लड़ाई कैसी?

प्रभु०—बस, यही बातें तो लड़ाईकी हैं। साफ़ मालूम होता है कि तुम ख़फ़ा हो। नहीं तो ऐसा रूखा-सूखा जवाब कभी न देतीं। कितना अंधेर है! पति-परमेश्वर सुलहकी बिनती करे, और स्त्री मुँह फुलाए खड़ी रहे! मगर क्यों न हो, कलजुगका ज़माना है।

विद्याने पति-परमेश्वरका शब्द सुना, तो हँस पड़ी। यह हँसी न

थी, सुलहकी दरख़्वास्तकी मंजूरी थी। प्रभुदत्त अपनेको रोक न सके। उन्होंने उठकर विद्यावतीको गलेसे लगा लिया और चारपाई-पर अपने पास बिठाकर कहा—लो! अब अपना मन साफ़ कर लो। आख़िर कबतक रूठी रहोगी? जो होना था, वह तो हो चुका। फिर अब घरकी ख़ुशी ख़राब करनेसे क्या बनेगा?

विद्याने अपना सिर पतिके कंधेपर रख दिया और सिसकियाँ भरकर बोली—तुम समझोगे, झूठ बोलती है। पर सच्ची बात तो यह है कि मुझे दुनिया नहीं जीने देती। स्त्रियाँ ताने मारती हैं, तो कलेजा छलनी हो जाता है। कहती हैं, ये दोनों साहब-मेम बन गए हैं। तुम कचहरी चले जाते हो, मैं बैठी अपने भागको रोया करती हूँ। कोई हाथका छुआ पानी भी तो नहीं पीता।

प्रभुदत्त—बड़ी अच्छी बात है। हम किसीके यहाँ माँगने नहीं जाते। कोई बोले, बुला लो; न बोले, न बुलाओ। हमें किसीसे कोई मतलब नहीं। तुम हैरान क्यों होती हो? मैं तो ऐसी बातें हँसीमें उड़ा देता हूँ।

विद्या—जी चाहता है, कुएँमें कूद पड़ूँ। तुम्हें शायद मालूम न होगा, रसोइएने जवाब दे दिया है। कहता है, मेरी बिरादरी हुक्का-पानी बंद कर देगी, तो मैं क्या करूँगा? ग़रीब आदमी हूँ, मुफ़्तमें मारा जाऊँगा।

प्रभु०—अरे! ज़रा उसे बुलाओ तो। मैंने उसके साथ जो सलूक किया है, वह मामूली नहीं। देखूँ, मेरे सामने आँखें कैसे उठाता है।

विद्या०—बुलाकर क्या करोगे ? वह कभी न रहेगा। मैं बहुत समझा चुकी।

प्रभु०—तो जाने दो; और नौकर आ जायगा। शहरमें नौकरोंकी कमी नहीं।

विद्या०—पानी भरनेवाला भी कलसे नहीं आएगा। मुहल्लेके लोगोंने डरा दिया है। ग़रीब आदमी है, क्या करे। लोग कहते हैं, या पंडितजीका पानी भरो, या हमारा।

प्रभु०—तो मालूम होता है, हमें भूखों-प्यासों मारनेपर तुल गए हैं!

विद्या०—मेरा तो लहू सूखा जाता है। भगवान् जाने अब क्या होगा?

प्रभु०—नालिश न कर दूँ? आटे-दालका भाव मालूम हो जाएगा। ये भी क्या कहेंगे कि किसी वकीलको तंग किया था।

विद्या०—(सिर हिलाकर) इससे विरोध बढ़ेगा, कम न होगा।

प्रभु०—चलकर समझाऊँ, शायद समझ जाएँ।

विद्या०—समझेंगे तो क्या, पर हाँ खिल्ली ज़रूर उड़ावेंगे।

प्रभु०—तो फिर क्या करूँ? विद्या, मुझे कोई रास्ता नज़र नहीं आता।

विद्या०—रास्ता तो है, पर उसकी बात मुँहपर लानेका साहस नहीं होता। गया हुआ क्रोध फिर लौट आएगा।

यह कहते कहते विद्या रोने लगी। प्रभुदत्त क्रोधकी अग्नि देख सकते थे; परन्तु क्रोधका पानी न देख सके। उनका दिल रुँध गया। ठंडी साँस भरकर बोले—बहुत बुरे फँसे!

५

एकाएक बाहरसे बिसाखीने पुकारकर कहा—पंडितजी!

पंडितजी तिलमलाकर खड़े हो गए। यह आवाज़ न थी, विषमें बुझी हुई कटार थी। सोचने लगे, यह काँटे इसीके बोए हुए हैं। कैसी चैनसे कटती थी! आज वे दिन सुपना हो गए। कड़ककर बोले—क्या है बिसाखी?

बिसाखी धीरे-धीरे अन्दर आया और हाथ जोड़कर बोला—पंडितजी, मेरे कारण आपको बहुत दुःख हुआ। पर अब तो नहीं सहा जाता। आज्ञा दीजिए संथाले चला जाऊँ। यहाँ सारा शहर ही आपके विरुद्ध हो गया है।

पंडितजीने बिसाखीको इस तरह देखा, जैसे खा ही जायँगे। क्रोधसे बोले—अगर जाना ही था, तो आए क्यों थे?

बिसाखीने कोई जवाब न दिया और गर्दन झुका ली।

प्रभु०—मैं लोगोंकी धाँधलियोंसे नहीं डरता। समझते होंगे, डरा लेंगे। पर यहाँ ब्राह्मणका तेज है। एक बार आँखें खोल दूँगा।

बिसाखीने आँसुओंसे भरी हुई आँखें ऊपर उठाईं और कहा—सारे मुहल्लेका मुक़ाबिला करना बड़ा मुश्किल है।

प्रभु०—(घूरकर) देखोजी! तुम्हें मेरा कहना मानना होगा।

बिसाखी—मैं आपका ग़ुलाम हूँ। आपकी आज्ञा हो, तो देहका मांस उतार दूँ। मगर....

प्रभु०—बिसाखी, तुम मेरा दिल चीर कर देखो। लोग क्या कहेंगे?

बिसाखी—मैं खुद जाता हूँ। आप तो नहीं निकालते।

प्रभु०—अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मेरे पास न रहो, तो मैं क्या कर सकता हूँ ?

बिसाखी—मेरी इच्छा तो यह है कि सदा आपके पाँवसे लिपटा रहूँ। आपकी मेहेरबानियोंने मेरा मन मोह लिया है। मुझे जो सुख यहाँ मिला है, वह अपने घरमें भी न था। मगर....

बिसाखीने अपने कथनको अधूरा ही छोड़ दिया और पंडितजीके चरणोंमें गिर पड़ा। पंडितजी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्हें कुछ सूझता न था, न ज़बानसे कोई शब्द निकलता था। वह जो चाहते थे, वह मुँहसे कह न सकते थे। एक दिन पहले भी बिसाखी और विद्या, दोनों रोते थे। उस समय पंडितजीका मन ज़रा भी विचलित न हुआ था। मगर आज उनके दिलपर दोनोंका असर हो गया। वह दृढ़ता, वह साहस कहीं नज़र न आता था। पंडितजीने बिसाखीको ज़मीनसे उठाया और कहा—तो तुम घबराते क्यों हो ? कल देखा जायगा।

मगर दूसरे दिन बिसाखीका पता न था। पंडितजी समझ गए, वह संधाले चला गया। सोचने लगे, कितना समझदार है, कैसा सज्जन ! उसे मेरी चिन्ता है, अपनी नहीं। अपने भविष्यका ख़याल भी उसे नहीं रोक सका। कोई दूसरा होता, तो चुपचाप पड़ा रहता, और मुझे जलाया करता।

संध्या-समय पंडितजी कचहरीसे लौटे, तो उनका दिल बहुत उदास था। मगर विद्याका खिला हुआ चेहरा देखकर उनका मुँह भी चमकने लगा, मुस्कराकर बोले—रसोइया तो नहीं गया ?

विद्या—नहीं।

प्रभु०—पानी भरनेवाला आया था ?

विद्या—हाँ, मुहल्लेवालोंने फ़ैसला कर दिया कि जब बिसाखी चला गया है, तो अब झगड़ेकी ज़रूरत नहीं ।

प्रभु०—और तुम्हारी सखी-सहेलियोंका क्या हाल है ?

विद्या—आज तो सभी हँस-हँसकर मिलती थीं । कलकी घृणा नामको नहीं । कहती हैं, सुबहका भूला शामको घर आ जाय, तो उसे भूला नहीं कहते ।

पंडितजीके दिलपर तीर-सा लगा, मगर यह बात उन्होंने विद्यापर प्रकट न होने दी । फोड़ेके अन्दर पीप थी, मगर घाव ऊपरसे भर चुका था । घावकी यह स्वास्थ्य-सूचक दशा कितनी हानिकारक है ! यों साधारण आदमी शायद धोखा खा जाय, परन्तु वैद्यकी दृष्टिमें यह स्वास्थ्य नहीं, रोगका निमंत्रण है ।

दो तीन दिन बाद पंडितजी संथाले गए । बिसाखी वहाँ भी न था । पंडितजीके दिलपर दूसरा आघात पहुँचा । सोचने लगे, कहाँ चला गया ? उसका तो कोई ठौर ठिकाना भी नहीं । आदमी बाहरसे निराश होता है, तो घरको दौड़ता है । बिसाखी घर भी न गया । यह निराशा न थी, निराशाकी पराकाष्ठा थी । और, इसका मूल-कारण पंडितजीका हित-चिन्तन था, वरना ग़रीब आदमी अपना घर सहजमें नहीं छोड़ता । पंडितजी सिर झुकाकर शहरको लौट गए । मगर उस दिनके बादसे अछूतोद्धारके काममें तन्मय हो गए, जैसे तपस्वी एक बार भूल करके अपने शरीर और आत्माकी संपूर्ण शक्तियाँ आत्म-संयमको अर्पण कर देता है ।

६

उधर बिसाखी भूखों मरता था और अपने प्रारब्धको रोता था। कभी यहाँ नौकरी करता, कभी वहाँ; मगर कुछ ही दिनों बाद जवाब मिल जाता। उसकी रूठी हुई तक़दीर किसी हृदयहीन सुन्दरीके समान सीधे मुँह बात न करती थी। यहाँ तक कि कई-कई दिन बीत जाते, और बिसाखीको खाना भी नसीब न होता। ये दुनियाके धक्के न थे, भाग्यके धक्के थे। उसकी कौन सहायता करता? कौन उसकी बाँह पकड़ता? वह अनाथ था, ग़रीब था, और सबसे बढ़कर यह कि अछूत-बापका बेटा था। हारकर उसने वज़ीराबाद स्टेशनपर कुलीका काम शुरू कर दिया।

दोपहरका समय था। बिसाखी एक लालाका असबाब स्यालकोटकी गाड़ीमें रख रहा था। सहसा एक बूढ़े मेघने उसे पहचान लिया, और आश्चर्यसे कहा—अरे कौन, बिसाखी?

बिसाखीने चौंककर सिर उठाया, बूढ़े हाड़ीमलकी ओर देखा, और तब उछलकर उसके निकट आ गया। हाड़ीमलने उसे गलेसे लगा लिया और प्यारसे कहा—बेटा बिसाखी, तू यहाँ कबसे है?

बिसाखी—कोई छः महीनेसे। कहिए, गाँवमें तो कुशल है न?

हाड़ी०—गाँवमें कुसल कैसी? पंडितजी मुसकिलसे बचेंगे।

बिसाखीके मुँहका रंग उड़ गया। चौंककर बोला—क्या बीमार हो गए?

हाड़ी०—बीमार तो नहीं हुए। संधालेसे आ रहे थे, राहमें पैरगाड़ी एक छकड़ेसे टकरा गई। कुचले गए। डॉक्टरखानेमें पड़े हैं।

बिसाखी—डॉक्टर क्या कहता है?

हाड़ी०—राम जाने, क्या कहता है! हम लोग दवा नहीं

जानते, दुआ जानते हैं। जो भगवान सुन लेगा, तो बच जायँगे, नहीं तो हमें ऐसा पुरस फिर न मिलेगा।

बिसाखी—आप उन्हें पुरस कहते हैं। वह पुरस नहीं, देवता हैं।

हाड़ी०—इसमें क्या शक है। तो आओ भाई, तुम भी चलो। यहाँ मजूरी क्या करोगे, तुम्हें बहुत याद करते थे।

बिसाखी—चलो, अब यहाँ न रहूँगा।

तीसरे पहर दोनों आदमी अस्पताल जा पहुँचे। वहाँ संथालेके आधेसे अधिक लोग मौजूद थे। बिसाखीने सेवामें दिन-रात एक कर दिया। उसे खाने-पीनेकी सुध न थी, न सोनेका ख़याल था। उसे केवल एक ही ख़याल था, वह यही कि पंडितजी बीमार हैं और यह बीमारी भयानक है। वह दिल-जानसे सेवा करता था। और यह सेवा, यह मुहब्बत केवल बिसाखी ही से संभव थी। गाँवके बहुत-से लोग वहीं रहते थे। पंडितजीके कई संबंधियोंने इस समय उनकी बात भी नहीं पूछी। वे उनके अपने थे। सँथालेवाले उनके लिए तड़पते थे। वे पराए थे। उनको धर्म-कर्मका ज्ञान न था। वे अछूत थे।

७

तीन महीनेके बाद पंडितजी स्वस्थ हुए, और गाड़ीमें बैठकर घरको चले। इस समय विद्याकी आँखोंमें आनन्द खेलता था। वह बार-बार पतिकी ओर ताकती और झूमती थी। आज उसका पति अपने घर जा रहा है। आज उसकी आशाओंका चमन लहलहा रहा है।

यकायक बिसाखी आकर गाड़ीके पास खड़ा हो गया और बोला—ज़रा ठहर जाइए। बाजा आ ले।

विद्या०—(मुहब्बतसे) बाजा कैसा ?

बिसाखी—हमने मँगवाया है। आपका ज़लूस निकलेगा।

प्रभु०—यह तुम लोगोंको क्या सूझी ? इस धूमधामकी ज़रा भी ज़रूरत न थी। जाओ, जाकर उन्हें रोक दो। नहीं, मैं गाड़ीसे उतर जाऊँगा।

बिसाखी—पंडितजी, आपकी आज्ञा सदा मानी है, और सदा मानेंगे। मगर आज तो हमारी ही मरज़ी चलेगी। आज हम .खुशीसे पागल हो रहे हैं। शायद आपको ज्ञान न हो, संधालेके सारे लोग आए हैं।

प्रभु०—मगर इस ज़लूसकी ज़रूरत क्या है ? लोग देखेंगे तो हँसेंगे।

बिसाखी—परमात्मा इसी तरह हँसाता रहे।

प्रभु०—यह तुम लोगोंकी सरासर ज़्यादती है। आख़िर ज़रा सोचो तो सही।

विद्या०—चलो रहने दो, क्यों रोकते हो ? इन ग़रीबोंकी यही .खुशी है, तो यही सही।

इस समय विद्याको बिसाखीसे किए हुए कटु व्यवहारपर पश्चात्ताप हो रहा था। रह-रहकर दिलमें लज्जित हो रही थी। थोड़ी देर बाद गाड़ी चली। आगे-आगे बैंड बज रहा था, पीछे संधालेके मेव भजन गा रहे थे, और सबके पीछे पंडितजीकी गाड़ी चल रही थी। इस समय उन सहृदय, सीधे-साधे, सच्चे देहातियोंमें कितना प्रेम था, कितना

उत्साह ! उनमें बनावट न थी, न दिखावेका भाव था। उनमें उच्च कोटिकी श्रद्धा थी। यह लोकाचार न था, उनके हार्दिक भाव थे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर विद्याकी आँखें खुल गईं। उसने पंडितजीकी ओर देखा, और धीरेसे कहा—मुझे क्षमा करना। इन लोगोंकी पवित्रता, सादगी और श्रद्धाने मेरे विचार बदल दिए हैं। मैं समझती थी, ये पतित हैं, इनमें मनुष्यत्व न होगा। हमारे साथ मिलना चाहते है, पर इसके योग्य नहीं। मगर तुम्हारी बीमारीने मेरा संदेह मिटा दिया। ये मनुष्यत्वकी कसौटीपर पूरे उतरे हैं। हम इसी शहरके रहनेवाले हैं, यहीं पैदा हुए, यहीं पले। यहाँ हमारे मिलने-जुलनेवालोंकी कमी नहीं। ब्याह-शादी करें, तो सैकड़ों लोग आकर बधाई दें। मगर तुम्हारी बीमारीमें यहाँ आनेवालोंकी संख्या इतनी थोड़ी थी कि उसकी कल्पनाहीसे लज्जा आती है। और, वह सहानुभूति भी वचन रूपमें थी, कार्य-रूपमें नहीं। इने-गिने संबंधियोंको छोड़कर एक आदमी भी ऐसा न निकला, जो तुम्हारी सेवाके लिए एक रात भी यहाँ रह जाता। और, ये आदमी, ये गिरे हुए लोग—इनको अपने काम भूल गए। इनको केवल तुम्हारी चिन्ता थी। इन्होंने दिन-रात एक कर दिए। इनमें कृतज्ञताका भाव हम हिन्दुओंसे भी अधिक है।

यह सुनकर प्रभुदत्तका पीला मुँह आनंदसे लाल हो गया। मुस्कराकर बोले—तुम तो इन लोगोंसे घृणा करती थीं। अब बताओ, इनमें धर्म है या नहीं ?

विद्या—इनमें धर्म हो या नहीं, लेकिन इनका धर्म सच्चा धर्म है। ये दिखावा नहीं करते, न आगे बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं। मगर समयपर अपनी लाज रख लेते हैं। मैंने इनको भी देखा है और

इनकी स्त्रियोंको भी। उनकी सादगी, पवित्रता और धर्म-परायणताने मेरे मनको मोह लिया है। ये सच्चे आदमी हैं। अब तुमसे एक प्रार्थना है। मुझे निराश न करना, नहीं तो मुझे बहुत दुःख होगा।

प्रभु०—क्या कहती हो?

विद्या—बिसाखीको अपने घर बुला लो।

प्रभु०—(मुस्कराकर) मगर वह रसोईमें खाना खायगा।

विद्या—अब यह मज़ाक छोड़ो। कहो, स्वीकार किया। अब मैं उसे अछूत नहीं समझती। अब मेरा दिल जाग उठा है।

प्रभु०—तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार न करूँगा, तो रहूँगा कहाँ!

विद्या—पता नहीं, उस समय मेरी बुद्धिपर कैसा परदा पड़ गया था। वह घटना आज याद आती है, तो शरमसे सिर नहीं उठता।

प्रभु०—विद्या, आज मेरा शरीर ही स्वस्थ नहीं हुआ, मन भी नीरोग हो गया है। तुमने मुझे .खुश कर दिया। जी चाहता है, तुम्हें मुँह-माँगा इनाम दूँ। बोलो, क्या लोगी?

विद्या—जो चाहूँ माँग लूँ?

प्रभु०—हाँ, जो चाहो माँग लो।

विद्या—इन सब भक्तोंको अपने मकानपर बुलाकर खाना खिलाओ, ताकि सारे शहरको पता लग जाए कि हम इनसे घृणा नहीं करते।

प्रभु०—(चौंककर) विद्या, यह तुम क्या कह रही हो? तुम्हारा घर अपवित्र हो जाएगा।

विद्या—नहीं, मेरा घर शुद्ध हो जाएगा।

प्रभु०—तुम तो एकदम दूसरे सिरे जा पहुँचीं। मुहल्लेके लोग

क्या कहेंगे? यही कि पहले पति किरानी हुआ था, अब स्त्री भी क्रिस्टान हो गई।

विद्या—मुझे उनकी ज़रा भी परवा नहीं है।

प्रभु०—रसोइया नौकरी छोड़ जायगा।

विद्या—छोड़ जाय। मैं खाना आप बना लूँगी।

प्रभु०—कहार पानी न भरेगा।

विद्या०—एक पम्प लगवा दो; कहारकी ज़रूरत ही न रहेगी।

प्रभु०—और तुम्हारी सखियाँ?

विद्या—उनकी आँखें भी जल्द ही खुल जायँगी। अब तुम बहाने न ढूँढ़ो, दावतके लिए रुपए निकालो।

प्रभु०—जो चाहो, ले लो, तुमसे बाहर थोड़े हूँ। जुर्माना हो गया, अब माफ़ होनेकी कोई संभावना ही नहीं।

विद्या मुसकराने लगी।

हेर-फेर

एक ग़रीब मज़दूर सारा दिन लहू पसीना एक कर देनेवाली मेहनत करनेके बाद, साँझके समय दो आने पैसे अपनी फटी-पुरानी चादरके कोनेमें बाँधकर शहरसे निकला और मज़दूरोंकी बस्तीकी तरफ़ जा रहा था। बहुत दूरी पर उसने अपने कच्चे झोंपड़ेके धुएँको आकाशमें चक्कर काटते हुए देखा, और देखते ही समझ गया कि मेरी माँ मेरे लिए भोजन बना रही है।

वह नंगे सिर, नंगे पाँव जा रहा था। उसके घरमें सिवाय उसकी बूढ़ी माँके और कोई न था। मगर वह फिर भी खुश था—उसकी चादरमें दो आने पैसे बँधे थे।

सामनेसे एक बारात आ रही थी। मज़दूरने उसे देखा और उसे ख्याल आया, मुमकिन है, कभी मेरा भी ब्याह हो, और मैं भी बारात लेकर ब्याहने निकलूँ। उस समय मैं कितना खुश हूँगा, मेरे साथ साथ बाजे बज रहे होंगे, और—। बारातके आगे चलनेवाले नौकरोंने उससे कहा—"एक तरफ हट जाओ।" मजदूरके ब्याहकी काव्य-कल्पना मिट्टीमें मिल गई। वह खीझ कर बोला—"क्यों हट जाऊँ? सड़क सिर्फ तुम्हारे लिए नहीं है, इसपर हम भी चल सकते हैं।"

बारातवालोंने उसकी चादर फाड़ दी, और उसे उठाकर सड़कके किनारे झाड़ियोंमें फेंक दिया।

बारात चली गई। बारातके बाजोंका शोर धीरे धीरे दूर जाकर शहरके प्रकाशमें अदृश्य हो गया। अब वहाँ अकेला मज़दूर था। उसके चारों तरफ रातका सन्नाटा था, निराशाका अँधेरा था और दुखी दिलकी आहें थीं। वह घुटनोंके बल ज़मीनपर बैठ गया और अपनी सजल आँखें आकाशकी ओर उठाकर बोला—हे प्रभु! हमारे पास न धन-दौलत है, न महल और अटारियाँ, न नौकर चाकर। फिर तूने हमें क्यों पैदा किया है? क्या सिर्फ इस लिए कि अमीरोंके नौकर आएँ और हमें उठाकर सड़कके किनारे फेंक दें। आखिर दुनियाको हमारी क्या जरूरत है?

२

कई साल बीत गए।

मज़दूरने दिन-रात काम किया। देहका आराम बेचा, शतरंजकी चालें चलीं, छल कपट धोखेसे धन कमाया और धनी बन गया।

अब वह मज़दूर न था। उसके सन्दूकोंमें रुपये और मुहरें थीं, उसके रहनेको बड़ा भारी महल था। उसकी सेवा करनेको दास और दासियाँ थीं और लोग उसके सामने सिर झुका कर आते थे।

एक दिन, साँझके समय वह पालकीपर सवार होकर अपने घरको लौट रहा था कि एकाएक उसकी पालकी रुक गई। उसने पूछा—क्या है?

"सरकार, मजदूरोंकी बरात आ रही है।"

"पाजियोंको डंडे मार कर भगा दो। ये हमारा रास्ता क्यों रोकते हैं?"

डंडा बरसने लगा। मज़दूर चीखें मारते हुए इधर उधर भागने लगे। थोड़ी देरमें वहाँ एक भी मज़दूर न था। मगर उनकी चीखोंसे अमीर पालकी-सवारका दिल ख़राब हो गया। उसने कहा—मुझे पालकीसे उतार दो।

नौकरोंने सड़कके किनारे गालीचे बिछा दिये और अपने मालिकको आरामसे बिठा दिया।

इस समय उसका शरीर अपनी पोशाकमें गरम था, उसके सामने उसके नौकर हाथ बाँधे खड़े थे, और शहरमें उसके राजसी महलका द्वार उसके लिए खुला था।

वह नरम गालीचेपर पलथी मारकर बैठ गया, और अपनी अहंकारपूर्ण आँखें आकाशकी ओर उठाकर बोला—हे प्रभु! इन अभागे मज़दूरोंके पास न धन-दौलत है, न महल और अटारियाँ, न नौकर चाकर। फिर तूने इन्हें क्यों पैदा किया है? क्या सिर्फ इस लिए कि यह हम लोगोंके रास्तेमें आ खड़े हों और हमारा समय नष्ट करें। आख़िर दुनियाको इनकी क्या जरूरत है?

समाप्त